I.S.S.N. 0975-6531

₹50/-

वैचारिकी

VAICHARIKI

जुलाई-अगस्त/सितम्बर-अक्टूबर 2020 (संयुक्तांक) * भाग 36 - अंक 4/5

भारतीय विद्या मन्दिर

भारतीय विद्या मंदिर की द्वैमासिक शोध प्रधान पत्रिका

• वैचारिकी •

जुलाई-अगस्त/सितम्बर-अक्टूबर 2020 (संयुक्तांक) भाग 36 - अंक 4/5

भारतीय विद्या मंदिर के प्रकाशन

भारतीय तत्त्व चिंतन
माधोदास मूंधड़ा
मूल्य 150/- पृ.सं. 190
ISBN : 978-81-89302-15-9

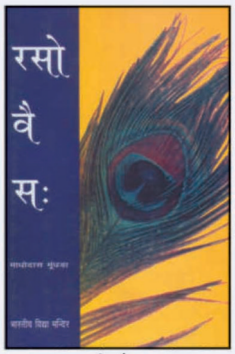

रसो वै सः
माधोदास मूंधड़ा
मूल्य 150/- पृ.सं. 165
ISBN : 978-81-89302-16-7

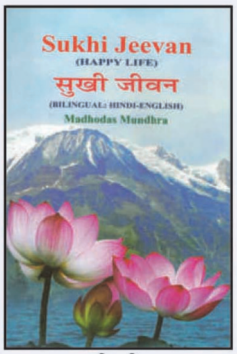

सुखी जीवन
माधोदास मूंधड़ा
मूल्य 275/- पृ. सं. 216
ISBN : 978-81-89302-52-8

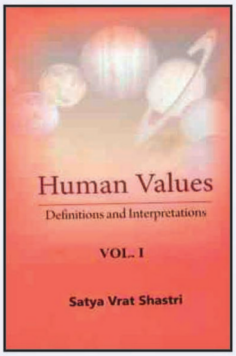

Human Values
Satya Vrat Shastri
Price : Rs. 395/- Pages : 264
ISBN : 978-81-89302-45-0

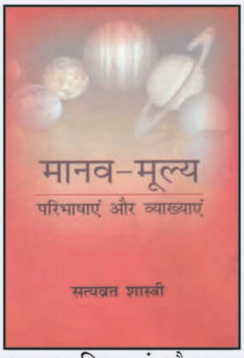

मानव मूल्य परिभाषाएं और व्याख्याएं
सत्यव्रत शास्त्री
मूल्य 550/- पृ. सं. 304
ISBN : 978-81-89302-52-8

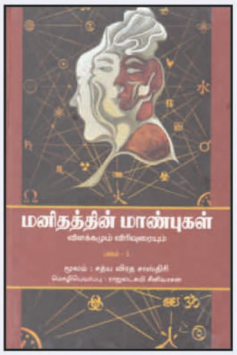

Human Value (Tamil)
Satya Vrat Shastri
Price : 450/- Pages : 320
ISBN : 978-81-89302-56-6

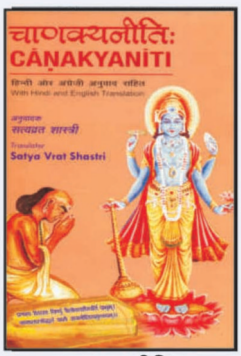

चाणक्यनीतिः
सत्यव्रत शास्त्री
मूल्य 295/- पृ.सं. 194
ISBN : 978-81-89302-42-9

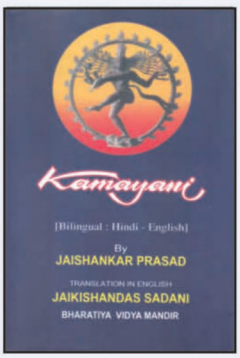

Kamayani
Tr. Jaikishandas Sadani
Price : Rs. 900/- Pages : 477
ISBN : 978-81-89302-44-3

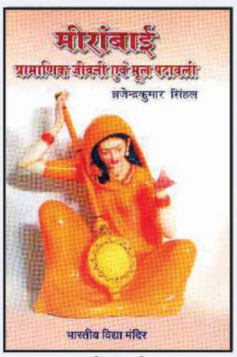

मीरांबाई
प्रामाणिक जीवनी एवं मूल पदावली
संपा. ब्रजेन्द्र कुमार सिंहल
मूल्य 900/- पृ.सं. 584
ISBN : 978-81-89302-41-2

वैचारिकी

भारतीय विद्या मन्दिर की द्वैमासिक शोध प्रधान पत्रिका

वर दे, वीणावादिनि वर दे !
प्रिय स्वतंत्र-रव अमृत-मंत्र नव भारत में भर दे !
काट अंध-उर के बंधन-स्तर बहा जननि, ज्योतिर्मय निर्झर;
कलुष-भेद-तम हर प्रकाश भर जगमग जग कर दे!
नव गति, नव लय, ताल-छंद नव नवल कंठ, नव जलद-मन्द्ररव;
नव नभ के नव विहग-वृंद को नव पर, नव स्वर दे!
वर दे, वीणावादिनि वर दे!

डॉ. बिट्ठलदास मूंधड़ा
अध्यक्ष एवं प्रधान सम्पादक

I.S.S.N. 0975-6531

वैचारिकी

वर्ष : 36 अंक 4-5

धर्म-दर्शन-विज्ञान, साहित्य-लोकसाहित्य, इतिहास-पुरातत्व, कला-लोककला
विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा मान्यता प्राप्त

जुलाई-अगस्त/सितंबर-अक्टूबर 2020 ● अषाढ़ शुक्ल 11-आश्विन शुक्ल 15, 2077 वि.सं.● रु. 50

अनुक्रम

- गुजराती कृति 'गिरधर रामायण' का संदर्भ-वैभव - **डॉ. किशोर काबरा** 06
- 1857 के कलम और तलवार का अनूठा पत्रकार : अजीमुल्ला खां - **बद्रीनारायण तिवारी** 13
- कश्मीर की उत्पत्ति का आख्यान - **अग्निशेखर** 16
- सिलेठी समाज में होने वाली वैवाहिक रस्में - **डॉ. मधुछन्दा चक्रवर्ती** 20
- हिन्दी गजलों में विज्ञान - **ऋषिपाल धीमान 'ऋषि'** 28
- 'पुनर्नवा' में समसामयिक सन्दर्भ एक अथक प्रयास - **डॉ. एस. प्रीति** 32
- प्रभाकर माचवे का वैविध्यपूर्ण रचना संसार - **डॉ. कृष्णा शर्मा** 43
- शुक्रताल–जहाँ राजा परीक्षित को मोक्ष मिला! – **राजगोपाल सिंह वर्मा** 48
- स्त्री अस्मिता की दृष्टि से मृदुला गर्ग के 'चित्तकोबरा' उपन्यास का मूल्यांकन - **संगीता कुमारी पासी** 51
- संस्कृति के सच्चे रखवाले - **राकेश भारतीय** 56
- जनसंचार माध्यमों में हिंदी साहित्य : बदलते परिदृश्य - **डॉ. भवानी सिंह** 62
- हस्तलिखित साहित्यिक पत्रों का महत्व - **डॉ. अमरसिंह वधन** 72
- शिक्षा से वंचित समुदाय : लिंग विकलांग जीवी - **डॉ. विजयकुमार पटीर** 77
- केदारनाथ सिंह की कविताओं में नारी संवेदना - **डॉ. नीतू कुमारी** 83
- **पाठक मंच** - 86
- **प्रतिस्वर** - 92

अध्यक्ष एवं प्रधान संपादक
डॉ. बिड्डलदास मूंधड़ा

संपादकीय कार्यालय
भारतीय विद्या मंदिर
12/1, नेली सेनगुप्ता सरणी
कोलकाता-700087
दूरभाष : 033-71001614
ई-मेल : bvm.vaichariki@gmail.com
वेबसाइट : www.bharatiyavidyamandir.org

साहित्य सम्पादक
रावेल पुष्प

प्रबंध सम्पादक
शंकरलाल सोमानी
27, शेक्सपीयर सरणी
कोलकाता-700017
मो. 09830559364
ई-मेल : shankar.somani@simplexinfra.com

सदस्यता शुल्क
एक प्रति 50/- रुपये
वार्षिक 300/- रुपये
द्वैवार्षिक 600/- रुपये

भुगतान
Payee's Name :
BHARATIYA VIDYA MANDIR
Current A/c.No. : 32030320176
Bank : State Bank of India
Branch : New Market
IFSC Code No. : SBIN0004662

प्रिय पाठकों!

देश के प्रधानमंत्री के साथ तमाम सहमतियों/असहमतियों के बीच भी आज के समय यह स्लोगन तो समीचीन लगता ही है कि 'जब तक नहीं दवाई, तब तक नहीं ढिलाई'।

कोरोना-काल में हुए लॉकडाउन के लॉक एक-एक कर खुल रहे हैं और हम खुश होकर आजाद अपने-अपने घरों से बेपरवाह खुली हवा में बेखौफ से होने लगे हैं और लगातार कई त्योहारों की खुशियों के उत्साह में निकल पड़े हैं, लेकिन इस बीच एकाध राज्य ने त्यौहार के अतिशय उत्साह के दुष्परिणाम भी भुगत लिए हैं और संक्रमितों की संख्या में गुणात्मक रूप से वृद्धि हो गई है। हमें अभी भी सचेत रहना है, ऐसा ना हो कि 'सावधानी हटी, दुर्घटना घटी' वाली स्थितियां बन जाएं। दरअसल संक्रमण का दूसरा दौर भी कई देशों में शुरू हो चुका है और इसके लिए ठंड का मौसम कुछ ज्यादा ही अनुकूल होता है। हमें अपनी उर्जा को भी सावधानी के साथ बरकरार रखना है ताकि हम अपनी आशाओं और जीवन के प्रति सकारात्मक कदम फूंक-फूंक कर उठाते हुए चलें, भले ही गति मंथर ही क्यों न हो लेकिन यह बरकरार रहे। इसी सावधानी का परिणाम है कि हमारी मुलाकातों में अभी विलंब हो रहा है, लेकिन निरंतरता बनी रहे ये आश्वस्त होना और रहना अभी जरूरी है। देश-दुनिया से जो समाचार आ रहे हैं वह इस मायने में सुखद हैं कि इस जानलेवा वायरस से बचाव के एक नहीं दो चार वैक्सीन नए साल के प्रारंभिक महीनों में ही आ जाएंगे। लेकिन फिर भी बहुसंख्यक लोगों तक इसकी पहुंच में भी वक्त तो लगेगा ही, इसलिए देश के अभिभावक की सही सीख, सही शिक्षा पर हमें तवज्जो तो देनी ही चाहिए।

इस कोरोना-काल के दुष्परिणाम तो स्वाभाविक रूप से हैं ही, लेकिन इसका जो एक और सकारात्मक पहलू देखने को मिल रहा है कि आभासीय पटल से चाहे वो ज़ूम, गूगल मीट, फेसबुक लाइव, स्काईप या और भी कई हैं जिन पर लगातार विभिन्न समसामयिक विषयों, साहित्यिक/सांस्कृतिक आयोजनों का एक नया और आकर्षक द्वार खुल गया है। इस माध्यम से देश के विभिन्न हिस्सों से ही नहीं विदेशों से भी लेखकों/विद्वानों को एक मंच पर लाना और श्रोताओं को भी जोड़ पाना कितना सहज/सरल हो गया है, जो भौतिक रूप से सम्भव होना बेहद मुश्किल का काम था। देश की कई संस्थाएं ऐसे आयोजन तो कर ही रही हैं, सरकार के संस्कृति मंत्रालय भी कई ऐसे आभासीय पटल पर कार्यक्रम आयोजित कर रही है। इस माध्यम से समय और पैसे दोनों की ही बचत है।

हम बात सीख और शिक्षा की भी कर रहे थे, तो अब आइये जरा शिक्षा पर भी कुछ बातें तो खुल कर, कर ही लें क्योंकि अभी हाल ही में हमारे देश में नई शिक्षा नीति- 2020 की घोषणा हो चुकी है। ये राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020, 'अंतरिक्ष वैज्ञानिक के. कस्तूरीरंगन' की अध्यक्षता वाली समिति की रिपोर्ट पर आधारित है। इस नई शिक्षा नीति की घोषणा के साथ ही मानव संसाधन मंत्रालय का नाम भी परिवर्तित कर सीधे-सीधे शिक्षा मंत्रालय कर दिया गया है। नई शिक्षा नीति में जो सबसे खास बात है वो है कि कक्षा 5 तक की शिक्षा मातृभाषा या स्थानीय भाषा में दी जाये। उसके बाद स्थानीय भाषा को जहां तक संभव हो भाषा के रूप में पढ़ाया भी जाता रहेगा। सार्वजनिक और निजी स्कूल इसका अनुपालन करेंगे। इसके साथ ही विद्यालयों में सभी स्तरों पर छात्रों को बागवानी, खेलकूद, योग, नृत्य, मार्शल आर्ट तथा शारीरिक गतिविधियों के और कार्यकलापों से भी जोड़ने की बात की गई है। इसका जो एक और महत्वपूर्ण पहलू है कि वह कक्षा 6 से ही पाठ्यक्रम में व्यवसायिक शिक्षा को भी शामिल किया जाएगा, यानी कक्षा 6 से ही कोई ना कोई हाथ का काम अवश्य ही सीख लेगा छात्र जो उसके परवर्ती जीवन में काम आएगा।

इस शिक्षा नीति की घोषणा के अनुसार सिर्फ पढ़ाई ही नहीं वर्किंग कल्चर को भी विकसित करना है और अपने विद्यार्थियों को ग्लोबल नागरिक भी बनाना है लेकिन धारणा यही है कि वो अपनी जड़ों से भी जुड़े रहें। नई शिक्षा नीति में ऐसी बहुत सारी बातें हैं जिनका कार्यान्वयन अगर सही तरीके से हो पाया तो यह भारत को विश्व के अग्रणी देशों के समकक्ष ले जाने में सफल हो सकता है। लेकिन बात तो वही है कि व्यवहारिक रूप में यह कहां तक हो पाएगा।

बीते एक दशक में जिस तरह शिक्षा का निजीकरण हुआ है और अंग्रेजी माध्यम के स्कूल कुकुरमुत्तों की तरह उग आए हैं और अंग्रेजी के प्रति जुनून अभिभावकों में जितना है क्या उसे रोक पाना वाकई संभव हो पाएगा।

बात तो साफ़ है, जब तक भाषा जीविकोपार्जन की भाषा न बन पाये तब तक उसके जीवित रहने और पुष्पित पल्लवित होने पर तो सन्देह बना ही रहेगा। जब तक खासकर हिंदी या फिर अन्य प्रादेशिक भाषाओं में विज्ञान, तकनीक, कानून तथा अन्य ऐसे विषयों में मौलिक पुस्तकें लिखी और उपलब्ध नहीं कराई जाएंगी, तब तक तो सारी बातें बेमानी ही साबित होंगी। हां, तकनीकी शब्दावली हम ज्यों की त्यों ग्रहण कर सकते हैं, इससे हमारा शब्द-भंडार ही बढ़ेगा। अब हम अगर अंग्रेजी डिक्शनरी की ही बात करें, तो हर नये एडीशन में सैंकड़ों नये शब्द दूसरी भाषाओं खासतौर से हिन्दी से लिये नजर आते हैं। हिन्दी में तो ग्रहणशीलता ही इतनी है कि दूसरे शब्दों को आत्मसात कर उसे अपना बना लेने में ज्यादा वक्त नहीं लगता।

वैसे कोरोना की वजह से ऑनलाइन पढ़ाई और बढ़ती हुई ई. कंटेंट की लोकप्रियता और इसकी उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए इस कंटेंट को हिंदी और अंग्रेजी के अलावा कुछ क्षेत्रीय भाषाओं में भी उपलब्ध कराने की बातें अब की जा रही हैं। नई शिक्षा नीति से इस क्षेत्र में बड़े बदलाव की उम्मीद तो है ही। इसमें वास्तविक शिक्षा और कौशल विकास पर काफी जोर दिया गया है इससे छात्र आत्मनिर्भर होंगे। प्रत्येक विद्यार्थी को ही नौकरी या फिर स्वरोजगार देने के लिए पूर्ण प्रशिक्षण का प्रावधान किया गया है। इससे आने वाले समय में देश से बेरोजगारी खत्म करने की एक गंभीर सोच तो दिखती ही है, वैसे कितना कुछ होगा यह तो वक्त ही बताएगा...।

वक्त, जी हां वक्त/वक्त तो ऐसा होता है जो शायद इंसान के बस में नहीं, इंसान सोचता कुछ और है और होता कुछ और है। अब मैं बात करूं संगीत मार्तंड पंडित जसराज जी की जिनके साथ मेरे बड़े ही प्यारे और पारिवारिक किस्म के संबंध थे। उनके बड़े भाई पंडित मणिराम जी से मेरे पिताश्री तथा मैंने एवं परिवार

के अन्य सदस्यों ने भी संगीत की शिक्षा ली थी। इसका जिक्र मैंने वैचारिकी के जनवरी-फरवरी 20 अंक में करते हुए यह भी लिखा था कि उनके 90 वें जन्मदिन (28 जनवरी 2020) पर व्यक्तिगत रूप से मुंबई जाकर उन्हें शुभकामनाएं प्रकट की थीं और आशा व्यक्त की थी कि उनके 100 वें जन्मदिन पर भी उनसे मिलकर अपनी शुभकामनाएं दे सकूंगा। लेकिन मन की बातें तो मन में ही रह गई और पंडित जी इसी साल 17 अगस्त 2020 को अमेरिका के न्यूजर्सी में इस नश्वर दुनिया से विदा हो गये।

संगीत मार्तंड पंडित जसराज जो संगीत के मेवाती घराने से ताल्लुक रखते थे और जिन्होंने अर्ध-शास्त्रीय संगीत शैलियों को लोकप्रिय बनाने में महत्वपूर्ण काम किया, जिसमें हवेली संगीत प्रमुख है। पंडित जसराज जी को अपने श्रद्धा- सुमन अर्पित करने के लिए वैचारिकी के इस संयुक्त-अंक का एक विशेष खंड उन्हें समर्पित करने की योजना थी, लेकिन फिर मुझे वो भी नाकाफ़ी लगा। इसलिए अब उनको समर्पित एक पूरा अंक ही हम भविष्य में प्रकाशित करेंगे। आखिर में इस दौरान आये सभी पर्व त्यौहारों के लिए आप सभी को मेरी ढेरों मंगल कामनाएं...!

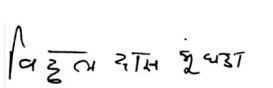

(डॉ. बिट्टलदास मूंधड़ा)

पुनश्चः *इस दौरान प्रख्यात विदुषी कपिला वात्स्यायन जी भी इस दुनिया से चली गईं। कपिला जी प्रख्यात साहित्यकार सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन की धर्मपत्नी थीं (1956 से 1969 तक)। वे इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र की संस्थापक थीं। रेमन मैग्सेसे पुरस्कार, यूनेस्को पुरस्कार, संगीत नाटक अकादमी फेलोशिप, पद्मविभूषण सहित कई सम्मानों से अलंकृत थीं। उनका पूरा जीवन ही साहित्य, कला और संस्कृति के संवर्धन में समर्पित रहा। हम उनके निधन पर भी अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।*

- सम्पादक

गौ महिमा और संत का मूल्य

एक दिन च्यवन ऋषि संगम में खड़े होकर तपस्या कर रहे थे। एक बार मछुआरों ने संगम में बहुत बड़ा जाल लगाया. जब उन्होंने जाल को बाहर खींचा, तो उसमें कई जलीय जंतुओं के साथ ऋषि को भी देखा। जब मछुआरों ने ऋषि को देखा, तो हाथ जोड़कर उनसे माफी मांगने लगे। पर ऋषि ने कहा कि इन जीवों को छोड़ दो, तभी मैं भी जीवित रह पाउंगा। यह बात राजा तक पहुंची। राजा ऋषि के प्रताप से परिचित थे। वह दौड़े-दौड़े ऋषि के पास आये और विनम्रता पूर्वक उनसे पूछा, ऋषिवर क्या आज्ञा है? ऋषि ने कहा, 'ये मछलियां मछुआरों की रोजी-रोटी का साधन है। मछुआरों को इनका मूल्य दें और इन्हें मेरा मूल्य भी दिया जाए।' राजा ने कहा ठीक है, मैं एक हजार मोहरें मछुआरों को दे देता हूं। 'च्यवन ऋषि ने कहा,'क्या मेरा मूल्य इतना ही है?' जब राजा घबरा गये और बोले, 'मैं पूरा राज्य ही उन्हें दे देता हूं।' ऋषि प्रसन्न हो गये। पर उन्होंने राजा से कहा, 'मेरा मूल्य किसी ऋषि से पूछो। वह तुम्हें बता देंगे।' राजा वहां गोजात मुनि के पास गये। उन्होंने मुस्कुराकर कहा, 'राजन, जिस प्रकार धरती पर गाय अमूल्य है। उसी प्रकार संत अमूल्य है। इसलिए तुम गोदान करके मूल्य चुका सकते हो।'

तब राजा ने ऋषि च्यवन को एक दुधारू गाय दान में देते हुए कहा, 'हे तपस्वी, मैं इस गौ के माध्यम से आप का मूल्य चुका रहा हूं। इसके अतिरिक्त दूसरा श्रेष्ठ धन मुझे पृथ्वी पर नहीं दिखायी दे रहा है।'

गुजराती कृति 'गिरधर रामायण' का संदर्भ-वैभव : एक अवलोकन

डॉ. किशोर काबरा

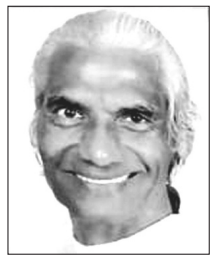

रामकथा मानवीय संवेदनाओं और संबंधों की ऊर्जस्वित विश्वगाथा है। यह न किसी युग से बंधी है और न किसी स्थल से, यह न किसी व्यक्ति से बंधी है और न किसी घटना विशेष से। रामकथा ने पूरी विश्वयात्रा की है और 'कलप भेद हरि चरित सुहाए, भांति अनेक मुनीसन गाए' को सम्पूर्ण रूप से सही सिद्ध किया है। इस धरती के कण-कण में रामकथा के बीज अंकुरित होते रहे हैं और 'रामायण सत कोटि अपारा' के रूप में अपना वैराग्य प्रदर्शित करते रहे हैं। गुजरात की ऊर्वरा भूमि भी इसका अपवाद नहीं है। यहां अर्थ के साथ ही शब्द की साधना भी अनवरत रूप से चलती रही है। यद्यपि गुजराती भाषा में कृष्ण-काव्य की तुलना में राम काव्य कम है, पर जितना भी उपलब्ध है वह स्तर, कथ्य और शिल्प की दृष्टि से अद्‌भुत है अविस्मरणीय है, अद्वितीय है, अलौकिक है, आस्वाद्य है।

'गिरधर रामायण' गुजराती कवि गिरधर की अद्‌भुत काव्य कृति है। इसमें रघुवंश की कथा को पारिवारिक संदर्भों एवं संबंधों का सम्पुट देकर तथा राम-रावण युद्ध को उपलक्षण की तरह प्रस्तुत करके रामचन्द्र के देवत्व और मनुजत्व को एक सूत्र में बांधने का प्रयत्न किया गया है। सात काण्डों में विभाजित इस ग्रंथ की कथा को प्रसंगानुसार पृथक-पृथक अध्यायों में विभिन्न छन्दों और लोकगीतों तथा राग-रागिनियों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। दोहा और चौपाई के साथ ही कड़वा, वल्लव ढाल आदि लोकधुनों एवं बिलावल, मारू, सारंग, भैरव आदि के द्वारा कवि ने काव्य-वैभव और संदर्भ वैभव की जुगलबंदी की है।

रामकथा का मूल तो महाभारत के अरण्य पर्व में श्रीरामोपाख्यान के रूप में है, पर वाल्मीकि ने पूरी कथा को महाकाव्यत्व तक पहुंचाया है। फिर भास, कालिदास आदि कवियों की वाणी को पवित्र करती हुई यह कथा संस्कृत नाटकों तथा प्राकृत-अपभ्रंश काव्यों तक पहुंची। वहां से वह सभी क्षेत्रीय भाषाओं में पल्लवित-पुष्पित होती हुई अपने पृथक्-पृथक् रंगबिखेरती रही।

गुजराती भाषा में भी लम्बी रामायण-परम्परा है। मांडव वंधारो की रामायण, नाकर की रामायण, विष्णुदास की रामायण, प्रेमानंद की रण यज्ञ, शामल की अंगद विष्टि, दुलेराय नाणावती की संक्षिप्त रामायण, कर्मण मंत्री का सीताहरण, श्रीधर अड़ालजी का रावण-मन्दोदरी संवाद, समय सुन्दर की सीताराम चौपाई आदिग्रंथ रामकथा की गुजराती भाषा परम्परा को आगे बढ़ाते हैं। इनके अतिरिक्त शिवलाल यांत्रिक, शंकर भाई पटेल,

संत योगेश्वर, महेंद्र दवे, छगनलाल बसावड़ा, गिरिजाशंकर, नानूभाई बारोट, सुन्दम्, उमाशंकर जोशी, सुन्दरजी बेटाई, मनसुखलाल जवेरी, पूजालाल दलवाड़ी, चीन मोदी आदि कवि लेखकों ने गुजराती में रामकथा के विभिन्न आयामों को अपनी अंजलियां प्रदान की हैं। डोंगरे महाराज एवं मुरारी बापू के कथाग्रंथ भी हैं।

गिरधर कवि रचित गुजराती रामायण पर हनुमन्नाटक, पद्मपुराण, अग्निपुराण, योग वाशिष्ठ, श्रीमद्भागवत, हरिवंश पुराण, आनन्द रामायण, अध्यात्म रामायण, स्कन्द पुराण, रामाश्वमेध कथा मराठी कवि श्रीधर के श्रीराम विजय के साथ ही तुलसीकृत राम-चरितमानस का प्रभाव भी स्पष्ट दिखाई देता है। गिरधर रामायण में 7 काण्ड हैं, 299 अध्याय हैं और 1559 छंद हैं। परम्परागत रामकथा के साथ ही कवि ने कई नए प्रसंगों, संदर्भों, उपकथाओं, लोककथाओं, जनश्रुतियों एवं गूढ़ प्रश्नों को वाणी प्रदान की है। गुजरात की सामाजिक एवं वैचारिक जीवन-व्यवस्था और मानवीय संवेदना को भी कवि ने विभिन्न पात्रों के माध्यम से अभिव्यक्ति प्रदान की है। कथा-प्रसंगों की नवीनता और अवान्तर लोक-मान्यताओं की प्रस्तुति इस रामायण को अन्य रामायणों से अलग वैशिष्ट्य प्रदान करती है। कई अनुत्तरित प्रश्नों को भी कवि ने उठाया है और उनके सटीक उत्तर दिए हैं।

गिरिधर रामायण दो खण्डों में हैं। प्रथम खण्ड में छह काण्ड, द्वितीय खण्ड में सातवां उत्तरकांड हैं। संक्षेप में कुछ संदर्भ-वैभव दे रहा हूं।

<u>प्रथम खण्ड - बालकांड</u> :

रावण कुंभकर्ण और विभीषण के जन्म की अल्पचर्चित कथा को गिरधर रामायण में प्रमुखता दी गई है। पाताल में सुमाली राज्य करता था। उसने एक दिन धरती पर आकर देखा कि सोने की लंका पर कुबेर का आधिपत्य है तो ईर्ष्या एवं कपट के वशीभूत होकर अपनी कन्या कैकसी का विवाह विश्वश्रवा से कर दिया, जिसने संध्या के समय गर्भ धारण करके रावण और कुंभकर्ण को जन्म दिया। उसने शूर्पनखा और ताड़का नामक दो पुत्रियों को भी पैदा किया। कैकसी इन तामसी संतानों से दुःखी थी। एक दिन उसने अपने पति विश्वश्रवा से प्रार्थना की–

तमोगुणी आ संतति स्वामी करशे कुक नो ना।
माटे-सात्विक सुत आपो मुझने तो पहोंचे मन नी आश।।

और इसी के फलस्वरूप हरिभक्त विभीषण पैदा हुआ रावण, कुंभकर्ण और विभीषण ने क्रमशः शंकर, ब्रह्मा और विष्णु को प्रसन्न करने के लिए कठोर तप किया और उन्हीं से अलग-अलग वरदान प्राप्त किये। कुंभकर्ण 'इंद्रासन' के स्थान पर 'निद्रासन' मांग बैठा-

इन्द्रासन अर्थे तप साध्यो फलयां काई नव फाण्योजी।
निद्रासन मांग्यु तेली वेला भारतीय भुलाव्यो जी।।

लंका प्राप्त करने के लिए युद्ध में विजय न मिलने के कारण रावण ने चालाकी से अपने पिता विश्वश्रवा द्वारा कुबेर के नाम पत्र लिखवाया, जिसमें लंका रावण को भेंट में दे देने की बात कही। पिता की आज्ञा मानकर कुबेर ने रावण को लंका सहर्ष प्रदान करने और उन्होंने हिमालय में अलकावती नगरी बसाकर कुबेर को वहां रहने की स्वीकृति दी।

रावण के जीवन में मानभंग के कई प्रसंग आए हैं। सहस्त्रार्जुन और उसकी पत्नी विंध्यावती से वह अपमानित हुआ। इसी तरह बाली ने उसको अंगद के पलने में एक खिलौने की तरह बांधकर लटका दिया था–

पुत्र बाली तणो अंगद हतो नहानुं बाल।
ते अंगद ने पारणे बांध्यो अधोमुख भूपाल।।

श्रवणकुमार की और दशरथ की कथा को गिरधर रामायण में बड़े विस्तार से दिया गया है। श्रवणकुमार की मृत्यु के बाद उसके माता-पिता ने दशरथ को शाप देते हुए कहा-

पुत्र बिजोगे प्राण तारा जजो सत्य वचन।
राम कही बे मरण पाम्यां राय कम्प्या मन।।

इंद्र के कहने पर दशरथ ने असुरों से युद्ध करने का बीड़ा उठाया। युद्ध क्षेत्र में कैकेयी भी साथ गई,

जिसमें रथचक्र की धुरी के स्थान पर अपना हाथ लगाकर दशरथ की रक्षा की। रथचक्र मां धरी के काणे दीठो रानी नो हाथ। दशरथ ने प्रसन्न होकर कहा-

इच्छा होय ते मांग हूं आपू बे वर तुझने आज।
राणी कहे- हूं मागीश ज्यारे पड़रो मारे काज।।

कैकेयी के हाथ से क्षीरचरू चील झपटकर ले गई। दुःखी रानी को कौशल्या ने अपने चरु का चौथा भाग और सुमित्रा ने चौथा भाग दिया। उसी समय केसरी वानर की पत्नी अंजनी ऋष्यमूक पर्वत पर पुत्र हेतु तपस्या कर रही थी। उसके हाथ फैले हुए थे। जिन पर चील ने क्षीरचरु डाल दिया। उसी के प्रताप से हनुमान का जन्म हुआ।

- इस ग्रंथ में हनुमान के बचपन की शौर्य लीलाओं का विस्तार से वर्णन हुआ है। उन्हें सभी देवताओं से कई आशीर्वाद और वर प्राप्त हुए। सूर्य को फल मानकर उसे खाने के लिए छलांग लगाने वाले हनुमान की शक्ति देखिये–

सिंहनाद करी तप बल भारी उछलियो आकाशे।
दिनकर ने फल जाणी पोते चाल्यो करवा ग्रासे।।

विश्वामित्र के द्वारा राम-लक्ष्मण को मांगकर ले जाने के पूर्व कवि ने श्रीराम से पूरे भारत की यात्रा करवाई है, जिसमें देश का पूरा भूगोल आ गया।

अहिल्या प्रसंग में श्रीराम ने शिला का अपने चरणों से स्पर्श नहीं किया, अपितु चरणों की धूल उड़कर मूर्तिमती अहिल्या पर गिरी, जिसके प्रताप से वह चैतन्य हो गई। कवि ने चरण स्पर्श न करने का कारण दिया है–

अन्य छत्री एव नव करे, आ तो धरम अवतार।
चरण स्पर्श ते क्यम करे, ब्रह्मणी ने निरधार।।

अहिल्या राम को वरदान देती है-

शाप मुक्त कीधो तमे भई चैतन्य अभिराम।
माटे-सीता कन्या जनक नी वर जो तमने राम।।

अहिल्या ब्रह्मा की पुत्री थी, जिसे पत्नी रूप में प्राप्त करने के लिए गौतम ने द्विमुखी गाय की सात बार प्रदक्षिणा की। इस विवाह से इन्द्र गौतम के शत्रु हो गए और उन्होंने उसका सतीत्व लूटने का पाप-कर्म किया। अहिल्या की पुत्री अंजनी पहरा दे रही थी और बन्दरी की तरह ताक-झांक कर रही थी, अतः ऋषि ने उसे बन्दरी होने का शाप दिया। यही अंजनी हनुमान की मां बनी।

अयोध्या कांड :

कैकेयी के भाई संग्रामजित भरत-शत्रुघ्न को ननिहाल ले गए। उनकी अनुपस्थिति में लक्ष्मणजी ने मंथरा के शरीर में कलियुग का प्रवेश करवाया, तब उसकी बुद्धि भ्रष्ट हुई। कैकेयी के द्वारा मांगे गए वरदानों का क्रम यहां बदल गया है-

त्यारे केकै कहे-वन माँ जाय राम।
चौद बरस लगी रहे, ते ठाम।।
मारा भरत ने आपो राज।
ए बे, वचन मागूँ छूँ आज।।

राम वियोगी भरत के शोक का वर्णन ग्रंथ में बड़े विस्तार से हुआ है। भरत व्यथा के सागर में डूब रहे हैं-

सांचो स्नेह तणाव्यो राव नव सह्यो राम वियोग।
हूं अभागियो जीबूं छूं ए कोण करमना भोग।

दशरथजी के मरणोपरांत रानियां सती होना चाहती थीं, पर गुरुजी ने शास्त्र की आज्ञानुसार उन्हें रोका कि जो स्त्री पुत्रवती है, उसे सती होने की आवश्यकता नहीं है-

शास्त्र प्रमाण वचन काढ़ी न बोल्या तेणीवार।
तेने बलवानुं कांई कारण नहि जो पुत्रवती होय नार।।

अरण्यकांड :

वनवास के समय श्रीराम से मिलने ऋषि शरभंग आते हैं। उन्हें कुष्ट रोग था, अतः श्रीराम से मिलने के पूर्व अपनी गुदड़ी के साथ कुष्ट रोग को भी खूंटी पर टांग दिया था। राम की कृपा से ऋषि का उद्धार हुआ।

शूर्पणखा के पुत्र शंबर का वध लक्ष्मण ने किया था, अतः वह क्रुद्ध होकर लक्ष्मण से बदला लेने के लिए पंचवटी में आई थी। काम वश या मोहवश होकर नहीं आई थी। वह पहले लक्ष्मण से मिलती

है और फिर सीता से प्रार्थना करती है कि वे उसे देवरानी बनाएं। किसी से भी मनोनुकूल उत्तर न मिलने पर वह राम से आग्रह करती है कि वे लक्ष्मण को विवाह करने का आदेश दें। राम चूंकि किसी पर नारी का अंग नहीं छू सकते थे, अतः उन्होंने शूर्पणखा की पीठ पर कुश की सलाई से संदेश लिखा-

ए रावण नी भगिनी प्रमाण। शूर्पणखा निशाचरी जान।
एना करण नासिका जेह, निश्चय छेदन करशो तेह।।
पछी जीवती मुकजो धीर। स्त्री हत्या न कर शो वीर।।

सुन्दर रूप धरकर आने वाली शूर्पनखा नाक-कान कट जाने पर अत्यंत भयंकर राक्षसी के रूप में बदल जाती है। सीता लक्ष्मण से मजाक करके पूछती हैं कि देवरजी, मेरी सुन्दर देवरानी को कहां छिपाकर रखा है। कवि कहता है–

त्यारे जनकसुता जोई हसवा लाग्या,
क्यां छे देराणी मारी जी।
परणी शुं गुप्तज राखी दियर तमारी नारी जी।

मारीज दो मुंहका हिरण बनकर आया था। वह एक मुंह से घास चरता था और दूसरे से इधर-उधर देखता था। स्वर्णमृग को मारकर लाने के लिए सीता राम से बड़ा तर्क-वितर्क करती है। वह तो यहां तक कहती है कि यदि आज मुझे स्वर्णमृग नहीं मिला तो मैं अपने प्राण त्याग दूंगी। राम विवश होकर मृग के पीछे जाते हैं।

'लक्ष्मण! मैं संकट में हूं, यहां आओ।' यहां आओ। यह मारीच ने नहीं, रावण ने स्वर बदलकर कहा था। सीता लक्ष्मण को कई अपशब्द कहती है और फटकारती है। विवश होकर लक्ष्मण को कई अपशब्द कहती है और फटकारती है। विवश होकर लक्ष्मण को कुटी छोड़कर जाना पड़ता है।

रावण के यति वेश में आने पर देवताओं ने सीता से प्रार्थना की है कि माता, इसके साथ जाइए, तभी इसका नाश होगा। आप छाया रूप में इसके साथ जाएं, ताकि यह आपको अपवित्र न कर सके।

रावण सीता को आकर्षित करने के लिए कहता है : 'हे सीते, राम और रावण एक ही राशि के हैं। अतः हम दोनों में कोई फर्क नहीं है। 'सीता कहती है– रावण, सियार और सिंह भी एक ही राशि के हैं, मगर दोनों में फर्क है।'

<u>किष्किंधा काण्ड :</u>

बाली और सुग्रीव के जन्म की विचित्र कथा गिरधर रामायण में दी गई है जिसके अनुसार विधाता के अश्रु से उत्पन्न ऋक्षराज एक बार कैलाश पर घूमते हुए उस सरोवर के निकट जा पहुंचे, जहां कोई पुरुष नहीं जा सकता था, फलतः वे स्त्री बन गए। उनके रूप-यौवन को देखकर सूर्य का वीर्य स्खलित हुआ जो ग्रीवा पर जाकर अटक गया, उससे सुग्रीव की उत्पत्ति हुई। इसी तरह इन्द्र का वीर्य मस्तक पर गिरा, जिसने बाली को जन्म दिया। वे दोनों वानर रूप में उत्पन्न हुए। उमा की प्रार्थना पर शंकर ने ऋक्षराज को पुनः पुरुष बना दिया। वे वहां से ऋष्यमूक पर्वत पर चले गए, फिर उन्होंने किष्किंधा नगर बसाया।

इन्द्र ने अपने पुत्र बाली को ऐसी माला दी थी, जिसको गले में पहनने से कोई भी उसे युद्ध में जीत नहीं सकता था, क्योंकि सामने वाले का आधा बल माला पहने व्यक्ति को प्राप्त हो जाता था। यही कारण है कि राम ने पेड़ों की आड़ से बाली पर बाण छोड़ा था।

बाली ने महिषासुर के पुत्र दुन्दुभि को मारा था और उसके कंकाल को ऋष्यमूक पर्वत पर फेंक दिया था, जिसके कारण मातंग ऋषि ने उसे शाप दिया था कि वह ऋष्यमूक पर्वत पर आते ही भस्म हो जाएगा। बाली इसीलिए उस पर्वत पर नहीं जाता था।

<u>सुन्दर काण्ड :</u>

हनुमान लंका में सीता की खोज करते हुए रावण के सभी महलों में घूमते हैं, पर सीता उन्हें नहीं मिलती। कई सुन्दर स्त्रियों को देखकर उन्हें सीता का भ्रम होता है, पर उनकी बाते सुनकर उनका भ्रम दूर हो जाता था। मंदोदरी को अकेले सोया देखकर उन्हें शंका हुई कि यही सीता है, अतः वे सत्य जानने के लिए सूक्ष्म रूप बनाकर मंदोदरी का

मुख सूंघते हैं। उन्हें वहां मद्य की गंध आई। वे समझ गए कि यह सीता नहीं हो सकती, क्योंकि राम ने कहा था कि सीता के शरीर से कस्तूरी का और मुख से कपूर की सुगंध आती है।

सीता को हनुमान पर विश्वास नहीं हो रहा था कि वे राम के दूत हैं। अतः परीक्षा लेने के लिए उन्होंने पूछा कि मेरी कोई गुप्त बात बताओ। तब हनुमान बोले- 'माता, जब आप कैकेयी के भवन में वल्कल पहन रही थीं, तब राम ने आंख के संकेत से वल्कल उतार कर पुनः राजसी वस्त्र पहनने का आदेश दिया था। यह बात केवल राम जानते थे और आप जानती थीं।' यह सुनकर सीता को हनुमान पर पूरा विश्वास हो गया।

हनुमान की पूंछ में लगी आग से पूरी लंका जलने लगी है। रावण फूंक मारकर पूंछ की आग बुझाना चाहता है। आग तो नहीं बुझती है; हाँ, उसकी दाढ़ी-मूंछें जल जाती हैं। रावण के पतन और प्रायश्चित का प्रारंभ यहीं से होता है।

हनुमान लौटते समय सीता से बोले, 'माँ। राम के लिए मुझे भी अपनी कोई निशानी दो तथा कोई गुप्त बात भी बताओ, जिसे केवल राम ही जानते हैं। सीता ने अपनी चूड़ामणि दी और कहा 'एक बार लक्ष्मण फल लेने के लिए जंगल में गए थे। मैं रघुनाथजी की गोद में सिर रखकर लेटी थी, तब प्रभु ने मेरे ललाट पर केसर का तिलक लगाया था, पर वह आड़ा हो गया था। यह बात मेरे और रामजी के अलावा और कोई नहीं जानता है।' हनुमान ने यह बात राम से कही, तब राम को पूरा विश्वास हुआ कि हनुमान सीता से मिलकर आए हैं।

- लंका-दहन से प्रसन्न होकर ब्रह्माजी ने हनुमान के हाथों राम के लिए एक पत्र भिजवाया, जिसमें राम की प्रशंसा के बाद हनुमान की वीरता का विस्तृत वर्णन किया था। ब्रह्मा ने लिखा था–

'ए हनुमंत ने छे धन्य। सेवक स्वामी भक्त अनन्य।'
स्वामी तनु एवं काज। बीजे थाय नहि महाराज।।

कवि ने लंका की विचित्र उत्पत्ति कथा दी है, जिसमें गजग्राह के उद्धार के बाद बचे हुए दोनें शवों को खाने के लिए विष्णु वाहन गरूड़ जम्बू वृक्ष की शाखा के साथ समुद्र के बीच आते हैं। जम्बू वृक्ष की शाखा गिरी, वहां लंका बनी और शवों की हड्डियां जहां शेष रहीं, वहां त्रिकुटाचल निर्मित हुआ।

राम ने विजय के पूर्व ही विभीषण को राजतिलक करके लंका का राजा बना दिया था। सुग्रीव ने पूछा- 'भगवन्, यदि रावण भी आपकी शरण में आ जाए तो आप उसे कहां का राज्य देंगे? राम ने कहा, 'मैं उसे अयोध्या का राज्य दे दूंगा और स्वयं पुनः वन में चला जाऊंगा।' कवि कहते हैं–

हूं करीश तप वन मां, जहं राज करशे रावण राय।
पण विभीषण ने जो लंका आयी, ते मिथ्या नव थाय।।

समुद्र पर सेतु बनाते समय नल को अभिमान हो गया कि मैं ही पुल बना रहा हूं, पर दिन भर बनाए गए पुल को रात में एक मत्स्य निगल गया तो नल हक्का-बक्का रह गया। सब चिन्तित हुए। वरुण के अवतार शरभ नामक वानर ने समुद्र में जाकर पता लगाया कि आगे मत्स्य न निगले और सेतु समुद्र में धंस न जाए, इसके लिए उसे नीचे से सहारा देना पड़ेगा। शरभ ने सेतु के नीचे जाकर उसे सहारा दिया।

सेतु बनाने के लिए पत्थरों पर राम का नाम नहीं लिखा गया था। क्या वानर राम के नाम पर पैर रखकर पुल पर चलते? वस्तुतः नल-नील राम-राम बोलते हुए सेतु पर पत्थर रखते थे।

सहु कवि उपासक राम ना महा अनन्य कहिए जेह।
राम नाम उपर चरण मूकी केम चाले तेह।।
मुखे राम नाम स्मरण करी नल मूकतो पाषाण।
तेणे करी ने परस्पर से जोड़ाया निरवाण।।

<u>युद्धकांड :</u>

रावण ने विद्युज्जिह्व से कहा कि मुझे शाप है। अतः मैं सीता को बलात् अपनी नहीं बना सकता। तुम कुछ ऐसी माया करो कि सीता स्वयं मेरे पास आ जाए। विद्युज्जिह्व राम का कटा हुआ नकली सिर लेकर सीता के पास आया। रावण ने कहा,

सीते, देखो तुम्हारे पति राम को तो मेरे मंत्री प्रहस्त ने मार डाला है। लक्ष्मण डर कर अयोध्या भाग गया है, इसलिए अब तुम शोक मत करो और मेरी राजरानी बन जाओ। विभीषण की पत्नी सरमा यह रहस्य जानती थी, इसलिए सीता को उसने सांत्वना दी। रावण ने मंदोदरी से कहा कि वह सीता को समझाए। मंदोदरी ने सीता से कहा, वेदांत के अनुसार सब प्राणी ब्रह्म के अंश हैं, इस तरह राम-रावण दोनों ही ब्रह्म के अंश हैं, फिर तुम रावण को स्वीकार क्यों नहीं करती? सीता ने कहा, 'राम ही ब्रह्म स्वरूप हैं। रावण तो जगत स्वरूप है, जो मिथ्या है। हम तुम सब मिथ्या हैं। मात्र राम ही सत्य स्वरूप ब्रह्म हैं।' मंदोदरी की आंखें खुलती है और वह रावण को समझाती है कि राम को ब्रह्म और सीता को माया स्वरूपिणी मानकर उनकी शरण में चले जाओ, पर रावण नहीं मानता है। वह कहता है कि राम ने युद्ध की कामना से सेना इकट्ठी की है, सेतु बनाया है, यहां तक आए हैं। अतः मैं तो उनसे युद्ध करूंगा ही और राम की युद्ध-कामना को पूरी करूंगा। वह कहता है-

माटे सीता नहि आपूं हवे उद्यम करूं युद्ध काज।
रघुवीर केरी कामना मारे पूरण करवी आज।।

इस रामायण में अहिरावण-महिरावण की जन्म कथा, मकरध्वज की वीरता, हनुमान के शौर्य राम का एक पत्नीव्रत निभाना और चन्द्रसेना को अगले जन्म में सत्यभामा होने का वर देना- जैसी उपकथाएं भी पूरी रोचकता के साथ दी गई हैं।

कुंभकर्ण रावण से कहता है कि तुम सीता को ही जीत नहीं पाए, तो राम को भला कैसे जीतोगे? इससे तो अच्छा है कि तुम राम का रूप धारण करके सीता से मिलो। रावण कहता है कि राम का एक भी गुण मुझमें नहीं है, मैं भला राम का रूप कैसे धारण करूं? कुंभकर्ण ने फिर आग्रह किया तो-

'रावण कहे-राम रूप धरूं पण गुण ते न आवे त्रण।
एक वचन, एक बाणावली, एक पत्नीव्रत प्रण।।'

हनुमान दो बार द्रोणाचल से संजीवनी बूंटी लाए-एक उस समय जब लक्ष्मण मूर्छित हुए थे, दूसरी बार उस समय जब जामवंत और हनुमान को छोड़कर राम समेत सारी सेना को रावण ने अचेत कर दिया था।

इंद्रजित को मारकर लक्ष्मण अत्यंत दुखी होते हैं, क्योंकि वह शेषनाग की पुत्री सुलोचना का पति अर्थात् स्वयं का दामाद था।

द्वितीय खण्ड- उत्तर कांड :

इस खण्ड के प्रारंभ में कवि ने पूरी रामायण के महत्वपूर्ण पात्रों, स्थानों एवं घटनाओं का एक रूपक प्रस्तुत किया है, जिसके अनुसार शुद्ध मन दशरथ है, सुमति कौशल्या है, जिसने ज्ञान गर्भ धारण किया। ज्ञान ने आत्मा के शिशु को राम के रूप में जन्म दिया। सुबुद्धि सुमित्रा है, उद्यम कल्पना कैकेयी है। संतोष, शत्रुघ्न, विवेक लक्ष्मण, सद् धर्म भरत और देहबुद्धि लंका है। क्रोध कुंभकर्ण है, काम इन्द्रजित है, लोभ अतिकाय है, मद प्रहस्त है, अज्ञान और दंभ देवान्तक और नरान्तक हैं। शोक-क्लेश कुतर्क आदि असुर हैं। देवता सभी इन्द्रियों के अधिष्ठान हैं, जिन्हें अहंकार रूपी रावण ने देह में बंदी बना रखा है। अंतःकरण अयोध्या है, सुषुम्ना नाड़ी सरयू है। अहंकार को परास्त करके तथा देह में सद्भाव रूपी विभीषण का राजतिलक करके आत्मा रूपी राम का शांति रूपी सीता से मिलन होता है।

राम के दरबार में सीता के द्वारा हनुमान को बहुमूल्य रत्नों की माला भेंटस्वरूप दी जाती है। वे एकांत में जाकर रत्नों को फोड़ते हैं- यह देखने के लिए कि इनमें राम हैं या नहीं? लोग पूछते हैं कि तुम्हारे भीतर भी राम हैं या नहीं? इस पर वे नखों से अपना हृदय चीरते हैं, जहां सीता राम विराजमान दिखाई देते हैं। कवि कहता है–

सुणी एवां वचन मारुति तेणी वार।
नखे निज हृदय चिर्या निरधार।।
ते समे सर्वे दीहा मांहे राम।
सीता सहित प्रभु पूरण काम।।

शूद्र की तपस्या फलस्वरूप ब्राह्मण पुत्र की असमय मृत्यु का प्रसंग अन्नदान का महत्व बताने के लिए विदर्भ के सत्यवान राजा का उपाख्यान, यति-श्वान प्रसंग आदि के साथ ही इक्ष्वाकु पुत्र दण्डक द्वारा ऋषि बालिका के साथ किये गए बलात्कार के कारण पूरे दण्डक देश का जलकर राख होना और दण्डकारण्य में बदल जाने जैसी कथाएं भी विस्तार से दी गई हैं।

धोबी के द्वारा फैलाए गए लोकापवाद के कारण सीता परित्याग का निर्णय राम ने लिया, इसके साथ ही अन्य कारण भी कवि ने दिए हैं। वस्तुतः राम ने सीता को वनवास क्यों दिया– यह प्रश्न त्रेता युग से आज तक अनुत्तरित रहाहै। कवि के अनुसार समाज की मर्यादा रखने के लिए सीता का निष्कासन किया गया। यह सीता पर कलंक नहीं था कि वह रावण के घर रही, यह राम पर कलंक था कि उन्होंने रावण के घर रही सीता को स्वीकार कर लिया। इस कलंक का भी परिष्कार करना था। इसके साथ ही रामराज्य की यह कसौटी नहीं थी कि सब सुखी हों, बल्कि दूसरों को सुखी करने के प्रयत्नों में स्वयं के सुखों का त्याग करना था। रामराज्य का आधार बहुमति नहीं, सर्व सम्मति था। दशरथ की आयु के बारह वर्षों को भोगने की राम की विवशता भी थी, जो सीता-त्याग के रूप में व्यक्त हुई, क्योंकि ससुर की आयु का उपभोग पत्नी के साथ नहीं किया जा सकता। राम कहते हैं-

बरष द्वादशनु आयुष्य बाकी जे हुं भोगवं आज।
पण सीता ने अरधांग राखूं- तो थाय विपरीत काज।।
एम विचारी पितानु आयुष्य रामे कर्यु स्वीकार।
मार्टे-सीता नो परित्याग ज कीधो मोकल्यां वन मोझार।।

सीता ने पूर्वजन्म में एक गर्भवती तोती को तोते से अलग कर दिया था। तोती मर गई तो तोते ने शाप दिया- 'अगले जन्म में तू भी पति से विहीन होगी।' यहां तोता रजक बना और उसने अपना बदला ले लिया।

सीता पर कैकेयी कलंक लगाती है। वह सीता से छद्म द्वारा रावण के अंगूठे का चित्र बनवाती है और फिर स्वयं चित्र को पूर्ण करके शोर मचाती है कि देखो, सीता रावण को अब भी चाहती है। सीता क्षुब्ध होती है, जिससे धरती फटती है और वह उसमें समा जाती है।

ब्रह्मा द्वारा भेजे गए दूत धर्मराज से राम की गुप्त बातें लक्ष्मण दुर्वासा प्रसंग, पुरुष वध के स्थान पर देशत्याग का विकल्प, लक्ष्मण का त्याग करके राम का अत्यंत दुःखी होना तथा कौशल्या को ज्ञानोपदेश देकर अयोध्यावासियों सहित सरयू में जल-समाधि लेना- जैसे कथा- प्रसंगों के साथ रामायण-कथा का उपसंहार होता है। विशेष बात यह है कि पहले दशरथ के मोक्ष का आग्रह रहता है और बाद में राम देह त्याग करते हैं।

अस्तु!

मैं पूरी गिरधर रामायण का पल्लवग्राही अवलोकन ही कर पाया हूं। 'हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता' की अनुभूति गिरधर रामायण की प्रत्येक पंक्ति पर होती है। गुजराती के इस कवि ने पूरी राम कथा को बड़े विस्तृत फलक पर की अंतर्कथाओं और नई उद्‌भावनाओं से अलंकृत किया है। गुर्जर भूमि की गंध और समसामयिक चिन्तन से ओतप्रोत है यह कृति और इसके पात्र। दानवों में भी मानवीय संवेदनाओं के दर्शन कवि ने किए हैं। गुजराती भाषा के इस कवि को मैं प्रणाम करता हूं। गोस्वामी तुलसीदासजी ने तो रामकथा से जुड़े सभी भाषा-कवियों को पांच सौ वर्ष पहले ही प्रणाम कर लिया था–

जे प्राकृत कवि परम सयाने।
भाषा जिन्ह हरि चरित बखाने
भए जे अहहिं जे होइहहिं आगे।
पुनवऊं सबहिं कपट-छल त्यागे।।

●

ऋषि उद्यान, पुष्कर मार्ग,
अजमेर - 305001 (राज.)
मो. 9352025511

1857 के कलम और तलवार का अनूठा पत्रकार : अजीमुल्ला खां

बद्रीनारायण तिवारी

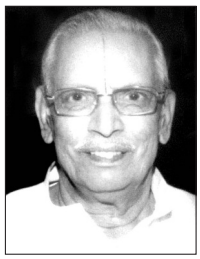

अजीमुल्ला खाँ महान कूटनीतिज्ञ होने के साथ-साथ निर्भीक पत्रकार भी थे। जन समान्य से संवाद स्थापित करने के उद्देश्य से उन्होंने उस काल में पयामे आजादी पत्र भी निकाला। इस पत्र के माध्यम से उन्होंने जन-जागरण प्रारम्भ कर दिया था। अपनी एक सम्पादकीय टिप्पणी में अजीमुल्ला खा ने लिखा– 'हिन्द के बाशिन्दों! अरसे से जिसका इंतजार था, आजादी की वह पाक घड़ी आन पहुंची। हम अब तक धोखे में आते रहे। अपनी ही गरदन पर अपनी ही तलवार चलाते रहे। हमें मुल्कफरोशी के इस गुनाह का कुफ्फारा (प्रायश्चित) करना होगा। अंग्रेज अब भी हिन्दुओं व मुसलमानों को एक दूसरे के खिलाफ भड़काने से बाज नहीं आएंगे। लेकिन भाईयों उनके जाल और फरेब में मत आना। आपको मादरे वतन की कसम।' एक अंग्रेज लेखक रसेल ने माइ डायरी इन इण्डिया में अजीमुल्ला खां की विद्वता, निर्भिक पत्रकारिता की प्रशंसा करते हुए लिखा, 'इस व्यक्ति में वह सभी गुण मौजूद है जो एक सच्चे देशभक्त पत्रकार में होने चाहिए।' वीर सावरकर ने अपनी गीता सदृश पुस्तक 1857 का भारतीय स्वातन्त्रय समर में लिखा है- 1857 की क्रांति का पूरा श्रेय अजीमुल्ला खां को था। वास्तविकता यह थी कि यदि अजीमुल्ला खां न होते तो वह क्रांति भी ना होती। यदि होती तो उसका स्वरूप इतना व्यापक न होता। यह बात अलग है कि समय से पूर्व प्रारम्भ हो जाने से यह क्रांति असफल हुई।

अजीमुल्ला खाँ के व्यक्तित्व का एक पक्ष यह भी था कि अच्छे शायर व गीतकार भी थे। 1857 क्रांति के इस सूत्रधार की मान्यता थी कि लेखनी, तलवार से भी अधिक शक्तिशालिनी होती है। अपनी इसी मान्यता के कारण जब उन्होंने क्रांति की योजना बनायी, तब उन्होंने एक ऐसे गीत की रचना भी की जो रणक्षेत्र में राष्ट्र का यशोगान कर वीरों की वीरता को उत्प्रेरित कर सके। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए अजीमुल्ला खां ने एक झण्डा गीत अथवा प्रयाण गीत की रचना की थी। इस गीत की प्रथम पंक्ति थी- हम हैं इसके मालिक, हिन्दुस्तान हमारा...। क्रांति प्रारम्भ होने से पूर्व ही इस गीत की रचना कर उन्होंने अपने अखबार पयामे आजादी में प्रकाशित किया। क्रांति आरम्भ होते ही इस गीत की भनक अंग्रेज अधिकारियों को लग गयी। फिर क्या था, देश भर में छापे डाले गये और पयामें आजादी की एक-एक प्रति ढूंढ-ढूंढ़ कर नष्ट कर दी गयी। मात्र एक प्रति ब्रिटिश म्यूजियम में सुरक्षित रही। इस गीत की प्रति जिस किसी भारतीय के पास से बरामद होती अथवा जिस किसी को भी गाते-गुनगुनाते पाया जाता उस पर अत्याचार किया जाता था और बिना मुकदमा चलाये उसे फांसी दे दी जाती या गोली मार दी जाती थी। विदेशी सरकार इस गीत की भनक भी किसी भारतीय के कानों में

पड़ने देना नहीं चाहती थी। इस गीत में आखिर ऐसा क्या था, जिससे विदेशी सरकार भयातुर हो गयी थी? वस्तुतः इस गीत में उन सभी आक्षेपों का करारा उत्तर है जो 1857 के स्वतंत्रता संग्राम को कुछ धर्मान्ध सिपाहियों का निरादर या सामंती प्रतिक्रियावादियों की एक प्रतिक्रांति का प्रयास प्रतिपादित करने का प्रयास कर रहे थे।

इस गीत में केवल देश की स्तुति ही नहीं है, स्वतंत्रता, संघर्ष के लिए तुरन्त आवाहन भी है, ललकार भी है। इसमें घोषित किया गया है कि समस्त भारतवासियों की एक कौम है, एक राष्ट्र है, हिन्दुस्तान जिसका पाक वतन (पवित्र जन्मभूमि) है, यह जन्मभूमि 'स्वर्गादपि गरीयसी' है। यह ऊपर हिमाचल नाम नगाधिराज से नीचे आसमुद्र विस्तीर्ण है, अनन्त रत्नप्रभवा है, धनधान्य-सम्पन्ना है। इसे फिरंगी ने दूर से आकर मंतर मारकर (हमें शौर्य और वीरता में पराजित करके नहीं) दोनों हाथ से लूटा है। यह बात विशेष ध्यान देने की है कि यहां मंतर का अर्थ जादू-टोना नहीं है, राजनीतिक मंत्र यानी युक्ति या चाल है।

गुलामी की जंजीरों को तोड़ने के लिए जो झंडा सिपाहियों ने उठाया है वह कौम की आजादी का झंडा है, किसी सामन्त या सम्राट का निजी झंडा नहीं। इस गीत की भावना में राष्ट्रवाद है, सामंतवाद नहीं। इसमें शत्रुता और आक्रोश विदेशी लुटेरे, आततायी फिरंगी के प्रति है, कौम नसारा या ईसाई के प्रति नहीं। यदि 1857 के ये क्रांतिकारी सिपाही किसी साम्प्रदायिक विद्वेश या ईसाई विरोध की भावना से परिचालित होते तो उनके इस गीत की एक तुक में किसी बुरे विशेषण के साथ 'नसारा' भी होना बहुत स्वाभाविक होता।

इस राष्ट्रीय गीत को गाते हुए जितना भारतीय रक्त बहा है, स्वातंत्रय संग्राम में मारे गये बलिदानी सैनिकों के जितने रक्त से यह गीत अभिषिक्त है, संभवतः उतना कोई अन्य गीत नहीं। यह केवल हमारे बलिदानियों का ही गीत नहीं है, विदेशी आतातायी सरकार के अत्याचार से यह गीत स्वयं बलिदान हुआ है, जिसकी स्मृति हम स्वाधीनता प्राप्त करने पर ही कर सके। जब्त किये जाने वाले राष्ट्रीय गीतों में यह सर्वप्रथम और ऐसे गीतों की माला का सुमेरु है। अन्य जब्त किये गये गीतों को तो फिर भी गाते और गुनगुनाते रहे, यह वही गीत है जो आततायी सरकार के अत्याचार से पूर्णतया लुप्त हो गया था। हम कह सकते हैं कि अन्य गीतों को यदि सरकारी जब्ती का कुछ काल तक के लिए कारवास मात्र मिला था, जिससे वे कालान्तर में मुक्त भी हुए, परन्तु इन गीतों को तो कहना चाहिये उनके द्वारा फांसी ही दे दी गयी थी।

प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के क्रांतिकारी सैनिकों के लिए अजीमुल्ला खां द्वारा लिखे झण्डा गीत अथवा प्रयाण गीत का मूल पाठ इस प्रकार है–

हम हैं इसके मालिक, हिन्दुस्तान हमारा।
पाक वतन है कौम का, जन्नत से भी प्यारा।।
ये है हमारी मिल्कीयत, हिन्दुस्तान हमारा।
इसकी रूहानियत से रौशन है जग सारा।।
कितना कदीम, कितना नईम, सब दुनियां से न्यारा।
करती है जरखेज जिसे, गंगो-जमुन की धारा।।
ऊपर बर्फीला पर्वत पहरेदार हमारा।
नीचे साहिल पर बजता सागर का नक्कारा।।
इसकी खानें उगल रही हैं, सोना, हीरा, पारा।
इसकी शानो शौकत का है दुनियां में जयकारा।।
आया फिरंगी दूर से ऐसा मंतर मारा।
लूटा दोनों हाथ से प्यारा वतन हमारा।।
आज शहीदों ने है तुमको अहले वतन ललकारा।
तोड़ो गुलामी की जंजीरें बरसाओ अंगारा।।
हिन्दू मुसलमां, सिख हमारा, भाई-भाई प्यारा।
यह है आजादी का झण्डा, इसे सलाम हमारा।।

1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में अजीमुल्ला खाँ वस्तुतः भारत की स्वाधीनता हेतु सशस्त्र क्रांति के बीच का अंकुरण था। इस संग्राम में मंगल पांडेय, नाना साहब पेशवा, रानी लक्ष्मीबाई, तात्या टोपे, मौलवी अहमद शाह, बाबू कुंवर सिंह, बेगम हजरत महल, राणा वेणीमाधव, देवीबख्श सिंह आदि महानायक बने। अंग्रेजों ने इस क्रांति को महत्वहीन

करने की हर संभव कोशिश की, किन्तु 1857 में जो ज्वाला धधकी उसने जन-क्रांति का स्वरूप ग्रहण किया और अंततः 90 वर्ष बाद अंग्रेजों को अपना राज 1947 में समेटना पड़ा। इस क्रांति के सूत्रधार के बारे में इतिहास के पृष्ठ मौन हैं। इस क्रांति की भूमिका रचने वाला महान क्रांतिवीर, महान कूटनीतिज्ञ अजीमुल्ला खां था। यह अजीमुल्ला खां साहब पेशवा के मंत्री थे। वह अंग्रेजी, फ्रेंच, अरबी, फारसी, हिन्दी और संस्कृत भाषाओं के विद्वान थे। वह न केवल बुद्धि न कलम के, बल्कि तलवार के भी धनी थे। नाना साहब की सेना में वह सैनिक की भांति युद्ध भी करते थे।

अंग्रेज आठ लाख रुपये वार्षिक पेंशन नाना साहब को देते थे। अचानक अंग्रेजों ने यह पेंशन बंद कर दिया। अंग्रेजों के इस निर्णय के विरुद्ध पैरवी करने के लिए नाना साहब ने अजीमुल्ला खाँ को लंदन भेजा। लंदन में उन्हें सतारा के पदच्युत राजा के वकील रंगोजी बापू मिले। दोनो में गहरी मित्रता हुई और अंग्रेजों को भारत से खदेड़ने की योजना बनने लगी। अंततः खूब चिन्तन मनन के बाद एक सुव्यवस्थित योजना बनी। इस योजना को देशव्यापी बनाने के लिए दक्षिण भारत की कमान रंगोजी बापू ने और उत्तर भारत की कमान अजीमुल्ला खां ने संभाली। भारत लौटकर अजीमुल्ला खां ने उत्तर भारत के लखनऊ, झांसी, कालपी, दिल्ली, अम्बाला, पटियाला आदि अनेक स्थानों पर यात्राएं की और गुप्त रूप से जनसाधारण में क्रांति का मंत्र फूंका।

योजना के अनुसार क्रांति का श्रीगणेश 31 मई 1857 को होना था। समस्त तैयारियां गोपनीय रूप से हो चुकी थीं। परन्तु 21 मार्च को बैरकपुर छावनी में एक अतिउत्साही सैनिक मंगल पांडेय ने अपने अंग्रेजी अधिकारी का निर्देश मानने से इंकार कर दिया। इस घटना से पूर्व निर्धारित तिथि 31 मई से पूर्व ही यह संग्राम प्रारम्भ हो गया सम्पूर्ण भारत में एक ही दिन एक ही समय क्रांति प्रारम्भ होने की योजना अजीमुल्ला खां की थी, जिस पर पानी फिर गया। यदि पूर्व निर्धारित तिथि व समय पर क्रांति का प्रारंभ होता तो तत्कालीन अंग्रेज सैनिक की दस गुनी फौज भी उस क्रांति को दबा न पाती। अंग्रेजों ने यद्यपि क्रांति की इस ज्वाला को बड़ी कठिनाई से बुझा तो दिया। किन्तु इस संग्राम ने सम्पूर्ण भारत को चैतन्य कर दिया।

1857 के प्रथम स्वाधीनता संग्राम की सत्य घटनाओं पर आधारित स्वातंत्र्य वीर विनायक दामोदर सावरकर की कृति '1857 का प्रथम स्वातंत्रय समर' के पूर्व इस आंदोलन को अंग्रेजों ने गदर नाम से प्रचारित अंग्रेज इतिहासकारों ने लिखा था। वीर सावरकर ने इंग्लैंड के अध्ययनकाल में इंडिया हाउस में इस ऐतिहासिक कृति को अंग्रेजी में लिखा था– जो अंग्रेजी सरकार ने प्रकाशन के पूर्व ही जब्त कर लिया था। इसकी प्रतियां अनेक भाषाओं में अनुवादित होकर इसे क्रांति गीता भी कहा जाने लगा। नेताजी सुभाष चन्द्र बोस ने इस ऐतिहासिक कृति को विदेश में आजाद हिन्दी फौज में वितरित कराया था।

इसके बाद कर्मवीर पं. सुन्दरलाल ने भारत में अंग्रेजी राज नाम से 1857 की क्रांति पर चर्चित ग्रंथ लिखा। एक घटना का उल्लेख किये बिना इस ऐतिहासिक क्रांति का आंखों देखा हाल महाराष्ट्र पूना से एक निर्धन ब्राह्मण विष्णु भट्ट गोडसे अपने जीवनयापन हेतु रवाना पदयात्रा द्वारा हुआ। उसने इस ऐतिहासिक क्रांति का विवरण अपनी डायरी में लिखता रहा। उस डायरी का मराठी से हिन्दी में अनुवाद सुविख्यात साहित्य मनीषी पद्म विभूषण अमृत लाल नागर ने 'गदर के फूल' शीर्षक से किया। 1857 के क्रांतिकारी प्रयाण गीत हम हैं इसके मालिक... का सर्वप्रथम क्रांतिकारी पत्र पयामे आजादी में प्रकाशित हुआ जिसको कानपुर के ऐतिहासिक नानाराव पार्क के शहीद उपवन में जानकारी हेतु शिलालेख मानव संगम द्वारा स्थापित किया गया।

●

मानस संगम
महाराज प्रयाग नारायण मंदिर-शिवाला,
***कानपुर-208001,* मो. 9839030118**

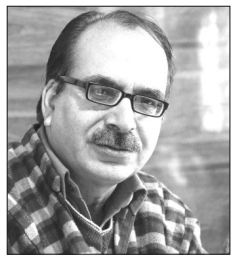

कश्मीर की उत्पत्ति का आख्यान

अग्निशेखर

कहते हैं प्रागैतिहासिक काल में कश्मीर एक विशाल सरोवर हुआ करता था। सतीसर के नाम से प्रसिद्ध यह सरोवर कल्प के प्रारम्भ से छह मन्वन्तरों तक अस्तित्व में रहा।

सातवें मन्वन्तर में यह छह योजन लंबी और तीन योजन चौड़ी झील कैसे कश्मीर बनी, इसकी एक रोचक कथा है 'नीलमतपुराण' में।संवाद शैली में लिखे गये इस स्थानीय पुराण में जनमेजय के पूछने पर वेद व्यास के शिष्य वैशम्पायन इसका सविस्तार बखान करते हैं और यह भी सूचित करते हैं कि पूर्वकाल में भी यही प्रश्न कश्मीर नरेश गोनन्द ने बृहदश्व से पूछा था।

सतीसर के तटबंधों पर, और संभवतः पहाड़ों और वनों में भी, ऋषि कश्यप की पत्नी कद्रू और दिति की संतानें नाग और दैत्य रहते थे। 'नीलमतपुराण' (श्लोक 83) में हमें सतीसर के समीपवर्ती देशों में दार्वाभिसार(पाक अधिकृत वर्तमान मुजफ्फराबाद सहित जम्मू और पुँछ के प्रदेश अथवा जेहलम और चिनाब का मध्यवर्ती भू-भाग), अंतर्गिरि (कोई निकटस्थ पर्वतीय मध्य भाग) और बहिर्गिरि (संभवतः वर्तमान, बानिहाल, किश्तवाड़ आदि) के निवासियों तथा गांधार, जुहुण्डर, शक, खश, तंगण, माण्डव तथा मद्र जातियों का उल्लेख मिलता है।

इस सतीसर के तटवर्ती किसी अंचल में दैत्यराज संग्रह के पुत्र जलोद्भव ने ब्रह्मा की घोर तपस्या के फलस्वरूप उनसे माया तथा अतुलनीय पराक्रम सहित (सतीसर के) जल में अमरत्व का वरदान पाया था। इस दैवी वरदान की प्राप्ति के मद में चूर जलोद्भव ने सतीदेश की उसी नाग जाति पर अकल्पनीय अत्याचार करने शुरू किए जिसने इन्द्र के हाथों उसके पिता दैत्यराज संग्रह की हत्या के बाद शैशवकाल से उसका पालन किया था। आख्यान के अनुसार एकबार सतीसर के किनारे इन्द्र को पौलोमी (शची) के साथ क्रीडा करते देख दैत्यराज संग्रह इतना कामातुर हुआ कि उसका वीर्य जलाशय में गिरा। वह शची का अपहरण करने की सोचने लगा। दैत्यराज संग्रह इन्द्र के साथ वर्ष भर युद्ध करने के बाद मारा गया। जलाशय में हुए उसके वीर्यपात से एक शिशु का जन्म हुआ जिसे दयावश नागों ने पाल पोसकर बड़ा किया।जल में उत्पन्न होने से यह शिशु दैत्य जलोद्भव कहलाया।

जलोद्भव के अत्याचारों से त्रस्त सतीदेश की नाग जाति तथा समीपवर्ती प्रदेशों के तमाम निवासी (मानवों सहित) असहाय और असुरक्षित जीने लगे। जलोद्भव

दार्वाभिसार, गान्धार, जुहुण्डर, शक, खश, तंगण, माण्डव आदि जनजातियों का भक्षण करने लगा। उस दुष्ट के हाथों मारे जाने के भय से लोग अपने अपने देश छोड़कर भाग खड़े हुए।

ऐसे में सती देश के नागराज नील ने तीर्थयात्रा पर निकले अपने पिता ऋषि कश्यप के पास कनखल (हरद्वार) जाकर उन्हें जलोद्भव के अत्याचारों से अवगत कराया। ऋषि कश्यप की प्रार्थना पर ब्रह्मा, वासुदेव,ईश्वर, इन्द्र और 'महाबुद्धिमान अनन्त' सहित सभी देवी देवता अपने वाहनों पर सवार होकर सतीसर में केशव द्वारा जलोद्भव के वध को देखने के लिए नौबन्धन (कश्मीर का वो पर्वत जहाँ अतीत में जलप्रलय के समय मनु ने अपनी नाव बाँधी थी। वर्तमान में यह पर्वत विष्णुपाद कौंसरनाग के किनारे खड़ा पर्वत) चले आए।

नौवबन्ध शिखर पर रुद्र, दक्षिण शिखर पर हरि, उत्तरी शिखर पर ब्रह्मा ने पड़ाव डाला। सतीसर की अपार जलराशि में मायावी जलोद्भव को मारने के उद्देश्य से विष्णु ने अनन्त को अपने लाङगल अर्थात् हल से हिमालय (वर्तमान खादनयार, बारामुला के पास) को काटकर सरोवर को जलविहीन करने को कहा। हिमालय की प्राचीर को काटकर सतीसर की जलराशि घाटी से बाहर बह निकली। जलोद्भव ने घबराकर मायावी शक्तिसे पूरे सतीदेश को घुप्प अंधेरे में डुबो दिया। तब शिव ने एक हाथ में चंद्रमा और दूसरे हाथ में सूर्य लेकर वहाँ प्रकाश की सृष्टि की।

आख्यान के मुताबिक ब्रह्मलोक से वहाँ सतीदेश आए देवी देवता (श्लोक 148-169) यह युद्ध देखते रहे। वर्षभर चले युद्ध के बाद अंत में विष्णु ने सुदर्शन चक्र से जलोद्भव का शिरच्छेद किया। जिस स्थान पर दैत्य जलोद्भव का सिर कटकर गिरा था, (वर्तमान हारीपर्वत, श्रीनगर) वहीं यानी उसी सिर पर हरि ने अपना स्थान बनाया जहाँ शिव भी उनके निकट अवस्थित हुए।

हारीपर्वत का प्रसंग :

किंवदंती यह भी है कि इस युद्ध के दौरान देवी दुर्गा ने शारिका (सारिका कश्मीरी में हारी अर्थात् मैना) का रूप धारण कर चोंच में मेरू पर्वत से कंकर लाए और जलोद्भव पर फेंके। उन कंकरों ने पर्वत का रूप ले लिया। पर्वत के नीचे दबे दैत्य जलोद्भव के कटे सिर और धड़ के उपर स्वयं देवी ने अपना पीठ बनाया जो आज प्रद्युम्नपीठ के नाम से प्रसिद्ध है।

यह भी संभव है जलोद्भव वर्तमान प्रद्युम्नपीठ पर ही देवी द्वारा मारा गया हो और देवी ने इस स्थान पर वास किया। तभी यह स्थान 'श्रीचक्र शिला' होने के महात्म्य सहित अन्य उपाख्यानों के कारण अत्यंत पवित्र माना जाता है।

प्रसंगवश यहाँ यह भी बताना चाहिए कि मगध नरेश महाराज अशोक ने अपने कश्मीर प्रवास के दौरान इसी श्रीचक्र शिलाधारी प्रद्युम्नपीठ शारिका-पर्वत के दामन में श्रीनगरी का निर्माण किया था। यही श्रीनगरी आजका श्रीनगर है जिसके आधे भू-भाग (डाउन-टाउन) का नाम अब बदलकर 'शहर-ए-ख़ास' कर दिया गया।इस आख्यान से जुड़े होने के कारण यह पर्वत 'हारीपर्वत' (शारिका पर्वत, अब नया नाम 'कोह-ए-मारान' रखा गया है) कहलाता है।

इस तरह से देखा जाए तो श्रीनगर स्थित हारीपर्वत तत्कालीन सतीसर का केंद्र स्थल जान पड़ता है। लेकिन आख्यान से इतर भू-वैज्ञानिक दृष्टि से विचार करें तो सतीसर की संभावित गहराई देखते हुए यह पर्वत (भूतल से 606 फीट) पहले उसके जल में डूबा रहा होगा।

पुनर्वास और पुनर्निर्माण

आख्यान आगे सूचित करता है कि सतीसर के जल की निकासी और जलोद्भव के मारे जाने पर नई भूमि पर विष्णु, शंकर और ब्रह्मा ने इस पुण्यभूमि को अपना निवास बनाया। तमाम देवी देवताओं ने अपने आश्रम और तीर्थस्थान बनाए। देखा देखी में गन्धर्व, अप्सराएँ, यक्ष, शैलेंद्र और गुह्यक भी ऐसा ही करते हैं। अब आख्यान में एक युगान्तरकारी मोड़ आता है। ऋषि कश्यप इस नई उपत्यका में नागों के

साथ मानवों को बसाने के लिए विष्णु से प्रार्थना करते हैं जिसका नाग किसी आशंकावश विरोध करते हैं।

शायद नागों की स्मृति में यह बात थी कि पूर्वकाल में गरुड़ के साथ युद्ध में पराजित होने पर वासुकि की प्रार्थना पर विष्णु ने हस्तक्षेप कर उन्हें बचाया था। और वरदान स्वरूप उन्हें सतीदेश मे बसने को कहा था जहाँ गरुड़ के भक्षण का भय उन्हें नहीं था। मानवों के साथ बसने से कहीं गरुड़ के आने के रास्ते न खुल जाएँ, संभव है इसी आशंका से उन्होंने विरोध किया हो।

यह भी हो सकता है नागों में सतीदेश पर एकाधिकार की भावना घर कर गई हो। जबकि विष्णु की केवल मात्र गरुड़ के वहाँ जाने पर मनाही थी।मानवों तथा दूसरी जनजातियों पर नहीं।

मानवों के साथ कश्मीर में रहने के सुझाव का विरोध करने पर क्रुद्ध कश्यप ने नागों को पिशाचों के साथ रहने का शाप दिया। नागों की ओर से नीलनाग ने क्रुद्ध कश्यप से क्षमा याचना की, उसे मनाया। तब जाकर विष्णु ने ऋषि के शाप को संशोधित किया। अब नागों को केवल छः मास मानवों के साथ और छः मास पिशाचों (प्रो.वेदकुमारी घई के अनुसार पश्चिमोत्तर पर्वतीय प्रदेश के रहने वाले; पृष्ठ 79) के साथ रहने की व्यवस्था की गई जो चार युगों के लिए थी।उसके बाद नाग केवल मानवों के साथ रहेंगें।

आगे आख्यान में हमें प्राचीन कश्मीर में समाज-जीवन, नाग संस्कृति, उसकी आचार-संहिता और (कोई पैंसठ) पर्वों -त्यौहारों का विस्तार के साथ वर्णन मिलता है। कश्मीर की नदियों, सरों, आश्रमों, सैंकडों तीर्थों और (छः सौ से ज़्यादा) प्रमुख नागदेवों आदि का उल्लेख मिलता है।

कश्मीर नाम की व्युत्पत्ति

यह नयी भूमि ऋषि कश्यप के प्रयासों के सम्मान में कश्मीर कहलाई। हालाँकि कश्मीर नामकरण को लेकर नीलमत में वर्णित इस आख्यान में ही ऐसे भी संकेत हैं कि सतीदेश में नव पुनर्वास में कश्मीरा देवी कश्यप का सहयोग करती हैं। इस कश्मीरा देवी को नीलमत अक्सर कश्मीर के पर्यायवाची के रूप में प्रयोग करता है। कश्मीरा को उमा के रूप में मान्यता है। इस दृष्टि से कश्यप से कश्मीर का नामकरण जोड़ना आरोपित लगता है।

प्रो. वेदकुमारी घई मानती हैं कि नीलमत में कश्मीरा देवी की पूजा का उल्लेख है जो पर्वतीय देवी रही होगी।संभव है उस देवी के नाम से कश्मीर नाम बना हो। नीलमत का एक श्लोक हैं–

कं वारि हरिणा अश्मनः देशादस्मादपाकृतम।
कश्मीराख्यस्ततो पश्य नाम लोके भविष्यति।।262।।

इसकी व्याख्या करते हुए भाषाशास्त्री ड़ॉ त्रिलोकी नाथ गंजू (श्री रूपभवानी रहस्योपदेश, पृ.11) कहते हैं - 'कं' (जल) को, 'हरिणा' (निकास किया, बहाया), 'अश्मनः' (पत्थर से), अतः नाम कश्मीर पड़ा। संस्कृत व्याकरण की दृष्टि से भी 'कंअअश्म अईर' अर्थात् चट्टानों के बीच रुके हुए पानी को बहाकर इस देश का नाम कश्मीर पड़ा।

स्थानबोध के अधिकारी विद्वान ड़ॉ. दिलीप कुमार कौल के अनुसार 'कं वारि हरिणा से कश्मीर नाम की व्युत्पत्ति सीधे सीधे उन इकोलः जिकल प्रक्रियाओं से बना है जिनसे कश्मीर की भौगोलिक इकाई अस्तित्व में आई। शायद किसी भी स्थान का यह एकमात्र नाम है जो उस भौगोलिक प्रक्रिया को परिभाषित करता है जिससे वह स्थान उत्पन्न हुआ।" अन्य एक संभावित व्युत्पत्ति पर प्रो. वेदकुमारी घई कहती हैं, कः का अर्थ है प्रजापति, कश्यप भी प्रजापति हैं। उसके द्वारा निर्मित भूमि कश्मीर है। दूसरे, कम् अर्थ जल है, विष्णु द्वारा जल को 'हलिणा' (हल से) निकाला/निकलवाया गया, अतः नाम कश्मीर पड़ा।

सतीसर का भूगोल और भू-विज्ञान

प्राग-ऐतिहासिक काल में कश्मीर में कथित सरोवर के अस्तित्व की प्रामाणिकता पर देश-विदेश के अनेक प्रसिद्ध भू-वैज्ञानिकों के शोध और निष्कर्षों से नीलमत के इस आख्यान की पुष्टि होती है।

ये वैज्ञानिक स्थापनाएँ इस आख्यान की सुंदरता है, आधार नहीं। मिथकीय आख्यान किसी प्राचीन जनमानस के सामूहिक अवचेतन की कल्पना-शीलता का प्रतिफलन होते हैं। सतीसर के आख्यान के लोक-सृजन का प्रेरक तत्व कश्मीर घाटी का तसलेनुमा भूगोल है जिसके चारों तरफ की उँची पर्वतमाला में वर्तमान खादनयार (बारामुला) के पास बना तंग दर्रा भूकम्प के कारण या विनाशकारी बाढ़ से बना होगा।

इस संदर्भ में प्रो. वेदकुमारी घई ने नीलमत का अध्ययन करते हुए ड्रिव फ्रेडेरिक, कर्नल गॉडविन ऑस्टिन, लिडेक्कर, आर.डी. ओल्डहम, डी. एन. वाडिया, एम. बी. पिथवाला और जी.ई.एल.कार्टर जैसे आधुनिक भूगर्भवेत्ताओं के निष्कर्षों को बखूबी प्रस्तुत किया है। उपर्युक्त भूवैज्ञानिकों में आर.डी. ओल्डहम ही एकमात्र अपवाद हैं जो प्रागैतिहासिक सरोवर के अस्तित्व को नहीं मानते। जो भी हो, कश्मीर घाटी में बारामुला (प्राचीन वराहमूल) से शुपयन (अनंतनाग) तक फैले सर्पिल या लहरदार करेवाओं को भूवैज्ञानिकों ने प्राग-इतिहास काल में विशाल झील के अवशेष माना है। इसकी लहरों के साथ जमा होते रहे जलोढक जमाव (रेत-मिट्टी) से ये करेवा बने हैं। प्रो. वेदकुमारी घई (पृष्ठ 41) एक उद्धरण देती हैं कि झील के वर्तमान तल से 1500 फीट की उँचाई पर के करेवों में सिंघाड़ों के सही नमूनों की अस्थिति की व्याख्या इसके (झील के) बिना नहीं की जा सकती क्योंकि यह पौधा अधिक मात्रा में झीलों में ही आता है। सन् 1885 में कश्मीर में भूकम्प में ये झील की वर्तमान सतह से 1500 फीट की उँचाई पर मिले थे।

सरोवर की जलराशि

नीलमत के अनुसार यह विशाल झील लंबाई में छः योजन (एक योजन (14 से 15 कि.मी.) और चौड़ाई में तीन योजन थी और (भूवैज्ञानिक परीक्षण के आधार पर) भूतल से लगभग 2000 फुट उँची थी। लगता है कि श्रीनगर तल से 1100 फीट उँचा शंकराचार्य-पर्वत भी सतीसर नामक इस विशाल झील में जलमग्न रहा होगा। इस उपलब्ध माप से हम कथित सरोवर की जलराशि का अनुमान यों लगा सकते हैं :

फार्मूला :

लंबाई - छः योजन/90 कि.मी.

चौड़ाई - तीन योजन/45 कि.मी.

उँचाई (वर्तमान भूतल से) - 0.6 कि.मी.

इस प्रकार 90 x 45 x 0.6 = 2430 (वोल्यूम कि. मी.) (80 लाख क्यूबिक फीट) 59,840,000 अर्थात् 6 करोड़ गैलन।

इस जलराशि की संभावित माप की गणना के लिए मैंने अपने बेटे हिमालय से सहायता ली। कल्पना करें, यह छः करोड़ गैलन जलराशि सात हज़ार फीट उँचाई (अनुमानित जलस्तर) से बहकर पाँच हज़ार फीट (समुद्र तल से कश्मीर की उँचाई) तक खादनयार (बारामुला) के तंग दर्रे से किस प्रलयंकारी वेग से बाहर नीचे बही होगी। कोई मुझे बताए कि इस निर्जलीकरण की प्रक्रिया को कितना समय लगा होगा! नीलमत पुराण (श्लोक 175-176) में इस प्रलयंकारी घटना का वर्णन यों आया है :- पर्वतराजाधिपति हिमालय को विदीर्ण किए जाने पर जलराशि त्वरित गति से बह निकली। तेज़ वेग और विस्फोटक ध्वनि से सभी प्राणी संत्रस्त हुए। उसकी गगनचुंबी तरंगों ने उँचे पर्वत शिखरों को जलमग्न किया। नीलमत (श्लोक 180) में वर्णन मिलता है कि विष्णु ने वर्ष के अंत में दैत्य का बलपूर्वक शिरच्छेद किया। अर्थात् यह निर्जलीकरण को एक वर्ष लगने का संकेत है क्या कथा में? भूगर्भवेताओं के अनुसार वर्तमान कश्मीर की डल, वुल्लर, नगीन, आँचार, मानसबल, होकरसर ये सभी झीलें प्राचीन सतीसर के ही शेष बचे हुए जलाशय हैं।

●

बी-90/12, भवानी नगर,
जानीपुर, जम्मू-180007
फोन :9797003775

सिलेठी समाज में होने वाली वैवाहिक रस्में

डॉ. मधुछन्दा चक्रवर्ती

सिलेठी समाज बंगाल की एक विशिष्ट सम्प्रदाय है। कह सकते हैं कि यह बंगाली समुदाय की ही एक शाखा है। यह भारत की अन्य आर्य एवं आर्येतर जातियों के समान ही अपने अस्तित्व को बचाते हुए वर्षों से अपनी संस्कृति एवं परम्परा लिए जीती चली आ रही है।

वर्तमान समय में यह बंगाल के श्रीहठ एवं भारत के असम के कछार जिले, करीमगंज, हाइलाकान्दि, सिलचर तथा अन्य भागों में, त्रिपुरा के धर्मनगर, कैलाशर आदि स्थानों में रह रही है। इन्हें सिलेठी बंगाली के नाम से ही जाना जाता है। इनकी भाषा बांग्ला भाषा की एक उपबोली है जिसे हम सिलेठी कहते हैं। इसकी अपनी लिपि भी है जो कि कैथी तथा पूर्वी नागरी से सम्बन्धित है। इसे मुस्लीम नागरी तथा मुहम्मद नागरी आदि के नाम से भी जाना जाता है। परन्तु भारत में रहने वाले सिलेठी लोग अभी भी बांग्ला भाषा एवं लिपि का ही प्रयोग करते हैं। सिलेठी भाषा में कई सारी साहित्यिक रचनाएँ भी हुई है, विशेषकर धामाइल बांग्ला की सबसे लोकप्रिय लोक नृत्य एवं गीत इसी की धरोहर है। यह धामाइल आज भी सिलेठी प्रधान समाज में शादियों के दौरान खूब प्रचलित है। इसकी संस्कृति एवं कुछ रीति-रिवाज भारत की अन्य कई जातियों से मेल खाते हैं। फिर भी कुछ ऐसी विशेषताएँ इसमें है जो इसे बंग्ला समाज में भी विशिष्ट स्थान दिलाती है। सिलेठी समाज की एक और विशेषता है कि इस समाज में दहेज प्रथा बिलकुल नहीं है। यहाँ किसी भी प्रकार का लेन-देन नहीं है।

सिलेठी समाज में विवाह एक प्रमुख सामाजिक आयोजन है। इसकी शुरू आत से लेकर अंत तक प्रकृति एवं समाज के बीच के संबंध तथा व्यक्तिजीवन से जुड़ी भावनाएँ दिखायी देती हैं। विशेषकर विवाह के सम्पन्न होने के बाद नयी दुल्हन के भाई को अपनी बहन के ससुराल जाकर एक फलदायी पेड़. (केले का पौधा) लगाना पड़ता है। ये रिवाज हर विवाह में निभाया जाता है। अन्य कुछ विशेष रस्में इस प्रकार हैं –

विवाह संस्कार में सबसे पहली प्रथा है वाग्दान (दिवसस्थीर) की। इस रस्म की शुरू आत लड़की के घर पर होती है। लड़के-लड़की के पिता आमने-सामने बैठकर एक घट रखकर एक-दूसरे को मौखिक रूप से अपने लड़के तथा लड़की को दान करते हैं। उस दिन विवाह की तारीख भी पक्की की जाती है। कौन-कौन से दिन क्या-क्या विधियाँ होंगी तथा कैसे होंगी यह सारी बातें तय कर दी जाती है। अंत में घर की स्त्रियाँ उलु ध्वनी या

जुगाड़[2] करती है तथा उस दिन से इस मंगल अनुष्ठान की शुरूआत होती है।

इसके बाद मंगलाचरण की विधि होती है। इस दिन लड़के के घर वाले माता-पिता, भाई-बहन सभी लड़की के घर विवाह के निश्चित दिन, विवाह से पहले होने वाली सभी प्रकार की रस्में जैसे पानोखिलि, रू पशीपूजा, काली पूजा, शुरषमात्रिका पूजा, आद्रीस्नान, अदिवास, विवाह, बाशी-विवाह आदि अनुष्ठानों के लिए निमंत्रण एवं शुरूआत करते है। इस अनुष्ठान में लड़के वालों की तरफ से लड़की को विवाह के लिए प्रथम भेंट स्वरूप सुहाग की चीज़ें जैसे शंख की चूड़ी, सिंदूर, साड़ी, श्रृंगार की चीज़ें, फल-मिठाई, मछली, सोने के गहने आदि दिए जाते हैं। इस दिन वर पक्ष की तरफ से आए पुरोहित लड़की को आशीर्वाद देते हुए पाँच आम के पत्तों से शांति प्रदान करते है। फिर मंगल कामना हेतु सिन्दूर से टीका करते हैं। फिर लड़के-लड़की के सभी गुरू जन बारी-बारी से आशीर्वाद देते हैं। इस अनुष्ठान की विशेष बात यह है कि इसमें खान-पान के खर्च के अलावा सभी खर्च वर पक्ष ही वहन करते हैं। इसमें लड़की को आशीर्वाद देने के लिए धान एवं दुर्बा का प्रयोग किया जाता है। सभी बारी-बारी से उसके माथे पर यह डालकर कामना करते है कि नए जोड़े का जीवन धान-दुर्बा की तरह फले-फूले और दीर्घायु हो।

इसके बाद पानोखिलि की रस्म होती है। इसमें पाँच सुहागनें मिलकर पान में खिली (काटी) देती है। एक पान में चाँदी की काटी द्वारा पान बनाया जाता है बाकी सभी बाँस की काटी या खिली से पान बनाया जाता है। इसकी महत्ता यह है कि होने वाले वैवाहिक अनुष्ठान में किसी प्रकार की बाधा या विच्छेद उत्पन्न न हो। इसके बाद सभी खिलियों को ले जाकर अलग-अलग मंदिरों में स्त्रियाँ भगवान को अर्पण करती हैं। यह अनुष्ठान सबसे पहले वर पक्ष के घर में होता है फिर वधू पक्ष के घर होता है। इसमें समय भी निश्चित कर लिया जाता है कि कौनसी रस्म कब होनी है। सभी रस्में वर पक्ष के घर में प्रथम होती हैं फिर उसी के कुछ देर बाद वधु के घर में होती हैं।

इसके बाद रूपसी पूजा होती है। इसमें ब्राह्मणों द्वारा प्रथम घर में दुर्गा के इस रूप की पूजा होती है। फिर पाँच सुहागनें उस दिन उपवास करते हुए (रूपसी पेड़) या (शेवड़ा गाछ) के डाल को लाकर घर के एक कोने में स्थापित करती हैं। फिर उस डाल की पूजा करती हैं। फिर उसे दूध, पानी, तेल से स्नान कराती हैं। फल, नैवेद्य, मिठाई एवं अपने द्वारा बनाए गए पान भोग स्वरूप चढ़ाती हैं। अंत में डाल के नीचे मिट्टी रखती हैं। फिर उसी डाल से पाँचो सुहागने गले लगाकर बारी-बारी से सखी सम्बन्ध बनाती है एवं कामना करती है कि उनका जीवन एवं नए जोड़े का जीवन बिलकुल सखाभाव से एवं मजबूत बनकर रहे।

इसके बाद होती है शुरसमात्रिका[6] पूजा। इस पूजा में गोमाता, पृथ्वीमाता, धात्रीमाता, जन्मदात्रीमाता आदि सोलह माताओं की पूजा होती है। फिर आद्रीस्नान की रस्म होती है। इसमें सुहागने सात घट लेकर सात अलग-अलग घाट का पानी लेने जाती हैं जिससे दुल्हन को स्नान कराया जाता है। इसमें प्रथम घाट पर गंगा माँ की पूजा करते हुए तेल, सिंदुर, खोई, दही, मिठाई, धान-दुर्बा से उन्हें तुष्ट करती हैं। फिर पानी भरकर भरे हुए घड़ों को डाला में रखकर सिर पर लाद कर लाती हैं। सबसे पहले उस दिन दुल्हन को हल्दी लगायी जाती है, फिर घड़ों में भरकर लाए गए जल से स्नान कराया जाता है। उस दिन जल भरने के लोक गीत धामाइल भी गाए जाते हैं। वर पक्ष के घर में भी यही रीति होती है परन्तु वहां सात घड़े के बदले नौ घड़े के जल का प्रयोग होता है।

अदिवास उसके बाद की रस्म है जिसमें दुल्हन को दुबारा घड़े के जल से स्नान कराया जाता है। फिर उसे नए वस्त्र पहनाए जाते हैं। उस दिन उसे अपने पिता के घर से मिली सुहाग की चूड़ी (शंख या शाखा)

समेत सोने के गहने पहनाए जाते हैं। शंख पहनाने की विधि यह है कि इसमें पहले एक सुहागन चूड़ी को अपनी मांग में छुवाती है फिर दुल्हन की मांग में छुवाती है और तब उसे यह पहनाया जाता है। इसके साथ ही ऊलू ध्वनी या जुगाड़ लगाया जाता है। फिर लाल रंग की चूड़ी पॉला[9] पहनाया जाता है। तत्पश्चात् उसे बाकी के गहने पहनाए जाते है।

नांदी मुखेर बाड़ा :-

यह रिवाज भी उसी दिन पालन किया जाता है। इसमें ओखली में धान, चावल, पान-सुपारी आदि को कोई भी दो सुहागनें मिलकर बारी-बारी से कूटती है। इसके बाद पान-सुपारी, धान के छिलके एवं चावल के दाने अलग कर लिए जाते है। धान के छिलके को मुख चन्द्रिका के पतीले में रखा जाता है। यह पतीला विवाह के दिन वर-वधू के बीच होने वाली शुभदृष्टि के काम आती है। इसमें लड़की वालों के पतीले में तेल वाली बाती रखी जाती तथा लड़के वालों के पतीले में घी की बाती रखी जाती है। चावल के दाने विवाह के दिन आब्यदिक में काम आती है जिसमें सात पुरषों को पिंडदान दिया जाता है।

शुंदा-मेथी बाटा :-

यह रिवाज इसके बाद होता है जिसमें पाँच सुहागनें चादर के नीचे अपने-आपको ढककर एक-साथ शुंदी पौधे के जड़ को तथा मेथी को पत्थर से पीसती है। सबसे पहले शुंदी के जड़ को जलाया जाता है फिर उसे मेथी के साथ पीसने पर उसमें सरसों का तेल मिलाया जाता है। जब ये पीसा जाता है तब यह सावधानी बरती जाती है कि दोनों पत्थरों के बीच बिलकुल भी आवाज़ न होने पाए। यदि आवाज़ होती है तो माना जाता है कि पति-पत्नी में झगड़ा होगा। पीसने के बाद इसे चार अलग-अलग पान में उठाकर रखा जाता है। एक पान आब्यदिक में दूसरा चुरा पानी में तीसरा विवाह के दिन तथा चौथे से लड़की को टीका किया जाता है।

चुरा पानी :-

यह अदिवास की सबसे अंतिम रस्म है जो शेष रात्री में होता है। इसमें सुहागने चुपचाप घाट पर पानी भरने जाती है। इस समय दो दीये पति-पत्नी के नाम पर नदी में बहाये जाते हैं। पति के लिए घी का दीया तथा पत्नी के लिए तेल का दीया बहाया जाता है। माना जाता है कि यदि पति-पत्नी में मेल होगा तो दोनों दीये साथ-साथ बहेंगे और यदि नहीं तो दोनों दीये एक-दूसरे से दूर होते हुए बहेंगे। साथ ही शुंदा-मेथी वाले पान को गंगा माँ को अर्पण कर दिया जाता है। फिर घाट से एक लोटा जल भरकर सुहागने चुपचाप रख देती है जिससे कि आब्यदिक अनुष्ठान में सात पुरूषों को चढ़ाने वाले जल के काम आता है। आब्यदिक में पूर्व-पुरुषों को जल, अन्न, वस्त्र आदि सब कुछ चढ़ाया जाता है। आब्यदिक शब्द का अर्थ है देवताओं का आहवान करना। जब भी कोई मांगलिक अनुष्ठान होता है तो देवताओं का आहवान करके उनसे आशीर्वाद लिया जाता है जिसे सिलेठी लोग आब्यदिक कहते हैं। विवाह के दिन तीन मुख्य रस्में होती है। पहली रस्म में विवाह के सुबह दुल्हन को नाई आकर आशीर्वाद स्वरूप सात डालिम के किस्लय, दुत्रा फूल की कलि, सात केले के पौधे के छोटे चारे, साथ अलग-अलग फूलों से बना गुच्छा देता है। फिर एक केले के पत्ते में एक मानव आकृति तैयार की जाती है जिसे दुल्हन को आँख मूंद कर अपने पैरों से मिटाना होता है। यह रस्म 'सौतन मिटाओं' कहलाती है जिससे कि भविष्य में पति-पत्नी के बीच कोई तीसरा न आए। उसके बाद विवाह का स्नान कराया जाता है।

दूसरी रस्म में दुल्हन को सात पेड़ों (फूल या फल के) डाल के चारों ओर सात बार प्रदक्षिणा कराया जाता है। प्रत्येक प्रदक्षिणा के बाद उसे चावल के दान के पिसे लड्डू को मिट्टी में अपनी एड़ी से गाढ़ना होता है। इसे विषनाढ़ू कहते है। ताकि यह विवाह सात पेड़ों के साक्ष्य में हो।

दधि-मंगल :-

इसमें सास दूल्हे के मंगल के लिए उसे सोने-चांदी की अंगूठी पहनाती है। इसमें दूल्हा अपनी होने

वाली सास की तरफ पीठ करके खड़ा होता है। दोनों के बीच एक कपड़ा रख दिया जाता है। सास दूल्हे का मुख देखे बिना उसके बाये हाथ को पकड़कर उसे दहि से धुलाती है फिर उसे अंगूठी पहनाती है। इस रस्म से पहले दूल्हे को ससुराल से मिले वस्त्र पहनाए जाते हैं। इसमें धोती, कुर्ता, चादर, मुकुट, जूता आदि। सोने का हार तथा अंगूठी। इसी के बाद उसे विवाह मण्डप या कुंज में ले जाकर बिठाया जाता है।

विवाह के दिन भी दुल्हन के लिए ससुराल से दूसरी भेंट आती है। जिसमें उसके लिए सुहाग की चीज़े तथा सोलह श्रृंगार का सामान, फल-मिठाई तथा एक मछली भी रखी जाती है। दुल्हन को विवाह कुंज में ले जाने से पहले पुरोहित उसे आशीर्वाद देते है तथा उसे टिका लगाकर मण्डप ले जाया जाता है। मण्डप में उसे दूल्हे के चारों ओर सात बार प्रदक्षिणा करनी पड़ती है। प्रत्येक प्रदक्षिणा के खत्म होने के बाद उसे दूल्हे के पैरों में आबिर और फूल चढ़ाना होता है। सातवे प्रदक्षिणा के समय दोनों खड़े होकर अपने-अपने गले से पुष्पहार ऊतारकर एक-दूसरे को पहनाते हैं। फिर दोनों को मुखचन्द्रिका घट में रखे घी एवं तेल के दीये से शुभदृष्टि की रस्म पूरी की जाती है। फिर वैदिक रीति से मंत्रोपचार करते हुए पिता अपनी पुत्री का हाथ वर के हाथ में देता है तथा विवाह की बाकी रस्में होती है। इन रस्मों के पूरे हो जाने के बाद पुरोहित दुल्हा-दुल्हन को अग्नि में होम करवाते हैं तथा पूरी विधि सम्पन्न होने पर नये जोड़े के लिए दुल्हन की छोटे भाई द्वारा खोयी बटवायी जाती है। यह पाँच भाग में बाँटा जाता है। इसका अपना एक महत्त्व होता है। खोयी वास्तव में जैसे देवताओं को नित्य चढ़ाया जाने वाला प्रसाद होता है। उसी प्रकार खोयी विवाह में किए जाने वाले यज्ञ में ब्रह्मा को हविश के रूप में चढ़ाया जाता है। यह यज्ञ ही है जिससे समस्त प्राणियों की सृष्टि हुई है। नए जोड़े द्वारा यज्ञ में खोयी का अंतिम भाग दूल्हा-दुल्हन पीढ़े पर खड़े होकर साथ में होम करते हैं। विवाह में नये जोड़े के लिए यह कार्य दुल्हन के छोटे भाई द्वारा कराया जाता है जिसके बाद दूल्हे की तरफ से छोटे भाई को भेंट दी जाती है।

विवाह सम्पन्न होने के बाद दूल्हा-दुल्हन को ले जाया जाता है। नए जोड़े के साथ भाभियाँ, जीजा तथा साला-साली आदि आमोद-प्रमोद का कार्यक्रम करते हैं। इसमें शोरापातिल रखी जाती है जिससे दूल्हा-दुल्हन खेलते हैं। इस शोरापातिल में धान तथा 21 कौड़ियाँ होती है। यह खेल बारी बारी से 7 बार खेला जाता है। पहले कौड़ी 7 बार खेली जाती है, फिर दूल्हे की अंगूठी से खेली जाती है, फिर पातिल के ढक्कन के साथ 7 बार खेला जाता है। इस खेल का महत्त्व दरअसल इसलिए है क्योंकि दूल्हा विवाह के दिन पूरी तरह से अकेला ही लड़की के घर ठहरता है। विवाह के वैदिक अनुष्ठान पूरे हो जाने के बाद लड़के के साथ आयी बारात भोजन करके वापस चली जाती है, कभी-कभी लड़के का जीजा या छोटा भाई ही केवल साथ रहता है। दूल्हा कही अपने-आप को अकेला न अनुभव करे इसलिए उसके साथ लड़की के घरवाले तथा अन्य सम्बन्धी इस खेल के जरिए उसे खुश रखते हैं। इस खेल में लड़की के ही परिवार वाले दो अलग-अलग दल में बंट जाते है तथा ये खेल बड़े आनन्द के साथ खेलते हैं।

इस रस्म के बाद पंचामृत की रस्म होती है। इसमें चिवड़ा, मीठी दही, घी, नारियल का संदेश(नारियल की मिठायी) तथा मधु को एक पात्र में लेकर दूल्हे को दिया जाता है। इससे वास्तव में दूल्हे की बुद्धि परीक्षा की जाती है। लोगों में प्रचलित है कि (यदि दूल्हा बुद्धू है तो वह इसे खा लेगा, यदि नहीं तो नहीं खायेगा।) दूल्हे को पात्र में रखी सारी चीज़ों को अपने हाथों से एक साथ मिलाना पढ़ता है तथा पंचग्रासी(पाँच बार मुह में लेने की क्रिया) करके रख देना होता है। ये बाद में भगवान विष्णु के नाम पर चढ़ा दिया जाता है।

इस रस्म के बाद लड़की की भाभी दूल्हे के लिए थाली सजाती है तथा उसके सामने रखती है।

दूल्हे के भोजन कर लेने के बाद दुल्हन को भी उसी थाली में भोजन कराया जाता है। क्योंकि जब पूरा जीवन प्रेम के साथ एक-दूसरे के साथ बिताना है तो एक-दूसरे का झूठन से दोनों की भावनाएँ भी मिल जाएगी। फिर भाभियाँ मिलकर नए जोड़े को बासर घर ले जाती है। फिर भाभी दोनों को पान तथा मिठायी देती हैं, दूल्हा-दुल्हन दोनों एक-दूसरे को खिलाते है।

विवाह के अगले दिन बाशी बिया की रस्म होती है। इसका अर्थ है बासी शादी। इस रस्म की शुरु आत सबसे पहले भाभी द्वारा बासर घर में दोनों को जगाना पड़ता है। दूल्हा बासर घर में बिस्तर में या कही भी पैसे छुपाकर रख देता है। भाभी उसे ढूंढ लेती है तो उसे पैसे मिल जाते हैं। फिर नए जोड़े को एक साथ नहलाने के लिए पीढ़े पर बिठाया जाता है। दोनों के सर पर एक साथ गमछा रखा जाता है। हल्दी तथा अदिवास की रात को आद्रीस्नान में इस्तेमाल किए गए सात घड़े में पानी भर कर रखा जाता है। रस्म में दूल्हा-दुल्हन को अपने हाथों से दोनों को हल्दी लगानी होती है। फिर सभी सुहागिन औरतें दोनों को हल्दी लगाती है। फिर दूल्हे को एक एक करके छोटे घड़े को अपने सिर के उपर से घुमाकर दुल्हन के सर पर डालना पड़ता है। इसमें भी कई बार दूल्हे का साला मस्ती करते हुए, जब दूल्हा सभी सातों घड़ों का पानी डाल देता है, तब वह एक बड़े से घड़े में पानी भरकर दूल्हे पर डाल देता है। इस रस्म में कई बार दूल्हा भी दूल्हन की भाभी तथा अन्य सम्बन्धियों को भी हल्दी तथा पानी से भिगोकर उनके साथ खेल सकता है। ये रस्म भोर के समय या विवाह के दिन में पड़ी हुई तीथियों के समय के अनुसार होता है। इसके बाद दूल्हा-दुल्हन को नए कपड़ो तथा गहनों से सजाया जाता है। बाशी बिया भले ही बासी शादी हो लेकिन इसमें दोनों के लिए नए कपड़े रखे जाते है। इस रस्म में लड़के-लड़की को कुछ चीज़ों के चारों तरफ सात फेरे लेने पड़ते हैं। बाँस के चार टुकड़े, सीया(मूसल), पुताइल (सिल बट्टा का सिल), धान के पौधे को रखने के लिए आधार चाहिए होता है, एक गड्ढा किया जाता है, उस गड्ढे में पानी डाला जाता है। उसी जल में सूर्य को अर्घ्य दिया जाता है। सूर्य को अर्घ्य देने के लिए एक लाल जबा का फूल, दुर्बा, केला या हरितकी तथा थोड़ा सा दूध। अब दूल्हे के बाये हाथ से दुल्हन के दाहिने हाथ को रूमाल या किसी कपड़े से पूरी तरहा से ढककर बाँध दिया जाता है। पुरोहित मंत्रोच्चारण करते हैं फिर उनके कहने पर नए जोड़े को दाहिने से बायी ओर घूमते हुए सात बार परिक्रमा करनी पड़ती है। इसमें लड़का अपने दाहिने पैर से मूसल के उपर से जाता है और लड़की को अपने बाये पैर से जाना होता है। इस बात का खयाल दोनों को रखना पड़ता है कि मूसल में पैर ना लगे। सात बार की परिक्रमा के बाद पुरोहित नए जोड़े को ऊाते हुए सूरज का देखकर उसकी पूजा वहीं पर सम्पन्न करवाते हैं। यही रस्म दूल्हे के घर पर भी निभायी जाती है। शादी के चौथे दिन को चतुर्थ मंगल कहा जाता है। उसी दिन यह रस्म दूल्हे के घर वाले भी करते हैं। इस रस्म के पूरे हो जाने के बाद नए जोड़े को घर में लाया जाता है। सभी बड़े-बुजुर्ग नए जोड़े को आशीर्वाद देते हैं। आशीर्वाद स्वरू प सोने के गहने, नए बर्तन, रु पए-पैसे दिए जाते हैं जिससे केवल और केवल नया जोड़ा ही इस्तेमाल करता है अपने नए संसार की शुरूवात करने के लिए। यदि कन्या के घर से कुछ न भी मिले तो भी लड़के वाले किसी प्रकार की मांग नहीं करते हैं। बाशी बिया की रस्म खत्म होने के बाद लड़की के घर वाले तथा लड़के के परिवार से आए सदस्य मिलकर पाशा खेलते हैं। इस खेल में बहुत मज़ा आता है। लड़की वाले लड़की को इस खेल में जिताने का प्रयास करते हैं तो लड़के वाले भी लड़के को जिताने का प्रयास करते हैं। इस खेल के अन्त में जो भी विजयी होता है वह हारने वाले (दूल्हा या दुल्हन) के पास शर्त रखता है कि उसकी कोई एक इच्छा पूरी करे। ज्यादातर इसमें दुल्हन ही शर्तें रखती है। इसके बाद

सभी मिलकर भोजन करते हैं। लड़की वाले लड़के की थाली को बहुत सुन्दर से सजाकर उसमें पाँच-छः प्रकार के व्यंजन, मछली, माँस, कभी-कभी अण्डा तथा खीर और अलग-अलग प्रकार की मिठाई भी रखते हैं। दूल्हा-दुल्हन साथ-साथ खाना खाते हैं। साथ में दुल्हन के माता-पिता भी खाना खाते हैं।

इसके बाद कन्या विदाई की रस्म होती है। इस रस्म की खास बात यह है कि ये पुरोहित द्वारा तय किये गये मुहुर्त पर ही होता है, परन्तु नयी दुल्हन जो अपने ससुराल जा रही है वह अपने ससुराल की छत नहीं देख पाये उस बात का खयाल रखा जाता है। इसलिए कभी-कभी भौगोलिक परिस्थिति का ध्यान रखकर ही शुभ मुहुर्त निकाला जाता है। इस रस्म में सभी नए जोड़े को धान, दुर्बा से आशिर्वाद करते हैं तथा मिठाई खिलाकर विदा करते हैं। विदा होने से पहले दुल्हन की माँ के गोद में दुल्हा-दुल्हन दोनों को बैठना पड़ता है तथा दुल्हन को अपने बाए हाथ से एक मुट्ठी चावल या धान माँ के आँचल में डालनी पड़ती है। विदाई की ये रस्म बहुत दुखद होती है।

इसके बाद की रस्म है वधु-वरण। इसमें जब नयी बहू पहली बार ससुराल पहुँचती है तो उसके स्वागत के लिए एक बड़ी सी थाली में दूध और आल्ता मिलाकर दरवाज़े पर रखा जाता है। सास अपनी बहू का स्वागत आरती उतारकर करती है। बाँस के बने डाले में घी का दिया रख कर तथा सिंदूर तथा सभी प्रकार की शुभ चीज़ों से उसकी आरती उतारती है। उसके बाद नयी बहू को उस दूध और आल्ता पर खड़े होना पड़ता है। उसके बाद नयी बहू अपने रंगे हुए पैरों से धीरे-धीरे कदम रखते हुए घर में प्रवेश करती है। सास फिर अपनी बहू को घी के दीये के आलोक में उसका चेहरा देखती है। सास इसके बाद अपने बेटे-बहू को अपनी गोद में बिठाती है। फिर सास अपनी नयी बहू को लोहा पहनाती है। यह लोहा दरअसल चूड़ी होती है जो कि लोहे की बनी होती है और पूरी तरह से सोने से मढ़ी होती है। इसे नयी बहू जीवन पर्यन्त पहने रखती है। इसके बाद नयी बहू को एक दूसरे कमरे में ले जाया जाता है। जहाँ काल रात्री की रस्म होती है। इस रस्म में नए जोड़े को अलग कर दिया जाता है। काल रात्री शादी के दूसरे दिन जब बहू ससुराल पहुँचती है तब से शुरू होकर अगले पूरे दिन चलता है। इस रस्म में दूल्हा-दुल्हन को एक दूसरे को देखने की इजाजत नहीं होती है। ऐसी मान्यता है कि यदि यह रस्म नहीं की जाए तो नए जोड़े का वैवाहिक जीवन अच्छा नहीं बीतेगा। साथ-ही-साथ इस रस्म के साथ कई पुरानी लोक कथाएँ भी प्रचलित है। अगले दिन चतुर्थ मंगल की रस्म होती है। इस रस्म में नए जोड़े को एक साथ बिठाकर हल्दी लगाई जाती है। लड़की के घर में जिस प्रकार आद्रस्नान तथा बाशी बिया की रस्म हुई थी बिलकुल वही रस्म लड़के के घर में होती है। इसमें लड़के के परिवार की औरतें यह रस्म पूरा करती है। इसके बाद नयी दुल्हन नहाकर तैयार होती है। वह अपने पिता के घर से जो शादी का जोड़ा पहनती है वही पहनकर तैयार होती है। बाशी बिया के दिन जो सूर्य अर्घ्य दिया जाता है वही रस्म लड़के के घर भी होती है। इसके बाद पाटी बोला की रस्म होती है। इस रस्म में एक बाँस की पाटी अर्थात् चटाई रखी जाती है जिसे लड़की के घर से लाया जाता है। दूल्हा-दुल्हन दोनों को साथ में यह चटाई समेटनी पड़ती है। परन्तु इसमें खास बात यह होती है कि लड़का जिस तरफ से चटाई समेटता है उसके ठीक उलटा लड़की को करना होता है। इसमें बहुत मज़ा आता है। इसके बाद आशीर्वाद की रस्म होती है जिसमें लड़के के परिवार वाले नयी बहू को गहने तथा अन्य बहुमूल्य उपहार देते हैं। ज्यादातर सोने के गहने दिए जाते हैं परन्तु यदि गरीब परिवार हो तो तब भी नयी बहू को अपनी नयी गृहस्थी शुरू करने के लिए लड़के परिवार वालों की तरफ से तथा अन्य सगे-सम्बन्धियों द्वारा घरेलु वस्तुएँ तथा अन्य नए उपहार दिए जाते है। इस रस्म के बाद नयी बहू को ससुराल के दिए हुए गहनों से सजाया जाता हैं तथा ससुराल की तरफ से दी गयी साड़ी पहनायी

जाती है। इसके बाद नए जोड़े को एक और रस्म पूरी करनी होती है। इस रस्म को कहते हैं भात-कापोड़ । इस रस्म में दोनों पति-पत्नी एक कपड़े को दो ओर खड़े होते हैं। पति अपनी पत्नी को एक थाली में सूती साड़ी, गहने, सिन्दूर, शाखा-पोला तथा दूसरी थाली में सभी प्रकार के आमिश-निरामिश व्यंजनों तथा भात से भरी हुई थाली कपड़े के नीचे से देता है। ये उसका वादा होता है कि जब तक वह जीवित है तब तक वह उसका भरण-पोषण करता रहेगा। तथा जो भी उसे दिया जा रहा है उसे उसी रू प में स्वीकार करना पड़ेगा। पत्नी यह सब अपने पति के चरण स्पर्श करते हुए स्वीकार करती है। उसके बाद वह पहली बार अपने ससुराल के रसोई के घर में पका हुआ भोजन करती है। इससे पहले लड़की को किसी दूसरे के घर की रसोई में बना हुआ भोजन ही कराया जाता है। दूसरी खास बात यह है कि लड़की जब अपने पिता के घर से विदा होती है तो उसके आँचल में पिता के घर से थोड़ा सा धान या चावल हल्दी के साथ बाँधकर दिया जाता है जिसे वह ससुराल पहुँचकर रसोई के भण्डारे में मिला देती है परन्तु जब तक स्वयं पति अपने हाथों से अपनी पत्नी को भात तथा कपड़े की रस्म में यह चीज़े नहीं देता तब तक वह पति के घर का अन्न नहीं ले सकती है। इस रस्म से नए बने पति-पत्नी में प्रेम तथा गरिमा बनी रहती है। इस रस्म को चतुर्थ मंगल के साथ-साथ बोऊभात भी कहा जाता है। इस दिन या अगले दिन लड़के के परिवार वाले नयी बहू के स्वागत में एक बहुत बड़ा भोज का आयोजन करते हैं। इसमें लड़के के आस-पास के पड़ोसी तथा अन्य मित्र आदि नयी बहू से मिलते हैं उसे जान-पहचान करते हैं।

इसके बाद फूल-सज्जा अर्थात् सुहाग रात की रस्म होती है। अक्सर सिलेठी शादी में इसी रात को पति अपनी पत्नी की माँग में सिन्दूर भरता है। वह अपनी सोने की अंगूठी को सिन्दूर से पूरी तरह भरकर अपनी पत्नी की माँग में भर देता है। कहते हैं कि यदि सिन्दूर भरते वक्तथोड़ा सा सिन्दूर पत्नी की नाक में गिर जाए तो इससे अंदाज़ा लगाया जाता है कि पति कितना प्रेम करता है अपनी पत्नी से। किसी-किसी परिवार में उनके अलग-अलग वेद को मानने के अनुसार सिन्दूर दान होता है।

अगले दिन हस्त-ग्रहण की रस्म होती है। इस दिन पति पहली बार पत्नी के लिए बाज़ार जाकर मछली खरीदकर लाता है साथ ही एक सिन्दूर भी। वह अपने हाथों से पत्नी को देता है। फिर पत्नी को अनिवार्य रूप से मछली को अपने हाथों से काटकर पकाना होता है। लड़के परिवार वाले कई बार मस्ती-मज़ाक के लिए नयी बहू को चिढ़ाते है कि मछली को कौन सा हिस्सा वह अपने पति और सास-ससुर के लिए रखेगी। इसके बाद वह मछली तथा अन्य व्यंजन बनाकर ससुराल वालों को परोसकर देती है।

इन सारी रस्मों के बाद अंत में दिरागमन (फिराजात्रा) की रस्म होती है। इसमें पहली बार दोनों पति-पत्नी शादी के बाद लड़की के पिता के घर जाते हैं। परन्तु केवल दो रात और तीन दिन के लिए ही जाते हैं। शादी के दस दिन के अंदर ये रस्म करनी पड़ती है। यदि दस दिन के बाद जाना होता है तो पंचांग देखकर ही अच्छा दिन निकाला जाता है। ज्यादातर महिलाओं के मासिक धर्म के कारण ही ये देरी होती है।

इन सभी रस्मों की एक और खास बात यह है कि देशाचार तथा कालाचार के कारण कुछ रस्में अलग-अलग जगहों में अलग प्रकार तथा अन्य मान्यताओं के साथ पूरी की जाती है तथा उनमें अंतर रहता है। परन्तु कभी-कभी कुछ रस्में बिलकुल एक समान होती हैं।

संदर्भ

1. दिवस्थीर अर्थात् विवाह का दिन निश्चित करना या होना. (जुगाड़) एक प्रकार की मंगल ध्वनी है जिसे प्रायः सभी प्रकार के मंगलानुष्ठान में किया जाता है ताकि सब कुछ की शुरू आत और अंत अच्छे से,बिना किसी विघ्न के हो जाए।

2. कन्या को इस दिन लड़के वाले विवाह हेतु आशीर्वाद करते है।
3. एक प्रकार का घास होता है तीन पत्तियों वाला जिसे हर प्रकार की पूजा-अर्चना एवं अनुष्ठानों में प्रयोग किया जाता है।
4. पान की खिलीयाँ।
5. दूर्गा माँ का एक रूप।
6. सोलह देवियों की पूजा।
7. विवाह से पहले होने वाला विशेष स्नान।
8. चावल के दाने चुनने के लिए इस्तेमाल होने वाली बांस की थाली।
9. सुहाग की दूसरी चूड़ी।
10. विष के लड्डू (प्रतीकात्मक रूप)
11. शोरापातिल पतले बांस के छोटी-छोटी डंडियों से बनाया जाता है जिसको लाल रंग के धागे से सजाया जाता है तथा इसका आकार घड़े जैसा होता है।
12. जहाँ दूल्हा-दुल्हन की पहली सुहाग रात होती है।
13. लोहे की बनी चूड़ी जो लड़की के हाथ के नाप की होती है तथा उसको चारों तरफ से सोने से मढ़कर दिया जाता है। यह हर समय सुहागिनों को धारण करना होता है।

●

सह-प्राध्यापक, हिन्दी विभाग
माउंट कार्मल कॉलेज,
स्वायत्त, बैंगलोर-560001
मो. 8217797037
email: madhuchanda.chakrabarty@gmail.com

कौन बड़ा दानी

एक बार श्रीकृष्ण से अर्जुन ने पूछा, 'दान तो मैं भी बहुत करता हूं, परन्तु लोग कर्ण को ही सबसे बड़ा दानी क्यों कहते हैं? श्रीकृष्ण मुस्कुराये, उन्होंने पास में ही स्थित दो पहाड़ियों को सोने का बना दिया। वह अर्जुन से बोले, हे अर्जुन, इन दोनों सोने की पहाड़ियों को तुम गांव वालों को बांट दो, अर्जुन ने सभी गांव वालों को बुलाया और सोना बांटना शुरू कर दिया। अर्जुन पहाड़ी में से सोना तोड़ते गये और गांव वालों को देते गये। लगातार सोना बांटते रहने से अर्जुन में अब अहंकार आ चुका था। इतने समय पश्चात् अर्जुन काफी थक भी चुके थे। उन्होंने श्रीकृष्ण से कहा कि अब मुझसे यह काम और न हो सकेगा।'

अब श्रीकृष्ण ने कर्ण को बुला लिया। उन्होंने कर्ण से भी वही कहा। कर्ण ने गांव वालों को बुलाया और उनसे कहा, यह सोना आप लोगों का है। जिसको जितना सोना चाहिए, वह यहां से ले जायें। यह देख अर्जुन ने श्रीकृष्ण से जानना चाहा कि ऐसा करने का विचार उनके मन में क्यों नहीं आया? इस पर श्रीकृष्ण ने जवाब दिया कि तुम्हें सोने से मोह हो गया था। तुम खुद यह निर्णय कर रहे थे कि गांव वालों की कितनी जरूरत है। उतना ही सोना तुम पहाड़ी में से खोदकर उन्हें दे रहे थे। तुम में दाता होने का भाव आ गया था। जबकि दूसरी ओर कर्ण ने ऐसा नहीं किया। वह नहीं चाहते थे कि उनके सामने कोई उनकी जय-जयकार करे या प्रशंसा करे। दान देने के बदले में धन्यवाद की उम्मीद करना भी सौदा कहलाता है। बिना किसी उम्मीद या आशा के दान करना चाहिए, ताकि यह हमारा सत्कर्म हो, न कि हमारा अहंकार।

हिन्दी गजलों में विज्ञान

ऋषिपाल धीमान 'ऋषि'

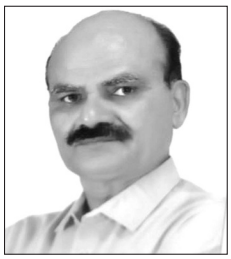

यहाँ 'हिन्दी ग़ज़ल' से तात्पर्य मूलतः देवनागरी में लिखी जा रही ग़ज़लों से है बाकी ग़ज़ल तो ग़ज़ल ही होती है। आज ग़ज़ल जीवन के हर पहलू को अपने अन्दर समेटे हुए है। विज्ञान और तकनीकी में जो प्रगति गत 8-10 दशकों में हुई है वह इससे पहले की शताब्दियों में हुई प्रगति से कहीं अधिक है। विज्ञान और तकनीकी विकास मानवजीवन को अधिक सुविधाजनक बनाने में तथा मनुष्य को दरपेश समस्याओं से निपटने में मदद करता है। जीवन का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं जहाँ विज्ञान का दख़ल न हो। ऐसे में ग़ज़ल विज्ञान के प्रभाव की अनदेखी कैसे कर सकती है। ग़ज़लकारों का ध्यान जहाँ विज्ञान के अच्छे-बुरे प्रभावों की ओर गया है वहीं वैज्ञानिक वस्तुओं, आविष्कारों का प्रयोग उन्होंने प्रतीकों के रूप में भी ख़ूब किया है। अन्य ज्ञानों की तरह विज्ञान भी न अच्छा है न बुरा। इसका सदुपयोग या दुरुपयोग इसे वरदान या अभिशाप बनाता है, तभी तो महाश्वेता चतुर्वेदी और अजय जन्मेजय कह रहे हैं

शाप विज्ञान को मूढ़ कहते रहे
जबकि वरदान है ये वरण के लिए

- महाश्वेता चतुर्वेदी

हिंसा पर अनुसंधान न कर
धरती को लहूलुहान न कर

- अजय जन्मेजय

पिछले दिनों कुछ ऐसी चीज़ों का आविष्कार हुआ है जिनकी कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था। ऐसी ही एक खोज है मोबाइल जिसके बिना आज के जीवन के बारे में सोचा भी नहीं जा सकता है। एक ओर यह सम्पर्क-क्रान्ति का कारक है दूसरी ओर यह व्यक्तिकी निजता को लील गया है। आदमी एक आभासी दुनिया से जुड़कर आसपास के सजीव, वास्तविक परिवेश से कट गया है।

मैं भाग जाउँ कहाँ छोड़छाड़ के दुनिया
अब तो फ़ोन पे दुनिया मेरी तलाश में है

-देवेन्द्र आर्य

मौजूद जीती-जागती ख़ुशियाँ हैं आसपास
मोबाइलों से नज़रें हटाकर तो देखिए

-ऋषिपाल धीमान 'ऋषि'

चुपके से उठके जाना भरी बज़्म से 'ऋषि'
मोबाइलों से हो गया आसान इन दिनों

- ऋषिपाल धीमान 'ऋषि'

विद्युत की खोज के बाद मानव जीवन पर सर्वाधिक व्यापक प्रभाव डालने वाली कोई वैज्ञानिक खोज अगर है तो वह कम्प्यूटर है। घर हो, व्यापार हो, शिक्षा हो, उद्योग जगत हो, मनोरंजन हो, चिकित्सा क्षेत्र हो, अनुसंधान हो, रेलवे हो, विमानन हो, संचार हो, सुरक्षा हो, छपाई हो गरज़ कोई ऐसा क्षेत्र नहीं जहाँ कम्प्यूटर के बग़ैर काम हो सके। लेकिन यहाँ भी उपयोग के साथ दुष्प्रभाव भी कम नहीं हैं। यन्त्रों के अत्यधिक इस्तेमाल ने मानव को भी यान्त्रिक बना दिया है। बचपन तो इसकी चपेट में बुरी तरह आ गया है। ग़ज़लकारों ने अपने-अपने तरीके से आगाह किया है–

कम्प्यूटर युग की तब्दीलें
चीख़ों को अब चीख़ें लीलें

- *दिनेश शुक्ल*

आँकड़े उनको पढ़ेंगे बैठकर
लोग कम्प्यूटर में डाले जाएँगे

-बालस्वरूप 'राही'

कम्प्यूटरों के बाहर औंधे पड़े हुए हैं
अपनी शिनाख़्त, ग़ैरत, रोटी, अवाम, जंगल

- *सूर्यभानु गुप्त*

कभी जो शेर के भी दाँत गिन लेते थे वे बच्चे
नहीं माउस के ही चंगुल से अब आज़ाद हो पाते

- *ऋषिपाल धीमान 'ऋषि'*

आज ऐसा कोई घर शायद ही हो जिसमें टेलीविज़न न हो। घर बैठे दूर दुनिया की बातें देख लेना, ज्ञान वर्धन करना, मनोरंजन प्राप्त कर लेना आदि इसके अनेक लाभ हैं परन्तु इसका चस्का कुछ लोगों को आलसी और बेख़बर बना रहा है। बच्चे मैदान में खेलने नहीं जाते हैं, और टी वी पर वह देख रहे हैं जो उनके लिए नहीं है। किसी की बरबादी को भी टी वी पर मनोरंजक समाचार की तरह दिखाया जाता है। अपने पसंदीदा टी वी कार्यक्रमों में डूबे लोग बीमार की खाँसी को भी व्यवधान समझते हैं। हिन्दी ग़ज़लकारों ने रेडियो, टी वी पर बड़े हृदयस्पर्शी शेर कहे हैं।

खेल का मैदान भी टेलीविज़न पर है
घर के बाहर शाम को बच्चे नहीं जाते

- *कमलेश भट्ट 'कमल'*

ख़बर में रेडियो ने गर कुछ भी नहीं कहा
ये मत समझ कि देश में कुछ भी नहीं हुआ

- *बल्ली सिंह चीमा*

टी.वी. से अख़बार तक गर सैक्स की बौछार हो
फिर बताओ कैसे अपनी सोच का विस्तार हो

- *अदम गोंडवी*

आप चिपके हुए हैं टी.वी. से
फिर रहे घर के नौनिहाल कहाँ

- *हरेराम 'समीप'*

टी.वी. तेज़ कर दिया सुनके
बूढ़ा - बूढ़ी खाँसे रातभर

- *उमाश्री*

पेश करते हैं दुख को शगल की तरह
चैनलों को न जाने ये क्या हो गया

- *ज्ञानप्रकाश विवेक*

रेडियो, टी.वी. हैं सब उनके सच ख़बर देंगे भी क्यों
इश्तिहारों में ढले हैं आज के अख़बार तक

- *उर्मिलेश*

वो इंटरनेट, ये टी.वी. के चैनल
जवां मन ईडियट-सा देखता है

- *राम मेश्राम*

विज्ञान को अध्ययन व अनुसंधान की सुविधा के लिए अनेक भागों में बाँटा गया है जैसे रसायन विज्ञान, भौतिक विज्ञान, जीव विज्ञान आदि। कवियों ने इन सभी को अपनी ग़ज़लों में प्रयोग किया है। रसायन विज्ञान के कुछ प्रयोग दृष्टव्य हैं। ग्लिसरीन का प्रयोग अभिनेता आँखों में आँसू लाने के लिए करते हैं, कार्बाइड़ का प्रयोग फलों को शीघ्र पकाने के लिए होता है, परखनली काँच की संकुचित नली होती है, स्वादानुसार पानी में नमक या चीनी का

विलयन या घोल बनाया जाता है। इन सभी रसायन सम्बन्धी बातों का ग़ज़लकारों ने क्या ख़ूब इस्तेमाल किया है–

तेरे मरने की सूचना पाकर
पहले सब ग्लैसरीन ढूँढ़ेंगे

- उर्मिलेश

उनसे मत प्यार माँगिए 'आनन्द'
उनका दिल तो परखनली का है

- आनन्द गौतम

है मिलावट स्वाद के अनुपात जितनी प्यार में
ग्लासभर पानी में केवल एक चुटकी प्यार है

- कृष्ण सुकुमार

जो असर टी.वी. का बच्चों पर हुआ, होना ही था
कार्बाइड़ वक़्त से पहले पका देता है फल

- ओमप्रकाश 'नदीम'

भौतिक विज्ञान का प्रयोग कई ग़ज़लकारों ने अपने शेरों में किया है। भगवानदास जैन ने मापक उपकरण 'कम्पास' का प्रयोग ग़ज़ल के लिए किया है, सूर्यभानु गुप्त ने दुखी ज़िन्दगी की तुलना खिंची हुई रबर से की है, विनोद तिवारी ने समय के साथ ख़ाली होते रेत-घड़ी के खंड की तुलना भीतर के ख़ालीपन से की है। बल्लीसिंह चीमा द्वारा 'हीटर' का तथा उर्मिलेश द्वारा 'मरकरी बल्ब' का प्रयोग भी उल्लेखनीय हैं–

दुनिया को नापने का ये पैमाना है नया
रिश्तों को नापने का भी कंपास है ग़ज़ल

- भगवानदास जैन

टूट जाएगी अब जो खिंची बस ज़रा
सौ दुखों पर तनी इक रबर ज़िन्दगी

- सूर्यभानु गुप्त

ख़ालीपन बढ़ रहा है भीतर का
रक्खी हो रेत की घड़ी जैसे

- विनोद तिवारी

हीटर लगे हुए बन्द कमरों में बैठकर
मत सोचिए नगर में दिसम्बर नहीं रहा

- बल्लीसिंह चीमा

मरकरी बल्बों ने कुछ ऐसा हमें भरमाया
अब तो हम चाँद-सितारों की चमक भूल गए

- उर्मिलेश

चिकित्सा विज्ञान को भी कुछ रचनाकारों ने अपने शेरों में इस्तेमाल किया है। ज़हीर कुरेशी ने दवा के प्रयोग सम्बन्धी सतर्कता के साथ-साथ भ्रूणहत्या की सामाजिक कुरीति को भी उजागर किया है। भगवानदास जैन द्वारा ग़ज़ल की तुलना शल्य-क्रिया से तथा शेर की तुलना नश्तर से की गई है।

डॉक्टर की सलाह से लेना
ये दवा भी ज़हर-सी घातक है

- ज़हीर कुरेशी

शल्यक्रिया-सी ग़ज़ल हमारी
शेर सभी गोया नश्तर हैं

- भगवानदास जैन

लिंग-निर्धारण समस्या हो गया
कोख में ही कत्ल कन्या हो गई

- ज़हीर कुरेशी

यातायात के साधनों में रेलगाड़ी का सर्वाधिक महत्व है। जहाँ कहानी, उपन्यास आदि के कथानकों में रेलगाड़ी का खूब इस्तेमाल हुआ है वहीं हिन्दी ग़ज़ल में भी इसका ख़ासा इस्तेमाल हुआ है चाहे मुसाफ़िर को लेकर, चाहे हमसफ़र को लेकर, चाहे हम्माल को लेकर, रेल की पटरी पर होती दर्दनाक आत्महत्या को लेकर या रेल के गुज़रने से पुल के थरथराने की साधारण-सी घटना को लेकर–

बाप की इज़्ज़त माँ के सपनों से टकराकर टूट गई
ख़ून में डूबी रेल की पटरी चीख़ हवा को चीर गई है

- शलभ श्रीरामसिंह

बिना बताए जो उतरा है रेलगाड़ी से
तू आप सोच कि मेरा था हमसफ़र कैसा

- ज्ञानप्रकाश विवेक

रोज़ खुलती है नई रेल मुसाफ़िर के लिए
छूट जाता है मगर बोझ उठाने वाला

- प्रेमकिरण

तू किसी रेल-सी गुज़रती है

मैं किसी पुल-सा थरथराता हूँ

-दुष्यन्त कुमार

रेलगाड़ी के अलावा अन्य क़िस्म के वाहनों का भी प्रयोग हिन्दी ग़ज़लकारों ने किया है। किसी के पास कौन-सा वाहन है यह व्यक्ति की सामाजिक और आर्थिक स्थिति का भी द्योतक है। विमान से देखना दूरी का परिचायक है और दूर ही से किसी की मुसीबत को देखना संवेदनहीनता व ख़ानापूर्ति है।

पहले उसपर साइकिल थी आज उसपर कार है
तेज़ कितनी आजकल उस शख़्स की रफ्तार है

-उर्मिलेश

दृश्य उड़ते विमान से देखा
बाढ़ को इत्मिनान से देखा

-ज़हीर कुरेशी

पाँव पैदल उनको चलना ही नहीं आया कभी
वायुयानों से उतरते ही वे कारों पर चले

-ज़हीर कुरेशी

बढ़ती हुई जनसंख्या की बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मशीनों और कारख़ानों के योगदान को कौन नकार सकता है परन्तु मजदूरों, किसानों, बेरोज़गार युवकों की स्थिति भी किसी से छिपी नहीं है। मशीनों के साथ इंसान भी मशीनी हो गया है। ये सब दर्द ग़ज़लकारों ने बयान किये हैं-

जी हाँ, जी हाँ वहाँ एक चौपाल थी
देखिए अब वहाँ कारख़ाना हुआ

-रामदरश मिश्र

गिन्नियाँ दिनभर उगलता कारखाना आपका
किन्तु हर मज़दूर भूखी शाम से सम्बद्ध है

-भवानी शंकर

हमारे शहर का मौसम बदल गया जैसे
हरेक शख़्स मशीनों में ढल गया जैसे

-द्विजेन्द्र 'द्विज'

गाँव के युवकों ने सोचा था मिलेगा रोज़गार
हो गए वर्षों खुले उद्योग हासिल कुछ नहीं

-द्विजेन्द्र 'द्विज'

एक ओर मशीनों में सूरज ढल रहा है
दूसरी ओर ज्वालामुखी में इन्क़लाब पल रहा है

- राजशेखर

विज्ञान का मानवता के विरुद्ध सबसे बड़ा दुरुपयोग मनुष्य ने विज्ञान के माध्यम से युद्धों को भयंकर और क्रूर बनाकर किया है। बम, बारूद, मिसाइल सभी को हिन्दी ग़ज़लकारों ने अपने अशआर में स्थान दिया है–

बाद में रोटियाँ गिराई गईं
बम गिरे थे जहाज़ से पहले

- देवेन्द्र आर्य

देखे सभी ने बम और तोप
'कमल' ने बस फुलझड़ियाँ देखीं

- कमलेश व्यास 'कमल'

सुना है घर मे वो बारूद भरके रखता था
जो शख़्स आज धमाकों के दरम्यान मिला

- ज्ञान प्रकाश विवेक

ये भी इस दौर की करामत है
मसअले हल हुए मिसाइल से

- रौशनलाल 'रौशन'

प्लेटिनम के दैत्य पत्थर के किलों में बैठकर
युद्ध के दलदल में तुम आख़िर धँसोगे एकदिन

- राजशेखर

हिन्दी ग़ज़ल में झींकने के स्वर के बजाय आशा और विश्वास का स्वर अधिक मुखर है इसमें कोई शक नहीं है। अन्त में महेश अग्रवाल के एक आशावादी शेर के साथ इस लेख को समाप्त करता हूँ।

कोसता बिल्कुल नहीं है वो अँधेरों को
एक तीली सिर्फ़ माचिस की जलाता है

- महेश अग्रवाल

●

66, श्रीनाथ बंगलोज़,
चाँदखेड़ा,
अहमदाबाद-382424
9428330490

'पुनर्नवा' में समसामयिक सन्दर्भ एक अथक प्रयास

डॉ. एस. प्रीति

समसामयिकता से साहित्य और समाज अछूते रहे हो ऐसा न कभी संभव था और न होगा ही। समसामयिकता व्यापक धरातल पर साहित्य और समाज को प्रभावित कर नई दिशा देती है- इसमें कोई सन्देह नहीं। किसी भी देश की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक या आर्थिक क्रांति की बात हो- सांदर्भिक् तत्वों के विवेचन पर समसामयिकता का प्रश्न उसके मूल में अति गहरा जुड़ा मिलेगा। अपने सम्पूर्ण परिवेश की उपेक्षा परिवेश की उपेक्षा कर कदाचित कोई साहित्य आज तक रचा नहीं गया। यदि कोई है तो वह निश्चय ही साहित्यिक कोटि में नहीं आता।

इस प्रकार समसामयिकता से तात्पर्य है कि आज जो स्थिति है उसका वर्णन। साहित्य के अंतर्गत गोस्वामी तुलसीदास के रामचरितमानस की प्रासंगिकता का मुद्दा भी समसामयिक स्तर पर ही पूछा जाता है। अर्थात् पूर्व में जो कुछ कहा गया है वह नहीं वरन् उस पर आज के सन्दर्भ में विचार। हिन्दी साहित्य एवं अन्य साहित्यों में भी किसी विषय की समसामयिकता पर बृहद रूप से विचार किया गया है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपने नाट्य कृति 'अंधेर नगरी' के माध्यम से समसामयिक बोध का ही उद्घाटन किया था।

'समसामयिकता' शब्द से तात्पर्य तो स्पष्ट है कि वर्तमान समय में जो विषय या मुद्दे प्रचलित है उस पर अपने मत प्रस्तुत करना। आदिकाल से लेकर आधुनिक काल और समकालीन साहित्य के अन्तर्गत देखे तो स्पष्ट होता है कि सभी रचनाकारों ने अपने-अपने युग विशेष की समकालीन स्थितियों का ही प्रमुख रूप से चित्रण किया है। इसका कारण चाहे देश की सांस्कृतिक विरासत को आगे बढ़ाना हो अथवा साहित्यिक धरोहर को जीवित रखना हो। कविताओं के सन्दर्भ में भी यही स्थिति है और उपन्यासों के अन्तर्गत भी समसामयिकता की स्थिति का ही अधिकांश चित्रण होता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी कृत 'पुनर्नवा' का स्वरूप हम समसामयिकता के सन्दर्भ में देख सकते है। गुप्तकाल में समाज-कला, धर्म आदि का पुनरुत्थान हुआ था। आज भी स्वर्णयुग लाने के लिए समाज की सड़ी गली व्यवस्थाओं को 'पुनर्नवा' करने की आवश्यकता है।

नारी को सम्मान देने का प्रश्न :-

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी नारी को समाज का आधारशिला मानते हैं तथा उन्होंने अपने उपन्यास 'पुनर्नवा' में नारी तत्व की व्याख्या एवं समाज की स्थिरता के लिए उसकी उद्भावना पर जोर दिया है। उनका मत है नारी को भी पुरुष समान स्वतन्त्रता

व अधिकार मिलना चाहिए, नारी और पुरुष एक दोनों पर समर्पित होना चाहिए न कि केवल नारी ही समर्पिता मानी जाये। भारतीय समाज में नारी का उच्च स्थान ही रहा है, वैदिक युग में उन्हें पुरुष समान अधिकार प्राप्त थे, परन्तु मध्यकाल तक आते-आते उनकी स्थिति में परिवर्तन आ गया। नारी को हीन, उपेक्षित एवं भोग की वस्तु समझा जाने लगा। यहाँ तक गृह-सूत्रों में इन्हें शुद्र कहा जाने लगा। सामन्ती काल में स्त्री परतन्त्रता की बेड़ियों में जकड़ गई।

अरस्तू के शब्दों में 'नारी आत्मा विहीन शव हो गई।[1] इन्हीं सब स्थितियों को देखते हुए द्विवेदी जी ने नारी उत्थान के लिए एक क्रान्तिकारी कदम उठाया और उसका माध्यम उन्होंने अपने उपन्यास 'पुनर्नवा' को बनाया, मनुस्मृति में वर्णित 'यत्वं नार्यास्तु पूजयन्ते रमन्ते तत्र देवता' तथा बाराहमिहिर ने जो वृहत्संहिता में कहा- ब्रह्मा ने स्त्री के सिवा ऐसा दूसरा बहुमूल्य रत्न संसार में नहीं बनाया है जो श्रुत, दृष्ट, स्पृष्ट और स्मृत होते हैं। आह्लाद उत्पन्न कर सके। स्त्री के कारण ही घर में अर्थ है, धर्म है, पुत्र सुख है। यही दृष्टि आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी नारी के प्रति रखते है। वे नारी को हीन दृष्टि से नहीं देखते उनकी दृष्टि से इनका अत्यन्त उँचा स्थान है। वे स्त्री को देवी मानते हैं। इसीलिए गणिका मंजुला में देवरात एक जागृत देवता का निवास देखते हैं।

आज जिस नारी स्वातन्त्र की चर्चा हो रही है, उसे द्विवेदी जी ने उस युग की नारी चरित्रों में दिखाकर उपन्यास को ढाँचे के बाहर खींचने की कोशिश की है। उन्होंने नारी के सबला रूप का वर्णन किया है। उन्होंने ऐसी क्रान्तिकारी नारी चरित्र की कल्पना की है– जो स्वाभिमानी और आत्मबल की भीख नहीं मांगती वरन् ऐसी शक्ति संचय करती है कि स्वयं पुरुषों के अनाचारों का स्वयं सामना करे। इस बात का प्रमाण चन्दनक के पत्र को मृणाल के द्वारा आर्यक के पास भिजवाने पर मिलता है जिसमें वह गोपाल को लिखती है- 'मैंने उसे ललकारा और पास पड़े डण्डे से उसे चोट पहुँचाई, भाग न गया होता तो यमलोक में होता.... तुम चाहो तो मेरी रक्षा कर सकते हो, नहीं आआगे तो मैंने भी अपना कर्त्तव्य निश्चित कर लिया है।'[2]

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी के अनुसार नारी का अपना एक स्वतंत्र अस्तित्व होता है। उनका मानना है कि समय पड़ने पर स्त्रियाँ मानवता की रक्षा के लिए चंडी भी बन सकती हैं। वे केवल पुरुष की भोगया ही नहीं वरन् जरूरत पड़ने पर अपनी रक्षा के साथ पति की भी रक्षा कर सकती है- मृणाल कहती है, 'वीरक तू एक क्षण के लिए भइया (आर्यक) का साथ न छोड़ना, बहू-बेटियों की शील रक्षा के लिए, दुखियों की मान रक्षा के लिए प्राण भी देना पड़े तो न झिझकना.... आवश्यकता पड़ने पर तू अपनी भाभी को भी सिंहनी की भाँति दहाड़ता पायेगा।'[3]

इस प्रकार द्विवेदी जी ने मृणाल को उपन्यास में प्रेरणादायिनी रूप में चित्रित किया ही, साथ ही उसमें ऐसी शक्ति भी दिखाई जो समय पर रणक्षेत्र में पुरुषों के साथ लड़ भी सकती है। द्विवेदी जी ने पूरे उपन्यास में कहीं भी सामाजिक परंपराओं से बंधी नारी और पर पुरुष की नजर पड़ने मात्र से कलंकित नारी की कल्पना नहीं की है। क्योंकि उनका उद्देश्य नारी को सम्मान देने का था। समाज ही नहीं वरन् देख की गौरव का भार स्त्रियों पर होता है, इस बात का समर्थन द्विवेदी जी इस उपन्यास में समुद्रगुप्त से कराते हैं– समुद्रगुप्त के रोम-रोम में यह विश्वास भरा था कि किसी देश की सभ्यता और धर्माचार की कसौटी उस देश की स्त्रियों का सम्मान और निश्चिन्तता है।[4] मनु की यह व्यवस्था कि जहाँ स्त्रियों का सम्मान होता है वहाँ देवता निवास करते हैं, इस बात से ऐसा लगता है कि द्विवेदी जी ने प्राचीन शास्त्रों की बातों का नवीनीकरण कर दिया है।

उपन्यास में द्विवेदी जी ने चन्द्रा के रूप में ऐसी क्रान्तिकारी नारी की सृष्टि की जो जीवन की सच्चाई को मानती है। सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक विपरीत परिस्थितियों में भी लोकोपवाद, समाज

परिवार का भय छोड़कर सत्यता के लिये विद्रोह करती है, जिसके लिए वह समाज में कुलटा, व्याभिचारिणी आदि नामों से कलंकित की जाती है, फिर भी वह अपने प्रेमी आर्यक के लिये सहन करती है और निःस्वार्थ भाव से सेवा हेतु तत्पर रहती है।

चन्द्रा के प्रसंग को लेकर द्विवेदी जी यह स्पष्ट करना चाहते है कि मानव को समाज में समयानुसार परिवर्तन करना चाहिए। नारी जाति के लिए समाज ने जो धारणा बना ली है कि स्त्री किसी के गले बाँध दी जाये स्त्री का बोलना उचित नहीं, उसे उन्हीं परिस्थितियों से समझौता कर लेना चाहिए। वरन् द्विवेदी जी इसका विरोध करते हैं। और आवाज उठाई जिनका माध्यम चन्द्रा के चरित्र को बनाया, जो इन्हीं रूढ़ मान्यताओं का शिकार थी, उसका पति पौरुषहीन क्लीव था जिसे उसने मन से पति रूप में स्वीकार ही नहीं किया था, वह आर्यक को ही विवाह से पूर्व पति मानती थी। द्विवेदी जी ने इस बात के समर्थन के लिये उपन्यास के आरम्भ में ही कहते है, 'यदि धर्म और संस्कृति को समयानुसार परिवर्तित नहीं किया गया और रूढ़ियों का अन्धानुकरण होता तो समाज की व्यवस्थायें टूट कर रहेंगी' इस वाक्य की सत्यता को बनाये रखने के लिए चन्द्रा रूप में एक ऐसी क्रांतिकारी नारी की कल्पना की जो सामाजिक कुरीतियों का विद्रोह कर सकती है और जो धार्मिक रूढ़ियों जो सामाजिक उत्थान में परदे का कार्य कर रही है उसे हटाने का कार्य करती है तथा अपने प्रेमी को प्राप्त करने के लिए समाज से क्या सम्राट से भी डटकर मुकाबला करने को तैयार रखती है- 'मैं भी उनकी पत्नी हूँ.... आर्यक मेरा मनोवृत्ति पति है। सम्राट ने आँखे चढ़ा ली। उन्होंने क्रुद्ध भाव से कहा- तुम्हारी जैसी निर्लज्ज महिला मैंने आज तक नहीं देखी। तुम मेरे सामने से हट जाओ मैंने भी नहीं छोड़ा। मैं कुंचित भृकुटियों की उपेक्षा करना जानती हूँ- मैं पतिव्रता हूँ, तुम्हारे जैसे सम्राट भी मुझे उस व्रत से हटा नहीं सकते और सम्राट को उपेक्षा की दृष्टि से देखकर चली आई।'[5]

चन्द्रा की इस मर्यादा की रक्षा करते हुये तथा नवीन प्रासंगिक सामाजिक मान्यता की स्थापना करते हुये अन्त में गोपाल आर्यक चन्द्रा को स्वीकार कर लेते है तथा दोनों पत्नियों में अगाढ़ प्रेम दिखाकर स्वस्थ सम्बन्ध के आदर्श को प्रस्तुत किया गया है।

द्विवेदी जी सेवा को ही भारतीय नारी का सबसे बड़ा अस्त्र मानते हैं, जो उसकी विजयी यात्रा का आधार स्तम्भ है। द्विवेदी जी नारी के बाह्य सामाजिक सन्दर्भों की अपेक्षा नारी के आन्तरिक मूल्यों पर अधिक जोर देते हैं, इसी आन्तरिक मूल्य व सेवा के कारण वे चन्द्रा को समाज व मैना के सामने प्रतिष्ठा दिलवाते है। इस बात को वे आर्यक और धूता के वार्तालाप से स्पष्ट करते है– 'चन्द्र जहाँ उद्दाम प्रेम की मूर्ति है वही दूसरी ओर उससे भी अधिक अकुंठ सेवा का सजीव विग्रह है। संसार में आजतक किसी स्त्री ने इतना साहसिक प्रेम और इतनी अकूठ निश्छल सेवा की है। .....उसने सामाजिक विधि-विधानों के तलवे से रौंद कर सत्य-सत्य को स्वीकार किया है। आर्यक ने उसके शारीरिक उद्गम वेग को देखा मानसिक व आध्यात्मिक त्याग भावना की ओर ध्यान नहीं दिया। .....चन्द्रा समर्पण की मूर्ति है। उसने अपने को सारी विधि व्यवस्थाओं को लोकर्मादाओं के विरुद्ध आँककर अन्तरत के सत्य का अनुपालन किया, उस देवी को आर्यक ने धोका दिया।[6] और अन्त में द्विवेदी जी उसकी जीत करवाते हुए मैना से ही कहलवा देते हैं कि 'आर्यक चन्द्रा के पतिव्रता से विजयी हुआ।'[7]

इसी तरह समाज में उपेक्षित, त्याज्य, पतित कहीं जाने वाली नारी (गणिका) के प्रति जो समाज में धारणा बनी है- उसका विरोध किया है। उनका मत है कि अपनी दुर्बलता के कारण पुरुष शासित भारतीय समाज ने नारियों को इस अभिशप्त सामाजिक जीवन को जीने में विवश किया और उन्हें त्याज्य व पतित समझ कर उनपर से अपनी दृष्टि मोड़ ली, उनके बाह्य जीवन को देखकर उनके दुर्गुणों, का डंका पीटा परन्तु आन्तरिक सद्गुणों व मर्मवेदना

को नहीं परखा। यदि इन परम्पराओं में यदि संशोधन नहीं हुआ तो एक दिन धर्म व व्यवस्थायें टूट जायेंगी। इस प्रकार देवरात के द्वारा कहलाकर 'देवि, तुम्हारे भीतर देवता का निवास है तुम जिस पाप-जीवन की बात कह रही हो, वह मनुष्य की बनायी हुई विकृत सामाजिक व्यवस्था की देन है। चिन्ता न करो देवि, इससे उद्धार हो सकता है। इस तरह गणिका में भी देवत्व की स्थापना कर स्वस्थ समाज के निर्माण में योगदान देकर एक ठोस सामाजिक मूल्य की स्थापना करते हैं।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी स्वयं जड़ीभूत परम्पराओं को सामने लाते है और उसका किसी न किसी नारी पात्र से उसका खण्डन कराकर नवीन आदर्शों की ओर संकेत करते हैं। द्विवेदी जी ने मंजुला के माध्यम से जिस नारी विषयक मूल्य की स्थापना की उससे स्पष्ट है कि भ्रष्ट नारी जो पारम्परिक परिभाषा है उसमें परिवर्तन आवश्यकता है। इसी को सिद्ध करने के लिए मंजुला के जीवन में परिवर्तन कराकर ऐसी मंजुला को जन्म दिया जिसमें देवरात अपनी सती पत्नी शर्मिष्ठा का साक्षात्कार करते हैं। द्विवेदी जी इस बात को स्वीकारते है कि गणिका भी अपने इस नर्क पंक से उबरना चाहती है। 'मैं इस पाप जीवन से उब गई हूँ। आर्य कभी मेरा इस नरक से उद्धार होगा।'[8] परन्तु यह दूषित समाज उसे यही रास्ते पर चलने नहीं देता। उस पर व्यंग्य करने लगता है- 'जन्म की विलासिनी करम की मायाविनी गणिका यदि पूजा पाठ करने लगे तो मानना होगा कि बबूल में कमल फूल खिलते है, पनाले में भी सुगन्धि फूटती है, सर्पिणी पुजारिन बन सकती है।'[9] परन्तु द्विवेदी जी ने उसमें परिवर्तन कर उस कलुषित मंजुला के भीतर से शुद्ध सत्वा अकलुष मंजुला का अवतरण कर समाज के सम्मुख आदर्श प्रस्तुत नहीं किया वरन् उपेक्षित नारियों में सच्ची नारीत्व को स्थापित कर द्विवेदी जी ने उन रुढ़ियों और परम्पराओं पर विकट प्रहार करके नारी के समर्पित सेवाभाव को ही सर्वमान्य मानकार उसे देवी पद पर आसीन किया। मानवतावादी दृष्टिकोण रखने के कारण द्विवेदी जी समाज की रूपरेखा को प्रभावित करने वाले उन सभी तत्वों पर दृष्टिपात किया, इसी से सामाजिक जीवन में परिवार व उनसे सम्बन्धित लोगों का और उनके सम्बन्धों का एक स्वस्थ चित्रण किया जिससे कहीं भी सामाजिक विकास में बाधा नहीं उत्पन्न हो पाये। उन्होंने पिता-पुत्री, पुत्र-पिता के सम्बन्ध में देवरात-मृणाल व वृद्धगोप ..... का सजीव चित्रण किया है। पति-पत्नी के आदर्श सम्बन्धों का चित्रण देवरात-शर्मिष्ठा, गोपाल मृणाल, चारूदत्त धूता के प्रसंगों से मिलता है। धूता के प्रसंग में द्विवदी जी स्पष्ट करते हैं कि धूता पतिव्रता स्त्री है। उसकी मनोविचारधारा संकीर्ण न होकर विशाल है। वह गणिका वसन्त सेना जो चारूदत्त की प्रेमिका है उसका विवाह चारूदत्त से करा देती है, वही प्रसंग मृणाल और चन्द्रा का है। इसका चित्रण कर द्विवदी जी ने नारी के उस गरिमामय पक्ष को सामने लाये है, जिसके द्वारा उसने यह साबित कर दिया कि एक पुरुष के साथ दो पत्नियाँ सद्भावी बहिनों की तरह रह सकती है, भोग बुद्धि से नहीं वरन् त्याग और सेवा की भावना से, द्विवेदी जी की यह दृष्टिकोण सांस्कृतिक जीवन को बराबर नवजीवन देने में सतत् सफल है। द्विवेदी जी प्राचीन संस्कृति के उसी पक्ष व गुण को ग्रहण करना चाहते हैं– जिससे आज सामाजिक जीवन की स्वच्छ और स्वस्थ विचार व आधार मिल सके। अस्वस्थ परंपरा की रूढ़ियों को वे बिल्कुल स्वीकार नहीं करते, उनके अनुसार बिना इच्छा से पौरुषहीन पुरुष से बाँधने के बाद स्त्री कभी भी सामाजिक मर्यादा तोड़ सकती है और तोड़ना भी चाहिए, इसीलिये उपन्यास में चन्द्रा के निर्माण को महत्व दिया है, लगता है वे इस बगावत को अवैध यौनाचार से अधिक श्रेष्ठ मानते हैं।

उपन्यास में पारिववारिक जीवन में ही पुत्र और विमाता का चित्रण प्रस्तुत किया है। एक तरफ देवरात और उसकी विमाता का चित्रण किया गया है जो अपने पुत्र को युवराज बनाने हेतु देवरात का बुरा

चाहती है। वही दूसरी ओर चन्द्रा और शोभन का सन्दर्भ है। जो बेहोशी हालत में भी शोभन के 'बड़ी अम्मा' कहने मात्र से हड़बड़ाकर बैठ जाती है। द्विवेदी जी ने विमाता का बच्चे के प्रति जो रीति प्रचलित है उसके विरुद्ध एक स्वस्थ विचार प्रस्तुत किये हैं। अपने इस सम्बन्धों के साथ ही द्विवेदी जी ने देवर-भाभी के आदर्श सम्बन्धों का बड़ा मनोहारी चित्रण किया है। आर्यक- धूता, श्यामरूप-नटिनी स्त्रियों, वीरक चन्द्रा मृणाल रूप में उपन्यास में पात्र आये। धृता रूप में सुसंस्कृत रुचि की भाभी तथा नटिनी स्त्रियों के रूप में अंसस्कृत रुचि की भाभियों का वर्णन किया। चन्द्रा के एक प्रसंग में भारतीय नारी का भाभी रूप में सम्मान पाना गौरवपूर्ण बताया है। इसलिये चन्द्र स्वयं को गौरवान्वित समझती हुई कहती है 'तुम पहले आदमी हो जिसने मुझे भाभी कहा है। तुमने मेरे कानों में अमृत डाल दिया है। देवर इस अभागिन को आजतक किसी ने भाभी नहीं कहा।'[10]

इस प्रकार हमे देखते हैं कि स्वस्थ समाज के विकास में बाधा डालने वाली मान्यताओं को किसी हालत में न मानने वाली नारी पात्रों की अपनी एक अलग मर्यादा हे। जिसकी वे रक्षा ही नहीं वरन् समाज में एक नवीन जीवन दर्शन (मूल्य) सामाजिक परंपरा की स्थापना करती हुई दृष्टिगोचर होती है। द्विवेदी जी का 'पुनर्नवा' उपन्यास की रचना में उद्देश्य ही यह है कि विगलित सामाजिक परम्पराओं में संस्कार लाना एवं समयानुसार नवीन सामाजिक मूल्यों का निर्माण करना था। इन मूल्यों के निर्माण में वे नारी को मध्य में रखते है। आचार्य हजारी प्रसाद जी का मत है कि नारी से बढ़कर कोई अनमोल रत्न नहीं है, उसे पुरुष की वासना नहीं बल्कि आश्रय की जरूरत है, इसीलिये उन्होंने समाज से उपेक्षित नारियों में देवत्व की स्थापना की।

उपर्युक्त बातों से हम कह सकते है कि द्विवेदी जी का 'पुनर्नवा' उपन्यास में लक्ष्य था नारी को सम्मान देने का। जिसे उन्होंने बहुत सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया। जिसके लिए ऐतिहासिक वातावरण और पात्रों के साथ-साथ कल्पना का भी सहारा लिया। नारी को सम्मान देने का प्रश्न द्विवेदी कालीन ही नहीं था। उसके पहले भी था। द्विवेदी जी के समय में थी और आज भी है कल भी रहेगा। नारी तो देवी का रूप है। वह कितने ही किरदार निभाती है। हर एक किरदार में सफल, पूजनीय, वन्दनीय, त्यागी, ममतामयी, उदार, कोमल और सुन्दर न जाने और कितने गुणों से पूर्ण हैं। पर हमेंशा सदियों से नारी का किसी न किसी रूप में नारी का शोषण होता ही जा रहा है। वह सदा दबती ही गयी। कभी भी कही भी उसका सम्मान होता ही नहीं। इसके दो कारण हो सकते हैं पहला पुरुष वर्ग जो अपने को स्त्री या नारी से कई गुना अधिक श्रेष्ठ और बलवान समझता है और दूसरा समाज और समाज में निहित कुरीतियाँ। ये दोनों हमेशा नारी को दबाते ही गये। जिसके कारण नारी को सम्मान देने की बात दूर, हमेशा वह इन दोनों कारणों से शोषित, पीड़ित और दुखित होती ही गयी।

हजारी प्रसाद द्विवेदी जी प्रस्तुत उपन्यास 'पुनर्नवा' में शोषित, पीड़ित और दुखित नारी को सम्मान, गौरव और आदर देने का प्रयास किया। उनका यह प्रसाद सराहनीय और प्रशंसनीय रहा है। इस बात को जानने की आवश्यकता आज हमको है। नारी को सम्मान देने की बात राष्ट्र और देश तक ही सीमित नहीं सारे विश्व के लिए लाभदायक है। इस बात को जानने की आवश्यकता सारे विश्व को है। द्विवेदी जी ने अपने उद्देश्य की पूर्ति 'पुनर्नवा' उपन्यास में बहुत सुन्दर ढ़ंग से किया।

इस प्रकार द्विवेदी जी ने प्रस्तुत उपन्यास 'पुनर्नवा' में नारी की गरिमा और गौरव को हमारे सामने प्रस्तुत कर उसे सम्मान देने की बात उठायी है। नारी को पहचानने ओर उसे सम्मान देने का मुद्दा द्विवेदी जी के लेखन का एक चिरमुद्दा रहा है। आज की हमारी दुगर्ति के लिए वे नारी के तिरस्कार, अवहेलना और अपमान को जिम्मेदार मानते है। इस रूप में यह एक चिरतन मुद्दा होने के साथ-साथ एक समाकालीन मुद्दा भी है जिसे द्विवेदी जी ने आग्रह के

साथ 'पुनर्नवा' में उठाया है।

जन-जागरण और जन के दायित्व का मुद्दा :-

पुनर्नवा उपन्यास में द्विवेदी जी ने पुरुष पात्रों के द्वारा भी समाज में मानवीय गुणों की स्थापना की। इसी में देवरात पात्र की कल्पना की तथा भारतीय समाज में जड़ीभूत रूढ़ियों, मान्यताओं, विश्वासों एवं रीतिरिवाजों के कारण जो गतिहीनता आ गई थी उसे गतिशीलता प्रदान करने के लिये देशकाल की सीमा को लाँघकर समुद्रगुप्त ऐतिहासिक पात्र के द्वारा अपनी इस रचना को ऐतिहासिकता प्रदान करते हुये यह स्पष्ट किया है कि किसी युग को स्वर्ण युग बनाने के लिए किन मूल्यों (सांस्कृतिक) की आवश्यकता है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने 'पुनर्नवा' के हलद्वीप के जागृत प्रजा के चित्रण के माध्यम से प्रजातंत्र में जन के दायित्व के मुद्दे को भी उठाने का प्रयास किया है। प्रजातंत्र की सफलता प्रजा की जागरूकता और जिम्मेदार आचरण पर निर्भर करती है और आवश्यकता पड़ने पर उसे शासक के विरोध में आवाज उठाना भी पड़ता है। इस रूप में जन के दायित्व का मुद्दा तो समसामयिक रहा है जिसे द्विवेदी जी ने 'पुनर्नवा' में उठाया है।

हलद्वीप का राजा रुद्रसेन एक लंपट राजा है। हलद्वीप की प्रजा उसके औद्वत्य से त्रस्त हो उठती है। देवरात ने रुद्रसेन को नीतिमार्ग पर ले आने के अनेक प्रयत्न किये। पर कोई लाभ न रहा। लंपट राजा के आचरण से प्रजा में असंतोष बढ़ता गया। जिसका असर सैनिकों पर भी पड़ने लगा। अंत में अत्याचारी शासक से पीड़ित और त्रस्त जनता जाग जाती है। हलद्वीप के कुछ युवक जो लहुरावीर के उपासक थे। आर्यक को अपने दल का नेता चुन लेते हैं। अतः उनमें से एक नेता उभर आता है। वह न तो क्षत्रिय है और न किसी राजवंश से संबंधित है। आर्यक हलद्वीप में हर रोज होने वाले अत्याचारों से क्रोधित होकर राजा को ध्वस्त करने की बात सबसे कहता फिरता है। आर्यक एक नेता के समान अपना कर्तव्य निभाने में सफल होता है। उसके नेतृत्व में सैकड़ों युवकों की एक छोटी-मोटी सेना भी तैयार हो जाती है। उसका दल नगर की गली-गली घूमकर लोगों को अभय का आश्वासन देता है। आर्यक के दल से हलद्वीप का अत्याचारी शासक कांप उठता है। अपने इसी अप्रतिम शौर्य के कारण आर्यक जल्दी ही सम्राट समुद्रगुप्त का कृपापात्र बन जाता है और अत्याचारी शासक मिटा दिया जाता है। हलद्वीप के इस जन-जागरण के चित्रण के माध्यम से द्विवेदी जी वास्तव में हमारे सामने यह स्पष्ट कर देना चाहते है कि जब कभी देख में अराजकता का जन्म देने वाला शासक उत्पन्न हो जाता है तो उसे तुरंत ही मिटा देना चाहिए और शासक की इस अराजकता को मिटाने का उत्तरदायित्व प्रजा पर ही है। द्विवेदी जी समाज को यह भी याद दिलाना चाहते है कि ऐसा करना प्रजा का धर्म और कर्तव्य है।

गोपाल आर्यक प्रजा में से ही उभरे हुए नेता होने के कारण वह प्रजातंत्र को सुदृढ़ बना कर समस्याओं का समाधान कर देते है। आज हमारे प्रजातंत्र में भी इसी बात की आवश्यकता है। इस रूप में यह मुद्दा समसामयिक रहा है जिसके प्रति द्विवेदी जी सजग रहे हैं। इस उपन्यास (पुनर्नवा) मे छुआछुत व अन्तर्जातीय विवाह न मानने जैसी अमानवीय कुप्रथा को द्विवेदी जी भारतीय संस्कृति का भाग न मानते हुये पुनर्नवा में छुआछूत की कुप्रवृत्ति से मुक्त होने का संकेत किया है। अन्तर्जातीय विवाह में वृद्ध-गोप के कहने पर भी मैं उसे बहुत प्यार करता हूँ। परन्तु है तो वह गणिका पुत्री है। मैं अगर मान भी लूँ तो मेरे परिवार के लोग कैसे मानेंगे?11 परन्तु द्विवेदी जी ने आर्यक से मैना (मृणाल) की रक्षा का भार दिलवाते हुए अन्त में उसका विवाह स्वयं वृद्ध-गोप के द्वारा ही मृणाल और आर्यक का विवाह कराकर समाज की इस विगलित परम्परा का खण्डन कर नवीन आदर्श की स्थापना की। आर्यक और मृणाल मंजरी का विवाह तुरन्त कर दिया जाये और पुत्र वधु को लेकर ही वृद्धगोप घर लौटे। हुआ भी

ऐसा ही।'[12] 'पुनर्नवा' में द्विवेदी जी गुप्ताकालीन इतिहास के आधार पर तत्कालीन प्रचलित सामाजिक परम्पराओं में संशोधान की दृष्टि रखते हुये उन्हें आज के अनुसार बनाने का सफल प्रयास किया है। सामाजिक जीवन में वर्ण व्यवस्था की बड़ी जटिल समस्या है, इस बात को द्विवेदी जी ने इस उपन्यास में स्पष्ट किया है। ब्राह्मणों के प्रति द्विवेदी जी की आदरपूर्ण दृष्टि रही है। यह बात श्रु तिधर, देवरात चन्द्रमौलि के वार्तालाप से स्पष्ट हो जाती है, जिसमें ब्राह्मण को क्षत्रिय से श्रेष्ठ प्रतिष्ठापित किया गया है- देवरात कहते है- मेरा यह शरीर क्षत्रिय का है- ब्राह्मण तथापि विद्वान ब्राह्मण को सम्मान देना मेरा कुल धर्म है।[13] इतना ही नहीं उनकी विद्वता जन्मजात ब्राह्मणत्व के कारण देवरात जैसे सिद्ध पुरुष भी क्षत्रिय कुल में जन्म लेने के कारण ब्राह्मण से चरम स्पर्श करवाना उचित नहीं समझते थे। यह शरीर क्षत्रिय का है। तुम ब्राह्मण कुमार होकर अन्यथा चरण स्पर्श कर रहे हो.... चरणों पर गिरोगे तो मुझे नरक में भी स्थान नहीं मिलेगा।[14] लेकिन द्विवेदी जी ब्राह्मणों की प्रधानता एक सीमा तक ही स्वीकार करते हैं। इसी कारण वे कर्म को प्रधानता देने से, जन्म से ब्राह्मण को आदर का अधिकार देने को तैयार नहीं है। इसी से वे आदर को स्वस्थ समाज का एक गुण मानते हुये धर्म कर्म से रहित ब्राह्मण से बेहतर ऐसा पौरुषवान व्यक्ति को आदर देने की बात करते हैं, जिससे सामाजिक सुव्यवस्था सुदृढ़ हो।

इसी से कर्म को मानने वाले द्विवेजी जी यह मानने को तैयार नहीं कि ब्राह्मण कुल में उत्पन्न व्यक्ति अधिकतर ब्रह्म विद्या या वेद विद्या ही पढ़े, इसीलिये कुल धर्म की मर्यादा को दृष्टि में रखकर वृद्धगोप ने श्यामरूप के लिये सामाजिक विधि विहित स्वाध्याय के लिए कहा, 'मेरी हार्दिक अभिलाषा है कि श्यामरूप वंश परम्परा के अनुसार पण्डित बने'[15] वरन् द्विवेदी जी ने उसे उसकी इच्छानुसार उसे अन्त में मल्ल-विधा में पारंगत करवा दिया। द्विवेदी जी ने स्पष्ट करना चाहा है कि गुण और कर्म के अनुसार ही मनुष्य का मापन करना चाहिए, इसी कारण देवरात को आचार्य पद दिलाकर श्यामरूप को मल्ल-विद्या में प्रवीण करा क्षत्रियोचित गुण से प्रसिद्ध किया।

समाज में ऐसी किम्बदन्त है कि ब्राह्मण ही राग-द्वेष से परे होकर अपने शिष्यों को पुत्रवत् स्नेह किया करते है, परन्तु इस बात को द्विवेदी जी न मानते हुये देवरात को उदात्त हृदय की पराकाष्ठा दिखाने के लिये उपन्यास में ये पंक्तियां लिखी- देवरात इन दोनों शिष्यों को पाकर कुछ प्रसन्न हुये, उन्होंने गद्गद् भाव से वृक्षारोपण से कहा कि उन्हें ऐसा लग रहा है जैसे स्वयं बलराम और कृष्ण ही इन दोनों बच्चों के रूप में उनके सामने आ गये हैं। भाव गद्गद होकर दोनों बच्चों को गोद में लेकर वे देर तक बैठे रहे।[16]

द्विवेदी जी ने ऐसे धर्म को भी नहीं स्वीकारा जो आज के सन्दर्भ में अपना महत्व खो चुके हैं तथा जिनमें भक्त के नाम पर उँच-नीच का मिश्रण हो गया। वे ईश्वर व उसकी अर्चना में सभी मानव जाति को अधिकार मानते हैं न कि उँच व बलशाली ही पूजा के अधिकारी है। ये बात भिल्ल जाति के बालकों के मुख से कहलवाकर सिद्ध किया कि देवाधिदेव मूल रू प से उन्हीं के देवता हैं लेकिन जो लोग शक्तिशाली हैं, वे अब उन्हीं के देवता के मन्दिर में जाने नहीं देते। परन्तु देवाधि उनकी व्यथा समझते हैं- और वे एक दण्ड के लिये यहाँ आकर भक्तां की सेवा ग्रहण करते हैं।[17] इसके प्रतिपादन के लिए भिल्ल बालकों और चन्द्रमौलि के वार्तालाप का उद्धरण उपयुक्त है- 'मन्दिरों में भील आदि अछूत समझी जाने वाली जातियों का प्रवेश वर्जित था। इसीलिये महाकाल देवता एक दण्ड के लिये वन में शिलखण्ड पर आकार भक्तों की सेवा ग्रहण करते हैं।'[18]

इस प्रकार इस उंच नीच के दायरे में संकीर्ण धर्म को द्विवेदी जी इन वचनों से विस्तृत दायरे में ले जाते है और मानवतावादी दृष्टिकोण अपनाते हुए मानव सेवा को सच्चा धर्म मानकर समाज को उठाने वाले धर्म की वकालत करते हैं। इस प्रकार इस उपन्यास के मूल स्वर को यदि देखा जाय तो उससे

स्पष्ट है कि विगलित सामाजिक परम्पराओं में संस्कार लाने एवं युगानुरूप नवीन सामाजिक मूल्यों के निर्माण के प्रति प्रतिबद्ध है। इसीलिये भूमिका से पहले ही उपन्यास में द्विवेदी जी ने एक सूत्र पाठकों के समक्ष रख दिया है- अगर निरन्तर व्यवस्थाओं का संस्कार और परिमार्जन नहीं होता रहेगा तो एक दिन व्यवस्थाओं तो टूटेगी ही, अपने साथ धर्म को भी तोड़ देगी।

प्रेम-वर्णन के क्षेत्र में द्विवेदी जी की मनोवैज्ञानिक गहराई देखने योग्य है, जिसे वे मनोविश्लेषणवादी लेखकों की भाँति जटिल पद्धति से नहीं, बल्कि बड़े ही सहज और स्वाभाविक ढंग से ले आते हैं। 'पुनर्नवा' में मृणाल मंजरी व गोपाल आर्यक के प्रेम में यह अधिक सहज रूप में देखा जा सकता है। यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि प्रगाढ़ प्रेम का आकर्षण दूर रहने वाले प्रियजनों के हृदय में भी पारस्परिक सम्वाद स्थापित कर सकता है। मृणाल मंजरी द्वारा स्वप्न में गोपाल आर्यक के मन की बात जान लेना और सुमेर काका के द्वारा स्वप्न में आर्य देवरात का सन्देन पाना आदि घटनायें इसकी पुष्टि करती है। वैसे लेखक ने स्वयं भी इस बात की ओर संकेत किया है। वह लिखता है कि 'बहुत दूर से भी कोई व्यक्ति यदि किसी अन्य व्यक्ति को गाढ़ अनुभूति के साथ स्मरण करें, लगन के साथ पुकारे या अपने दुख को संवेदित करना चाहे तो समष्टिचित्त के माध्यम से वह व्यक्तिविशेष के चित्त में उसी प्रकार की प्रतिक्रिया उत्पन्न कर सकता है।[19] आजकल की भाषा में इसी को 'टेलीपेथी' कहा जाता है। आचार्य द्विवेदी 'टेलीपेथी' को एक सहज मानवीय संबंध के रूप में स्वीकार करते हैं। आर्य देवरात के माध्यम से आचार्य द्विवेदी ने प्रेम का जो रूप सामने रखा है, वह अद्वितीय है। वैयक्तिक प्रेम का लोकोन्मुख पर्यवसान जैसे देवरात के चरित्र में देखने को मिलता है, वैसा अन्यत्र दुलर्भ है। भागवतीचरण वर्मा की 'चित्रलेखा' के कुमारगिरि से भी 'पुनर्नवा' के देवरात भिन्न है। गृहस्थाश्रम की उपेक्षा करके बना तपस्वी कुमारगिरी अपनी साधना में असफल होकर उपहास और निन्दा का पात्र बनता है, पर गृहस्थाश्रम की लोकमंगलकारी चेतना से जुड़े रहने के कारण देवरात अपनी लोक-साधना में सफल होते हैं। देवरात कला-मर्मज्ञ होने के कारण देवरात अपनी लोक-साधना में सफल होते हैं। देवरात कला-मर्मज्ञ होने के कारण सौन्दर्य के प्रशंसक अवश्य हैं, पर वासना उनके पास फटक भी नहीं पाती। मंजुला में अपनी मृत पत्नी शर्मिष्ठा को देखकर वे मुग्ध अवश्य हो जाते हैं, पर वे मंजुला के बाह्य रूप पर नहीं, बल्कि उसमें बसे 'देवत्व' में ही अनुरक्त है।

देवरात और मंजुला के संबंधों की इस रूप में परिकल्पना करके आचार्य द्विवेदी ने सम्बन्धों के पुनर्जीवित होने की बात पर विशेष रूप से बल दिया है। पत्नी के वियोग से व्यथित जिस देवरात को महाकाल के मन्दिर में जाकर शान्ति नहीं मिलती है, वह मंजुला को इस रूप में पाकर पूर्णतः सन्तुष्ट हो जाते हैं। मंजुला पुनर्नवा बनकर उनके 'बासी घाव' तो ताजा करती हुई शर्मिष्ठा में एकमेक हो जाती है। इसी की व्याख्या लेखक ने इन शब्दों में की है- 'पुनर्नवा' देवी, तुम नित्य नवीन होकर मानस-पटल पर उदित होती हो। ....पुनर्नवा बनकर आती रहो। तुम्हारा थोड़ा कष्ट किसी को हरा कर जाये तो क्या हर्ज है देवि। नहीं तुम नित्य नवीन होकर हृदय में उतरा करो। नित्य नवीन होकर, पुनः पुनः नवीन होकर, मेरी पुनर्नवा रानी।'[20] यही इस उपन्यास का सन्देश भी है।

आचार्य द्विवेदी जी के उपन्यासों में यह आरोप लगाया जाता है कि उनमें नारी-पुरु ष प्रेम का मुक्त चित्रण नहीं होता। 'पुनर्नवा' इसकी पूर्ति का एक साहसिक प्रयास है। जैसे कि एक आलोचक ने कहा है- 'द्विवदी जी के उपन्यासों में प्रायः सभी नायक प्रेम का त्रिकोण बनकर घुटन का शिकार बन जाता है। इसके लिए लेखक ने प्रेम के क्षेत्र में नये ढंग से सोचने के लिए विवश किया है। इसमें मुख्य भूमिका रही है चन्द्रा की, जो अपने और गोपाल आर्यक दोनों के अलग-अलग विवाह हो जाने के बाद भी अपने

पति को छोड़कर भ्रष्ट कहलाने के बावजूद गोपाल आर्यक के पास चली आती है। दूसरी ओर गोपाल आर्यक घर से भाग जाने के बाद भी अपनी विवाहित पत्नी मृणाल मंजरी को भुला नहीं पाता। साथ ही चन्द्रा, जिसके कारण उसे दर-दर भटकना पड़ा, उससे भी वह घृणा नहीं करता बल्कि उसकी सेवाओं से वह मुग्ध ही होता है। यह अलग बात है कि लोकमर्यादा और प्रेमी जीवन के औचित्य के बीच उसके मन में बराबर अन्तर्द्वन्द्व चलता रहता है। यही स्थिति थोड़ी भिन्नता के साथ 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में भी दिखाई पड़ती है। वहाँ भटिट्नी और महावराह को नदी पार कराने वाले प्रसंग में लोक और परलोक का सीधा टकराव था, यहाँ लोकनिन्दा और प्रेमी जीवन के औचित्य का सीधा टकराव है। जहाँ प्रेम की विजयी होता है। क्योंकि मृणाल और चन्द्रा दोनों ही आर्यक के संरक्षण में रहती है। यहाँ आचार्य द्विवेदी ने प्रेमिका और पत्नी को एक साथ रखकर जड़ीभूत सामाजिक सभ्यताओं की उपेक्षा करके जीवन दामपत्य जीवन को मान्यता दी है। कुछ लोगों को यहाँ बहुपत्नीत्व की गन्ध आ सकती है। पर चन्द्रा के प्रेम का जो रूप आगे चलकर विकसित हुआ है। उससे तो वह गोपाल आर्यक और मृणाल मंजरी दोनों की ऐसी मित्र बन जाती है कि उसके प्रेम की उत्कृष्टता के सम्मुख बहुत सी पतिव्रताओं का त्याग भी फीका पड़ जाता है। लेखक ने स्वयं इस बात को स्वीकार किया है। वह लिखता है कि 'गणिका होकर भी जो साहस मंजुला न कर सकी वह साहस कुलांगना होकर भी चन्द्रा कर बैठी। इस उद्दाम प्रेम का निदर्शन खोजना कठिन है।' हिन्दी-साहित्य के प्रेम-जगत् में यह बेजोड़ पात्र है। इस प्रकार आचार्य द्विवेदी ने 'पुनर्नवा' के प्रेम की जो परिणति दिखाई है। उसमें प्रेम एक बड़ी सामाजिक शक्ति के रूप में उभरकर सामने आता है, जो जड़ सामाजिक शक्ति के रूप में उभरकर सामने आता है, जो जड़ सामाजिक-व्यवस्थाओं को भी चुनौती देता है तथा धर्म और शास्त्र को भी।

लेखक का कथन है 'धार्मिक संघटनों में चाहे जो हो धर्म नहीं है', धर्म के संस्थाबद्ध धर्म की तीखी आलोचना है। साथ ही धर्म को उपरोक्त कथन के अन्त में लेखक ने जो 'मानवात्मा की पुकार' कहा है वह धर्म की नयी व्याख्या है और उसके मानवातावादी पक्ष की ओर संकेत है। आचार्य द्विवेदी इस प्रश्न का भी उत्तर खोजने की चेष्टा करते हैं कि धर्म के स्वरूप में परिवर्तन किस प्रकार हो सकता है। इस प्रश्न पर बहुत चिन्तन मनन करने के पश्चात् वह इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि धर्म के स्वरूप में परिवर्तन यदि होगा तो वह लोकमानस के भीतर से ही होगा। इसीलिए अपने तीसरे उपन्यास 'पुनर्नवा' में वे कहते हैं कि 'पर लोकमानस में शुष्क धर्माचार और रूढ़ मान्यताओं के प्रति भाव-लोक का यह विद्रोह किसी दिन वस्तु-जगत के विद्रोह का रूप ले सकता है। जानते हैं धर्मावतार, आदि मनु ने धर्म के लिए हृदय-पक्ष को ध्यान में रखने पर भी बल दिया था- 'हृदयोनाम्यनुज्ञातः' कहा था। पुराण-ऋषि जानते थे कि शुष्क आचार-मात्र धर्म नहीं है।'[21]

उारोक्त कथन में लेखक की यह मान्यता रही हैं कि परिवर्तन लोकमानस के भीतर से आयेगा और उसके पीछे 'भावलोक' की प्रेरणा होगी। यह बहुत महत्वपूर्ण है। भावलोक के द्वारा लेखक वस्तुतः प्रेम और भक्ति के तत्व की ओर संकेत करता है। जो धर्म से कही बड़ी चीज है। लेखक को यह विश्वास भी है कि भावजगत् में जो सत्य है वह वस्तुजगत में परिवर्तन हो सकता है। धर्म में प्रेमतत्व या भक्तितत्व को बड़ा मानना, धर्म के सम्बन्ध में आचार्य द्विवेदी के दृष्टिकोण को समझने में सबसे अधिक सहायक सिद्ध होता है। 'पुनर्नवा' में ही देवरात और मृणाल मंजरी के वार्तालाप में धर्म के लोकरक्षक रूप का एक और उदाहरण मिलता है। देवरात मंजरी से कहते हैं- 'सुना है बेटी, कि कान्तिपुरी के निकट विन्ध्याटवी में कोई सिद्ध पुरुष आये है। उन्हें देवी ने स्वप्न में आदेश दिया है कि 'मेरे सिंहवाहनी, माहिषमर्दिनी - रूप की पूजा का प्रचार करो। जो पुरुष शूर है। धर्म

के अनुकूल है। पापी से डरना नहीं जानते, अन्यायी का रक्तपान करते है, वे सिंह हैं। मैं उन्हीं को वाहन बनाकर धर्म स्थापना करती हूँ।'[22] इस कथन में आचार्य यह कहते हैं कि धर्म वह है जो अन्याय के विरुद्ध संघर्ष करता है। धर्म को न्याय का पक्षधर बताकर आचार्य द्विवेदी धर्म के उज्जवल स्वरूप की व्याख्या करते हैं और मध्ययुग में धार्मिक संस्थाओं में जो भोग-विलास की प्रवृत्ति बढ़ गई, उसकी आलोचना करते हैं।

'पुनर्नवा' में जो कथावस्तु ली गई है, उसके उलटफेर और युद्धों का प्रसंग बहुत अधिक है, परन्तु जो बात सबसे अधिक महत्वपूर्ण है वह है कि इस उपन्यास में भी द्विवेदी जी के राजतन्त्र, राजदरबार और सामन्ती राजाओं की चाटुकारिता के विरुद्ध आलोचना-दृष्टि बराबर दिखाई पड़ती है। इसे आधुनिक भाषा में कहें, तो कह सकते है कि यह एक प्रकार की सामन्तवाद विरोधी दृष्टि है। उपन्यास का विनोदी पात्र कवि चन्द्रमौलि से कहता है- 'राज-स्तुति का मतलब तुम नहीं जानते। वह केवल शब्द होता है, अर्थ नहीं। अर्थ मन में होता है और शब्द जबान पर। लेकिन राजस्तुति का ऐसा विषय है जिसका अर्थ कहीं नहीं रहता। वह मूर्खों द्वारा, मूर्खो का किया हुआ, मूर्खतापूर्ण कथन-मात्र है।'[23] इस कथन में राजस्तुति की जो आलोचनात्मक व्याख्या की गई है वह असल में राजा की ही आलोचना है। इस कथन के द्वारा द्विवेदी जी यह दिखाने का प्रयास भी करते हैं कि तत्कालीन राजदरबारों में एक प्रकार का ढोंग और पाखण्ड का वातावरण छाया हुआ था। माढव्य के इस कथन के द्वारा आचार्य द्विवेदी उसी पाखण्ड का पर्दाफास करते हैं। इसी सन्दर्भ में आगे माढव्य अपनी बात को विस्तार देते हुए कहता है कि- 'जानते हो मित्र, सारी दुनिया अपनी कुशलता का मूल्य वसूल करती है, लेकिन माढव्य अपनी मूर्खता का दाम वसूल करता है। राजसभा में मूर्खता भी बिकती है मित्र, और माढव्य भी उसे बेचता है। वह विदूषक बनकर अपनी मूर्खता का दाम राजा से कसकर वसूलता है।..... वहाँ जुगाली करने वाले भरे पड़े हैं। माढव्य अगर मूर्ख है तो राजसभा वाले बैल हैं।'[24] इस कथन का अन्तिम वाक्य विशेष रू प से ध्यान आकृष्ट करता है, जहाँ माढव्य कहता है कि 'माढव्य अगर मूर्ख है तो राजसभा वाले बैल' असल में माढव्य का कथन राजसत्ता के प्रति सामान्य जन की दबी हुई प्रतिक्रिया का ही सूचक है। उस काल में अपनी भोगलिप्सा और जर्जर शासन व्यवस्था के कारण स्वयं जनता की दृष्टि में कितना गिर गया था माढव्य का कथन इस बात की ओर संकेत करता है। वास्तविकता यह है कि माढव्य या उनके जैसे पात्रों के माध्यम से द्विवेदी जी वस्तुतः मध्यकालीन सामन्ती व्यवस्था के प्रति अपनी ही आलोचना को वाणी दे रहे हैं। 'पुनर्नवा' में जहाँ मृणाल मंजरी और गोपाल आर्यक के बीच विवाह की बात उठती है, वहाँ बहुत से सामाजिक प्रश्न भी उठाये गए हैं। दोनों में विवाह की बात उठती है, और साथ ही सामाजिक भेद है वह विवाह के मार्ग में बाधा के रू प में खड़ा होता है, परन्तु उन दोनों में जो एक सहज प्रेममूलक सम्बन्ध है, वह एक बड़ी वास्तविकता है, और इसीलिए लेखक ने आर्य देवरात के माध्यम से ये विचार व्यक्त किये है- 'इस बात में कोई सन्देह नहीं रहा कि वृद्धगोप का कहना ठीक है। लोकाचार वृद्धगोप के पक्ष में है। परन्तु उनका हृदय कहता था कि विधाता ने यह जोड़ी समझबूझकर बनायी है। लोकाचार इसमें बाधक भी हो तो भी यह करणीय है।'[25]

उपर्युक्त कथन का अन्तिम वाक्य विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है, जहाँ प्रेम को लोकाचार से बड़ा बताया गया है। वस्तुतः प्रेम जाति और वर्ण की बाधाओं को पार कर जाता है और इस प्रकार समाज के भीतर एक समरसता पैदा करने में सहायक होता है। आचार्य द्विवेदी का प्रेम सम्बन्धी सिद्धान्त अपने भीतर एक आदर्श को लिए हुए हैं और इसलिए यदि इसे आदर्शोन्मुख प्रेम कहा जाये, तो अनुचित न होगा। इस आदर्शोन्मुख प्रेम का सबसे उच्च रूप 'आत्मदान' के दर्शन में दिखाई पड़ता है। द्विवेदी जी

बार-बार प्रेम में आत्मदान के महत्व का उल्लेख करते हैं अर्थात् स्वयं को लुटा देने, 'उलीलीचकर दे देने' या 'दलित द्राक्षा की भाँति निचोड़कर' दे देने की बात करते हैं। उनके इस दर्शन का एक 'पुनर्नवा' में आर्य देवरात के माध्यम से व्यक्त किया गया है, जहाँ उन्हें स्वप्न में मृत मंजुला मानों कह रही है– 'भगवान ने तुम्हें ग्रहीता-भाव दिया ही नहीं है। 'तुम्हारा स्वभाव देना है, लुटाना है, अपने आपको दलित द्राक्षा की भाँति अज्ञात को निचोड़कर महा-अज्ञात के चरणों में उड़ेल देना है, छोटो मुँह बड़ी बात कह रही हूँ प्रमो, क्षमा कर देना। तुम्हारी ही सिखावन तुम्हें लौटा रही हूँ।'[26] यह आत्मदान का सिद्धान्त द्विवेदी जी के प्रेम के स्वरूप को एक उच्चता प्रदान करता है, जिसमें किसी तरह का भेदभाव रह ही नहीं जाता। यह मनुष्य को उपर उठाने वाला प्रेम है। जिसमें सामाजिक जीवन के भेद, रूढ़ियाँ और सीमायें टूट जाती है। और इसलिए, उनके उपन्यास में विभिन्न जातियों, वर्णों और श्रेणियों के पात्र परस्पर प्रेम सम्बन्ध में बँध जाते है और इस प्रकार के समाज द्वारा स्थापित नैतिक मर्यादाओं को अंशतः- खंडित करते या लचीला बनाते हैं।

इस प्रकार लोकप्रियता की दृष्टि से 'पुनर्नवा' द्विवेदी जी का सबसे सफल उपन्यास है। केवल रोचकता के कारण ही नहीं, अपने सामाजिक विश्लेषण के कारण भी इस उपन्यास का अपना महत्व है। इस उपन्यास की पृष्ठभूमि भारतीय इतिहास के उस कालखण्ड से ली गई है जिसमें अनेक प्रकार के राजनैतिक परिवर्तन घटित हो रहे थे। परिवर्तनों का स्वरूप ऐसा था कि वह निचले स्तर के जन-जीवन को बहुत कम प्रभावित करता था। सामान्य भाषा में एक जड़ता थी और उस जड़ता को लेखक इस उपन्यास में बड़ी गहराई से अनुभव करता है। इससे बार-बार यह अनुभव होता है कि इन जड़ परिस्थितियों को बदलने वाली कोई शक्ति समाज के भीतर से उभरकर नहीं आ रही है। इसीलिए उपन्यास के प्रमुख पात्र आचार्य पुरगोभिल एक स्थान पर कहते है- 'अगर निरन्तर व्यवस्थाओं का संस्कार और परिमार्जन नहीं होता रहेगा, तो एक दिन व्यवस्थाएँ तो टूटेंगी ही, अपने साथ धर्म को भी तोड़ देंगी।' व्यवस्थाओं के संस्कार व परिमार्जन की यह आवश्यकता इसलिए थी कि जड़ता को तोड़ा जा सके।

संदर्भ :

1. साहित्य-संगीत और कला, कोमल कोठरी की पुस्तक से उद्धत
2. पुनर्नवा, पृ. 46
3. पुनर्नवा, पृ. 71
4. पुनर्नवा, पृ. 274
5. पुनर्नवा, पृ. 270
6. पुनर्नवा, पृ. 292
7. पुनर्नवा, पृ. 291-292
8. पुनर्नवा, पृ. 21
9. पुनर्नवा, पृ. 19
10. पुनर्नवा, पृ. 293
11. पुनर्नवा, पृ. 35
12. पुनर्नवा, पृ. 36
13. पुनर्नवा, पृ. 147
14. पुनर्नवा, पृ. 226-227
15. पुनर्नवा, पृ. 10
16. पुनर्नवा, पृ. 10
17. पुनर्नवा, पृ. 261
18. पुनर्नवा, पृ. 261
19. पुनर्नवा, पृ. 111
20. पुनर्नवा, पृ. 225
21. पुनर्नवा, पृ. 158
22. पुनर्नवा, पृ. 36
23. पुनर्नवा, पृ. 92
24. पुनर्नवा, पृ. 91
25. पुनर्नवा, पृ. 33
26. पुनर्नवा, पृ. 225

●

एसोसिएट प्रो. एण्ड हेड डिपार्टमेंट
ऑफ हिन्दी, कटानकुलाथुर
एस. आर. एम. इंस्टिट्यूट ऑफ साइन्स
एंड टेक्नालॉजी, चेन्नै
मो. 9566291669
ईमेल- hod.hindiktr@srmist.edu.in

प्रभाकर माचवे का वैविध्यपूर्ण रचना संसार

डॉ. कृष्णा शर्मा

प्रभाकर माचवे जी ने उपन्यास क्षेत्र में पदार्पण कर पचास वर्ष की लंबी अवधि में सोलह उपन्यास लिखे थे। उनके उपन्यास ऐसे विषयों को उठाते रहे हैं जिसकी चर्चा कम हुई हो। वे विगत अतीत की भारतीय परंपरा की कथावस्तु के अंतर्गत गुम्फित करते हुए साम्प्रत की जटिल समस्याओं का मनोविश्लेषण करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। जैसे सांप्रदायिक समस्या, अछूतों के मानसिक विकास का प्रश्न, मुनाफाखोरी और विदेशी पूंजी से पलने वाले स्वदेशी पूंजीवाद का प्रश्न, अनेक ऐसे प्रश्न हैं जो हमारे जीवन को परेशान करते हैं। आलोच्य उपन्यासकार के उपन्यास छोटे-छोटे आकार में परिलक्षित होते हुए भी बड़ी-बड़ी समस्याओं का विश्लेषण करते हुए दिखाई देते हैं। ये उपन्यास परंपरा की लीक से हटकर, अपने ढंग का अपना नया मार्ग ग्रहण करते हैं।

प्रभाकर माचवे जी का जीवनानुभव व्यापक और वैविध्यपूर्ण था। जब कहानियों के सीमित दायरे में उसका उभरना असंभव हो गया तो उपन्यास लेखन उनका माध्यम बना। यथार्थ जीवन की संक्रान्त चेतना, परिवेशगत जीवन की समस्त विसंगति, आपसी तनाव और जटिलता, समाज के बनते-बिगड़ते संबंधों, अभावों-बेबसियों को अत्यंत संवेदनात्मक एवं मार्मिक ढंग से उन्होंने अपने उपन्यासों में उभारा है।

माचवे जी निपट देहातों में बहुत कम रहे हैं। यद्यपि गाँव के वातावरण को लेकर एक-दो उपन्यास लिखे हैं। परंतु देहात से अधिक कस्बे के छोटे-बड़े शहर रतलाम, उज्जैन आदि और बड़े नगर नागपुर, इलाहाबाद, अहमदाबाद, दिल्ली, मुंबई (बंबई), कलकत्ता, मद्रास और दुनिया के और बड़े शहरों में अधिक रहे। इसलिए उनके उपन्यासों का परिवेश और समस्याएँ भी नितांत शहरी हैं। यही उनकी सीमा भी थी।

माचवे जी की मान्यता थी कि भारत अभी पूरी तरह आधुनिक नहीं हुआ है। हमारे यहाँ हर पुरानी चीज को बुरा कहने का रिवाज चल पड़ा है। आधुनिकता को अधिक वेग से लाने की अधीरता हमें उल्टे प्रत्यावर्तन की तरफ ले जाती है। उन्होंने अपने प्रथम उपन्यास 'परंतु' में मनुष्य की चार आदिम प्रवृतियों-भूख, सेक्स, भय और युयुत्सा को उसका मूलाधार माना। परंतु धीरे-धीरे उनके मन में मनुष्य की पशुता पर प्रश्नचिह्न लगने लगा। 'द्यूत', 'किसलिए', 'कहाँ से कहाँ' उपन्यासों में इस आदिम समस्या को एक विचित्र प्रकार के अनसुलझे अस्तित्ववादी बंधन की तरह लिया है। माचवे जी के शब्दों में 'मैं उपन्यास किसी न किसी सामाजिक समस्या के मनोवैज्ञानिक पहलू के

विश्लेषण के लिए लिखता हूँ...केवल लिखने के लिए नहीं...पर इसलिए कि उन समस्याओं ने मुझे झकझोरा था-मैं अपने आप पाठकों तक अपना वह अंतर्कम्य पहुँचाना चाहता हूँ।'[1]

प्रेमचंदोत्तर युग में देश की सामाजिक परिस्थितियाँ बहुत कुछ बदल चुकी थी। समाज के अंदर अनेक विभिन्नताओं ने प्रवेश पा लिया। पाश्चात्य संस्कृति के अधिक संपर्क में आने के कारण प्राचीन रूढ़ियों के बंधन बहुत कुछ ढीले पड़ चले थे। माचवे जी के उपन्यास में समाज के आदर्शवादी रूप का चित्रण नहीं मिलता बल्कि उन्होंने समाज की वास्तविकता को अधिक से अधिक उसके प्रकृत रूप में सामने लाने का प्रयत्न किया है और अनावश्यक वर्णन की उपेक्षा करके भी प्रभावोत्पादक उपन्यास लिखे हैं।

उपन्यासकार के लिए समाज वह आधार पीठिका है, जहां वह स्वयं जन्म लेकर जीवन के विकासशील सोपानों पर चढ़ता हुआ सामाजिक जीवन का स्वानुभूत चित्र समाज के लिए प्रस्तुत करता है। समाज से जो कुछ वह ग्रहण करता है उसमें कलात्मक रंग भरकर सामाजिक मनोरंजन करते हुए जीवन की विशिष्ट प्रतिच्छवि चित्रित करता है।

समाज में अनेक जाति, धर्म और संप्रदाय के लोग निवास करते हैं। राजनीति, आर्थिक, धार्मिक इत्यादि स्तरों पर इनमें भिन्नता होती है। विभिन्न अवसरों पर इनमें संघर्ष भी छिड़ जाता है। कहीं इन संघर्षों का कारण नए मूल्य आदर्शों की प्रतिष्ठापना होता है। किन्तु कभी-कभी अविवेकपूर्ण गतिविधि से संघर्ष की स्थितियाँ पैदा हो जाती हैं और यह स्थिति समाज के लिए और समाज में रहने वाले परिवार के लिए सर्वथा हानिकर बन जाती हैं।

माचवे जी ने गढ़े-गढ़ाए आदर्शों में समस्याओं का हल खोजने का प्रयास नहीं किया अपितु वे देश और समाज के बिगड़े हुए स्वास्थ्य को सुधारने के लिए, उसके घृणित अत्याचार, अनाचारपूर्ण पाखण्डों और अंधविश्वासों में जकड़े रूढ़िग्रस्त रुग्ण रूप को प्रदर्शित करके पाठकों को समाज और देश के निर्माताओं को सोचने-विचारने को बाध्य करते दिखाई देते हैं। अपने प्रथम उपन्यास 'परन्तु' में ही माचवे जी ने समाज सुधारक सेठों की वास्तविकता से परिचय कराया। 'सेठ जी के विचार कितने भयंकर थे। ये और ऐसी सब युवतियाँ उनके सुखोपभोग के लिए पैदा हुई हैं। उन्हें कृतज्ञ होना चाहिए कि एवज में वह उन्हें रु पए दे देते है।'[2]

माचवे जी के उपन्यासों का समाज न तो उच्च वर्ग का है न सर्वहारा वर्गीय अर्थात् आज के व्यापक जीवन संदर्भों से किसी हद तक वंचित या अछूता है। उन्होंने यथार्थवाद का चित्रण किया है। मनुष्य के सामाजिक परिवेश को ही अधिक महत्त्व दिया है, उसमें भी उसके आर्थिक पहलू को। आर्थिक साधनों को बदलने से समाज के संबंध बदलते हैं और समाज के सम्बन्धों के बदलने से समाज की सभ्यता, संस्कृति, कला और साहित्य में नवीनता आती हैं।

'दुनिया में इतनी बुराई है। गंदगी है। खराबियाँ हैं। क्या इन सबकी चर्चा करने से वह सुधर जाएँगी। कई निष्क्रिय आरामतलब सुधारक और तथाकथित क्रांतिकारी यही समझते हैं कि वाचाल होना ही काफी है...ऐसे लोग समाज को बगल देखू बना देते हैं।'[3]

परन्तु मनुष्य इस समाज नाम की अमूर्त धारणा से कब तक लड़ता रहेगा। वह जो भोगता है अपने आसपास देखता है। वही तो समाज है। मनुष्य की सृष्टि ही समाज है। माचवे जी ने समाज के किसी एक वर्ग या जाति के उपर लगे एक विशेषण को भी गलत माना है।

'साँचा' नामक उन्यास मानव के साम्प्रत दृष्टिकोण की तरफ ध्यानाकर्षित करता है। इसमें उपन्यासकार ने आधुनिकता के प्रभाव में ग्राम जीवन की टूटन चित्रित की है। इसके साथ-साथ ग्राम भाव के आदर्श भी खंड-खंड हो जाते हैं। और अंत में वह केवल टूटा हुआ निर्जीव सा साँचा बनकर ही रह जाता हैं।

समाज की परिधि बड़ी विस्तृत और व्यापक है।

मानव जीवन के विभिन्न पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सभी समाज के अंतर्गत ही आते हैं और इनकी पूर्ति समाज में रहकर ही की जा सकती है। इसलिए माचवे जी समाज के प्रति निवृत्तवादी या पलायनवादी मार्ग को अंगीकार नहीं करते हैं। उनकी अनंत साधना का क्षेत्र समाज है। समाज में पाप और पुण्य कुछ भी नहीं है। वह केवल मनुष्य के दृष्टिकोण की विषमता का दूसरा नाम है।

माचवे जी के साहित्य की एक प्रमुख विशेषता है कि उसमें वे न तो उपदेशक बनकर आए हैं और न ही उन्होंने आदर्शवादी नेताओं की भाँति आदर्शों की बाढ़ में समस्याओं का हल खोजने का प्रयास किया है। 'सब कुछ बदल जाने पर भी क्या हम आंतरिक रूप से बदल सकते है। गहराई से देखा जाए तो समाज कोई थोपी गई या उपरी चीज नहीं है। वह हम सबसे बना है।'[4]

'किशोर' उपन्यास को पढ़ने के बाद देश का पूरा ढांचा सामने आता है-सामाजिक भी और शैक्षिक भी। वैसे समाज में अभी भी छुआछूत की समस्या जैसी की वैसी है। धन से ही प्रतिष्ठा है। समाज में जिसके पास धन है वही उच्च कुल का है। 'किशोर' को दो लाख रुपए मिलते ही कृष्णमूर्ति ने दया का हाथ उसके हाथ में देना चाहा जैसे एक क्षण में सब बदल गया। बेरोजगारी की समस्या ने समाज में योग्य व्यक्ति को अयोग्य साबित कर दिया है।

भारतीय समाज व्यवस्था का सबसे बड़ा महत्वपूर्ण अंग संयुक्त परिवार रहा है। यह संयुक्त परिवार प्रणाली प्राचीन काल से ही सामाजिक संगठन का एकमात्र आधार रही है। आधुनिक युग में अभिनव औद्योगिक राष्ट्रीय आर्थिक प्रणाली ने ग्रामीण सीमाबद्ध तथा कृषि प्रधान आर्थिक व्यवस्था का स्थान ग्रहण कर लिया। आधुनिक भारत में संयुक्त परिवार विघटित हुए हैं। माचवे जी के अधिकांश उपन्यासों में पात्र या तो विदेश में या अपने ही देश के दूसरे हिस्से में रहते दिखाई देते हैं। अपने परिवार से दूर 'एकतारा' में 'तारा' अपने परिवार से विद्रोह करके स्वाधीनता संग्राम में भाग लेती है। 'लक्ष्मीबेन' की 'लेखा' पूरा जीवन अकेली काट देती है।

परिवार का सबसे बड़ा व्यक्तिस्वामी हुआ करता था। परन्तु सब अपने स्वामी स्वयं ही हैं। कोई अन्य नहीं, चाहे वह पिता हो या पुत्र हो। परन्तु क्या माँ, बेटे, बेटी वात्सल्य के मापदंड भी बदल गए।

परिवार के टूटने का एक प्रमुख कारण ग्रामीण व्यक्तियों का नौकरी की तलाश में ग्राम छोड़कर शहर आना भी है। यहाँ आकर वह यहीं के होकर रह जाते हैं। गोआ के उदाहरण द्वारा लेखक ने सम्पूर्ण भारतवर्ष में बदलते सामाजिक ढाँचे की विस्तृत व्याख्या की है। आधुनिकीकरण एवं पश्चिमी सभ्यता प्रभाव के भारत के गाँव और शहर को साथ-साथ प्रभावित किया है। भारतीय समाज पुरुष प्रधान रहा है इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता। नारी के भोग्या रूप को ही अधिक महत्त्व दिया है। अभी भी समाज में परित्यक्त नारी को क्षमा नहीं किया गया है।

माचवे जी के उपन्यासों का समाज आधुनिक युग के कामकाजी वर्ग का समाज है। अपने कार्यों के द्वारा वह समाज में अपना स्थान बनाना चाहते हैं। इसके साथ ही आज के समाज में अनेक ऐसी रूढ़ियों ने जड़ जमा रखी है, जिनकी आज के परिवर्तित परिवेश में कोई उपयोगिता ही शेष नहीं रह गई है। पर समाज में अभी भी बाबा, स्वामी, सिद्ध, जोगी, नाथ आदि चमत्कारी पुरुषों की संख्या बेतहाशा बढ़ती जाती है। 'भोली जनता से पैसे ऐंठने वाले पंडा-पुजारी, मुल्ला-मौलवी, पोप-पादरी पहले ही कम नहीं थे। अब तो पढे-लिखे लोगों में भी हर एक का एक 'गुरु' होता ही है।'[5]

जाति-प्रथा, पर्दा प्रथा, स्त्री प्रताड़ना जैसी रुढ़ियों को समाप्त करने हेतु वे स्वयं आगे आए हैं। क्योंकि ऐसा किए बिना स्वस्थ एवं प्रगतिशील समाज का निर्माण करना असंभव है। ईश्वर के नाम पर हो रहे आडंबरों को भी आज संदेह से देखा जाता है।

स्त्री-पुरुष संबंध माचवे जी के उपन्यासों में पृष्ठभूमि के रूप में आए हैं। जहां पात्र अपने विगत

जीवन के विषय में विचार करते हैं लेकिन इस स्थिति में भी अपने आप में कोई नवीनता नहीं है। स्त्री-पुरुष सम्बन्धों का यह रूप धीरे-धीरे हिन्दी उपन्यास साहित्य से विलीन होता जा रहा है और ये विलीन होना भी था क्योंकि जो लोग राम और सीता के आदर्श जोड़े की बात करते हैं, वे नारी को सीता बनाकर उससे त्याग की, बलिदान की आशा प्रतिक्षण रखते हैं। 'राम और सीता के आदर्श जोड़े की बात करने वाले भूल जाते हैं, कि इसमें अग्निपरीक्षा बेचारी स्त्री को ही देनी होती है।'[6] प्रभाकर माचवे जी के उपन्यासों में स्त्री-पुरु ष सम्बन्धों का प्रस्तुतीकरण संभवतः स्पष्ट कर देता है कि वह इस संबंध को परंपरागत ढंग से तो बिल्कुल नहीं देखते। उनके यहाँ पुरुष, प्रधान होकर भी नारी के सम्मुख गौण है। भारतीय समाज बड़े तीव्र रूपान्तरण के दौर से गुजर रहा है और हमारे सामाजिक संबंध बड़ी तेजी से बदल रहे हैं। फलस्वरू प एक साथ कई प्रकार के अंतर्विरोधों की सृष्टि हो रही है। एक ओर स्त्री की समानता का भाव बढ़ रहा है तो दूसरी ओर उसके केवल भोगनीय होने का।

माचवे जी स्त्री एवं पुरुष के सम्बन्धों में समभाव के पक्षधर थे उनके विचार से दोनों को समान अवसर देने चाहिए, समाज में नारी की स्थिति स्पष्ट और पुरु ष के समान होने की आवश्यकता है। 'मेरे मन में स्त्री तथा पुरुषों को अधिकाधिक सहशिक्षा ही नहीं, उन्हे परस्पर संपर्क में आने के अधिकाधिक अवसर कर्मक्षेत्र में ज्यों-ज्यों मिलेंगे, यौन प्रश्नों पर जो घनीभूत पर्दा डाला गया है, वह हट कर कुछ खुली हवा आएगी।'[7]

किसी देश के सामाजिक जीवन के क्रमिक विकास में अर्थव्यवस्था का अपना महत्वपूर्ण स्थान है। अर्थ को यदि सामाजिक निर्माण की मुखपीठिका कहा जाए तो अनुपयुक्तन होगा। सामाजिक के साथ आर्थिक समस्या का भी लेखक को स्वानुभूत परिज्ञान है। उपन्यासकर अपने उपन्यास में धनलोलुप, सूद-खोरी, पूँजीपतियों, सेठों, शोषकों, नर पिशाचों की क्रूरता और अमानवीयता का पर्दाफ़ाश करते हैं। माचवे जी का आर्थिक दृष्टिकोण किसी वाद से प्रभावित नहीं था। अपितु दलितों के प्रति सहज सहनशीलता से प्रेरित होकर वह उनमें आर्थिक विषमता और शोषक के यथार्थ चित्र को प्रस्तुत करते हैं। पैसे का मूल्य सामाजिक प्रतिष्ठा के लिए तो आवश्यक है ही, साथ जी पारिवारिक जीवन में भी उनका कम महत्वपूर्ण स्थान नहीं है। पैसे के अभाव में गार्हस्थ्य धर्म का स्वस्थ परिपालन नहीं हो सकता। इसी भावना की अभिव्यक्ति माचवे जी के उपन्यासों में हुई है। 'किसलिए' उपन्यास में माचवे जी ने पारिवारिक जीवन पर अर्थ का प्रभाव दिखाया। एक अजीब तरह की अहं भावना या हीन भावना पैसे के होना या न होने से होती है। 'पैसा रहने का ढंग बनाता है। यह रहन-सहन का ढंग बचपन से बच्चों के मन में कुंठाएँ पैदा कर देता है। या अधिक पैसे के लिए ललक और भूख या कम पैसे हों तो श्रेष्ठता की अहं भावना।'[8]

माचवे जी की धार्मिक भावना सर्वधर्म संभव पर आधारित, धर्म निरपेक्ष है। वे मानव धर्म के कट्टर पक्षपाती थे। वह यह मानते थे कि ईसाई, सिक्ख, मुसलमान हो या हिन्दू इनका अपना निजी कोई मत नहीं है, केवल भेड़चाल है, आँख होते हुए भी अंधों कि तरह हैं। 'क्या हिन्दू , क्या ईसाई, क्या मुस्लिम, क्या सिक्ख सबके सब एक तरह से दिशाहारा और शरणार्थी हैं। विचारों की दुनिया के मायावी हैं। इनका कोई सिद्धान्त नहीं, विश्वास नहीं, मतवाद नहीं' सब एक खूँटे से बंधे थे।'[9]

माचवे जी ने हिन्दू धर्म के परिवर्तित और विगलित होती हुई विकृत सामाजिक व्यवस्था पर स्थान-स्थान पर प्रहार किया है। हिन्दू धर्म का व्यक्ति परक दृष्टिकोण अत्यंत उदार और परिष्कृत है। पर जहां कहीं सामाजिक रूप धारण करता है, वह दान, दया और शोषण की विकृतियों से ग्रसित होकर अत्यंत पूंजीवादी बन जाता है। यही कारण है हिन्दू धर्म और इस्लाम धर्म में समझौता न हो सका।

अन्ततोगत्वा धर्म वही है जो हम उसकी व्याख्या करते हैं वह कहीं स्वयं प्रकट वस्तु नहीं है। 'धर्म तो जैसी आप उसकी व्याख्या करो उसी पर निर्भर है। जो लोग उसमें से इंद्रिय सुख चाहते हैं वे पंचमकार ढूँढ लेते है? जिन्हें दास्य भक्ति और अंध श्रद्धा चाहिए, वे उसमें वही देख लेते हैं-यानि ईश्वर एक तरह से मनुष्य का प्रतिबिंब है या प्रतिध्वनि है।'[10]

माचवे जी ने अपने उपन्यासों में रंगभेद की समस्या पर भी चर्चा की है। रंगभेद जैसी व्यापक और विकराल समस्या को जब कोई लेखक औपन्यासिक फ़लक पर अभिव्यक्त करना चाहता है तो उसे कई दिक्कतों का सामना करना पड़ता है। इसके लिए राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक स्थितियों का जायजा ही नहीं विचारों के इतिहास और विचारधाराओं के ऐतिहासिक संदर्भों की समझ भी जरूरी हो जाती है। 'जो' माचवे जी का बहुचर्चित उपन्यास है। यह उपन्यास साहित्य में एक नया विषय लेकर आया। रंगभेद, उँच-नीच, जात-पात, विश्व के हर देश में एक बड़ी समस्या हो बैठी है, स्वयं लेखक के शब्दों में 'मैं इस परिणाम पर पहुंचा कि यदि मानवता एक है तो अमरीका के काले-गोरे लोगों की वर्ण-द्वेष की समस्या को एक दृष्टि से और भारत के ब्राह्मण-अब्राह्मण या सवर्ण-हरिजन की समस्या को दूसरी दृष्टि से काम नहीं चलेगा।'

कथ्य एक ऐसा दृढ़ स्तम्भ है जिस पर कथा साहित्य का रचना संसार टिका रहता है। प्रभाकर माचवे के कथा साहित्य में वर्णित विभिन्न समस्याओं का विस्तार से वर्णन करने के उपरांत यह कहा जाना कि इनका रचना संसार वैविध्यपूर्ण है, एकदम सही है। उनकी नवोन्मेषी प्रतिभा, जीवन के विभिन्न कोणों में व्याप्त असंगतियों एवं अन्तः-बाह्य विषमताओं का चित्रण करके एक स्वस्थ समाज की रचना करना चाहती थी।

1. आधुनिक हिन्दी उपन्यास : भीष्म साहनी, 'जो' संस्मरण – डॉ. प्रभाकर माचवे
2. परन्तु – प्रभाकर माचवे
3. लक्ष्मीबेन – प्रभाकर माचवे
4. द्वाभा – प्रभाकर माचवे
5. कहाँ से कहाँ – प्रभाकर माचवे
6. किसलिए– प्रभाकर माचवे
7. द्वाभा – प्रभाकर माचवे
8. किसलिए – प्रभाकर माचवे
9. लापता - प्रभाकर माचवे
10. द्यूत – प्रभाकर माचवे
11. जो - प्रभाकर माचवे

●

एसो. प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
पी. जी. डी. ए. वी. महाविद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय
मो. 9871726471
ई-मेल : krishnasharmapgdav@gmail.com

अपने ईश्वर को पाने के लिए आप जिस मत या पंथ में यकीन रखते हैं, बेशक उसी के नक्शेकदम पर चलें। लेकिन ऐसा करते हुए, उन दूसरे रास्तों के बारे में अपनी सोच-समझ बंद न कर लें, जिनसे होकर कई दूसरे भी ईश्वर के नजदीक जा रहे हैं। आपको कभी यह मानकर नहीं चलना चाहिये कि आपने जो रास्ता, अख्तियार किया है, वही आखिरी और सबसे सही रास्ता है।

-अज्ञात

शुक्रताल– जहाँ राजा परीक्षित को मोक्ष मिला!

राजगोपाल सिंह वर्मा

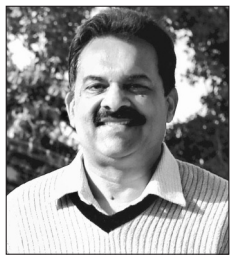

मुजफ्फरनगर जनपद में, बिजनौर की सीमा के निकट, गंगा तट के किनारे बसा शुक्रताल का पावन और पौराणिक स्थल पश्चिमी उत्तर प्रदेश का एक प्रमुख और हिन्दुओं की प्राचीन आस्था का केंद्र है। यहाँ गंगा नदी का प्राकृतिक प्रवाह अपने पवित्र रूप में दिखता है। प्रत्येक वर्ष कार्तिक पूर्णिमा पर शुक्रताल में बड़ा मेला आयोजित होता है जिसमें लाखों की संख्या में आसपास के क्षेत्रों से आने वाले लोग गंगा स्नान करते हैं और पौराणिक आयोजनों में भाग लेते हैं।

शुक्रताल की पौराणिक कथा :

एक बार राजा परीक्षित जंगल में शिकार खेलने गये। शिकार की तलाश में घूमते-घूमते वे भूख-प्यास से पीड़ित हो गये। पानी की तलाश करते-करते वह शमीक मुनि के आश्रम में पहुँचे जहां पर मुनि समाधिस्थ थे। राजा ने कई बार मुनि से पानी की याचना की, परंतु कोई उत्तर न मिलने पर, राजा ने एक मरे हुए साँप को धनुष की नोक से उठाकर, शमीक मुनि के गले में डाल दिया, परंतु शमीक मुनि को समाधि में होने के कारण इस घटना का कोई भान ही नहीं हुआ.

शमीक मुनि के पुत्र श्रृंगी ऋषि को जब यह पता लगा तो उन्होंने गुस्से से हाथ में जल लेकर राजा को श्राप दे दिया कि जिसने भी मेरे पिता के गले में मरा हुआ साँप डाला है आज से सातवें दिन इसी सांप (तक्षक) के काटने से उसकी मृत्यु हो जायेगी। वह अपने पिता के गले में मरा हुआ सांप पड़ा देखकर जोर-जोर से रोने भी लगे। रोने की आवाज सुनकर शमीक मुनि की समाधि खुली और उन्हें सब समाचार विदित हुए। मुनि ने श्रृंगी से दुःखपूर्वक कहा कि वह हमारे देश का राजा है और समझाया कि राजा के पास सत्ता का बल होता है। राजा उस सत्ता के बल का दुरुपयोग कर सकता है, परंतु ऋषि के पास साधना का बल होता है और ऋषि को साधना के बल का दुरुपयोग नहीं करना चाहिए। अतः राजा को तुम्हें श्राप नहीं देना चाहिए था।

राजा परीक्षित का श्राप और उसका उपाय :

राजा परीक्षित को जब श्राप के बारे में पता लगा तब उन्हें अपनी गलती का भान हुआ। वे अपने पुत्र जनमेजय को राजपाट सौंपकर हस्तिनापुर से शुकताल पहुँच गये। गंगा जी के तट पर वट वृक्ष के नीचे बैठ कर राजा परीक्षित श्रीकृष्ण भगवान का ध्यान करने लगे। वहीं परम तेजस्वी शुकदेव जी प्रकट हुए और अनेक ऋषि-मुनियों के मध्य एक शिला पर आकर बैठ गये। कहते हैं कि मातृ-शुद्धि (माता के कुल की महानता), पितृ-शुद्धि (पिता के कुल की महानता), द्रव्य-शुद्धि (सम्पत्ति का सदुपयोग) अन्न-शुद्धि (सात्विक-भोजन) और आत्म-शुद्धि (आत्मज्ञान की जिज्ञासा) एवं गुरु कृपा के कारण ही राजा परीक्षित भागवत कथा सुनने के अधिकारी हुए।

परीक्षित को सात दिनों में मृत्यु का भय था। सप्ताह के सात दिन होते हैं। यह सात वार हमारे जीवन का मार्गदर्शन करते हैं। यदि सकारात्मक रूप से देखें तो हमको इन सात वारों से सुन्दर शिक्षा मिलती है। राजा परीक्षित श्राप मिलते ही मरने की

तैयारी करने लगते हैं। इस बीच उन्हें व्यासजी उनकी मुक्ति के लिए श्रीमद भागवत कथा सुनाते हैं जिसमें व्यास जी उन्हें बताते हैं कि मृत्यु इस संसार का एकमात्र शाश्वत सत्य है और हर इंसान को इस स्थिति का वरण करने के लिए तैयार रहना चाहिए।

शुक्रताल में जिस स्थान पर शुक देव जी ने राजा परीक्षित को कथा सुनाई थी, वह अक्षय वट वृक्ष पांच हज़ार वर्ष बाद आज भी अपनी विशाल जटाओं को फैलाये उसी तरह खड़ा है. अद्‌भुत रूप से फैली यह जटाएं श्रद्धालु लोग पूजते हैं और स्वयं के मोक्ष की अपेक्षा में समय-समय पर आयोजित होने वाली भागवत कथाओं के आयोजन में सम्मिलित होते हैं। पूरा परिसर एक तीर्थ के रूप में जाना जाता है जहाँ अन्य प्राचीन मंदिर, धर्मशालायें, समागम स्थल स्थापित हैं. धर्मशालाओं का उपयोग सामान्यतः आयोजनों में रु कने के लिए किया जाता है।

कहते हैं कि प्राचीन समय में गंगा नदी का प्रवाह इस वट वृक्ष परिसर के निकट ही था परन्तु वर्तमान में इसने अपना रास्ता बदल लिया है और नदी वहां से दूर हो गई है। इस मंदिर में और वट वृक्ष तक जाने के लिए काफी खडी सीढ़ियां चढ़कर उपर जाना होता है। पीछे की ओर से भी एक रास्ता है, जिसके द्वारा आप वाहन से भी सीधे उपर ही मंदिर परिसर के निकट पहुँच सकते हैं। परन्तु सीमित स्थान की उपलब्धता के कारण इस रास्ते के उपयोग की सलाह नहीं दी जाती है।

कैसे पहुंचें :

दिल्ली के कश्मीरी गेट अन्तर्राज्यीय बस अड्डे से 120-किलोमीटर, और मेरठ तथा रुड़की से बराबर दूरी–57 किलोमीटर पर है यह विख्यात धार्मिक पर्यटन स्थल। यहां पर पश्चिम में शामली-कैराना और पानीपत से भी पहुंचा जा सकता है। शायद इतनी ही दूरी के आसपास– अर्थात साठ किलोमीटर में ही। अब मुजफ्फरनगर की अधिकांश बसें दिल्ली के आंनद विहार अन्तर्राज्यीय बस टर्मिनस से मिलती हैं। अगर आप बिजनौर में हैं तो वहां से पश्चिम दिशा में मात्र बीस किलोमीटर दूर ही है यह स्थल।

दिल्ली से रुड़की, हरिद्वार, सहारनपुर अथवा देहरादून जाते समय आपको मंसूरपुर से थोड़ा आगे मुजफ्फरनगर बाई पास से गुजरना होता है। इस रू ट पर मोरना-बिजनौर की सड़क पर चलते हुए कुल सत्ताइस किलोमीटर की यात्रा करके आप शुक्रताल पहुँच सकते हैं। अब शुक्रताल जाने के लिए आपको मुजफ्फरनगर शहर के बीच से भीड़ भरे और बेतरतीब ट्रैफिक के बीच से गुजरने की जरूरत नहीं है। अभी कुछ वर्षों से जो बाई पास रोड यातायात के लिए आरम्भ हुआ है, उससे अगर जायेंगे तो शहर की भीड़ से निश्चित रू प से आप बच सकते हैं। यह रास्ता सुगम भी है और थोडा कम भी।

पिछले वर्ष शुक्रताल जब जाना हुआ था तब गूगल मैप्स के लिए वह स्थल अनजान था। पर अब ऐसा नहीं है। अब आप गूगल मैप्स पर भरोसा करके शुक्रताल को अपने फोन या जी पी एस से भी लोकेट कर सकते है। शहर से शुक्रताल की दूरी गूगल मैप के अनुसार 27.6 किलोमीटर है, जिसे अनुमानतः 39 मिनट में पूरा किया जा सकता है। रास्ता यूँ भी सरल है और मुज़फ्फरनगर बाई पास से मात्र आधे-पौन घंटे में सुगमतापूर्वक आप शुक्रताल पहुँच सकते हैं। जगह-जगह सडक में गड्ढे अवश्य मिल सकते हैं, क्यूंकि यह न तो राष्ट्रीय राजमार्ग है, और न ही राज्य मार्ग की श्रेणी में आता है। शायद गूगल ने यह दूरी भी सड़क की औसत स्थिति को ध्यान में रख कर दी है।

अगर बस से आना हो तो शहर में भोपा बस स्टैंड से बिजनौर के लिए जाने वाली बस में सवारी की जा सकती है। यह बस आपको एक घंटे में शुक्रताल के बाहरी भाग में उतार देगी, और स्वयं बिजनौर के गंतव्य की ओर चली जायेगी। चूंकि यहाँ से मुख्य स्थल का रास्ता एक दाहिनी ओर से निकलने वाली दिशा में होगा, अतः आपको कुछ फर्लांग अवश्य पैदल चलना पडेगा। शुक्रताल आने के लिए उत्तर प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम की बस पर निर्भर न रहें, क्यूंकि यहाँ से बसें सीधे बिजनौर के लिए तो मिल सकती हैं पर उनका शुक्रताल पर स्टॉपेज नहीं है। आज भी मुजफ्फरनगर से शुक्रताल

जाने वाले रास्ते पर कोई विशेष ट्रैफिक नहीं मिलता। केवल मोरना और भोपा दो कस्बे रास्ते में पड़ते हैं, जो स्वयं भी दिन ढलते ही अपनी दुकानों को बंद करने लग जाते हैं। इसीलिए सूर्यास्त के बाद इस रास्ते से जाना सुरक्षित नहीं माना जाता। शुक्रताल में भी सूर्यास्त के बाद सन्नाटा छा जाता है। केवल मंदिर के पुजारी, उनके शिष्य तथा कुछ कार्यकर्त्ता ही वहां विचरण करते दिख सकते हैं।

शुक्रताल का रास्ता मुख्य सडक पर स्थापित एक सीमेंटेड गेट से आरम्भ होता है। कुछ मिट्टी के टीलों की श्रृंखला दिखनी भी शुरू हो जायेगी जो शुक्रताल में गंगा नदी के तट के आस पास तक फैली है। इसी रास्ते में कुछ आश्रम भी दिखते हैं, लेकिन इस सबके बावजूद किसी धार्मिक स्थल पर घूमते भगवा वस्त्र धारी साधू आपको यहां बहुतायत में नहीं दिखेंगे।

शुकदेव जी मंदिर परिसर से थोड़ी दूर पर ही एकादश रूद्र शिव मंदिर स्थित है जिसका निर्माण सन 1401 में हुआ था। अभी भी मंदिर परिसर में उक्त समय की मूर्तियाँ, भित्तिचित्र तथा संरचना विद्यमान है। कहते हैं कि लाला तुलसीराम जी के पूर्वज रोशनलाल जी जब एकादश रूद्र शिव मंदिर का निर्माण करा रहे थे तब अचानक ही गंगा मैया का प्रवाह मंदिर की ओर हो गया। उस समय भक्त रोशनलाल जी ने गंगा मैया की पूजा अर्चना की तथ उनसे अपना प्रवाह स्थल बदलने की प्रार्थना की। भक्त रोशनलाल जी की विनती सुनकर गंगा मैया ने अपना प्रवाह स्थल बदल लिया। रोशनलाल जी ने श्रद्धापूर्वक शिव मंदिर के साथ गंगा मंदिर का भी निर्माण कराया। उस समय ऐसा प्रतीत हुआ कि मानो गंगा मैया भगवान शिव से मिलने आई थी। शुक्रताल में विश्व की सबसे बड़ी हनुमान जी की मूर्ति स्थापित होने का भी रिकॉर्ड है जो चरण से मुकुट तक लगभग 65 फीट 10 इंच तथा सतह से 77 फीट है। सन 1987 में स्थापित की गई हनुमंधाम परिसर में स्थित इस मूर्ति की एक अन्य विशेषता यह है कि इसके भीतर कागज पर विभिन्न लिपियों में राम नाम लिखे 700 करोड़ भगवन्नाम समाहित हैं। इसमें प्रयुक्त कागज का कुल वजन 14 टन तथा क्षेत्रफल 10050 घन फुट है जिसे विशेष आवरण में स्थापित करके संजोया गया है। परिसर में इस मूर्ति के आस पास विश्व में पाई जाने वाली वानरों की विभिन्न प्रजातियों की भी मूर्तियाँ स्थापित की गयी हैं। यहाँ स्थित हनुमान जी के मंदिर में दूर-दूर से लोग दर्शनों को आते हैं। समय-समय पर प्रवचनों का भी आयोजन किया जाता है। प्रतिदिन रात को आरती की जाती है। उस दिन हम भी आरती में सम्मिलित हुए। निकट ही एक परिसर में 35 फीट की गणेश प्रतिमा की भी स्थापना की गई है। गीता प्रेस गोरखपुर का प्रकाशित धार्मिक साहित्य तथा स्मृति चिन्ह व प्रसाद की कुछ दुकानें शुकदेव मंदिर परिसर में स्थित हैं। हनुमंतधाम में भी ऐसी दुकानें मिल जायेंगी जहाँ से ईश्वर को भोग लगाया जा सकता है। इन दुकानों से यादगार के लिए कुछ स्मृति चिन्हों की खरीददारी भी की जा सकती है।

शुक्रताल में आपको चाय पीने को मिल सकती है। गर्मियों में सॉफ्ट ड्रिंक भी उपलब्ध हो सकते हैं, लेकिन कॉफी और कोई अच्छे किस्म का खाद्य पदार्थ तो आप भूल ही जाइए। वर्षों पहले उत्तर प्रदेश प्रयत्न निगम ने शुक्रताल में एक मोटल का निर्माण कराया था जहाँ रुकने और भोजन की स्तरीय व्यवस्था की गई थी, परन्तु पर्यटकों के अभाव तथा लगातार घाटे के कारण उसे बंद कर दिया गया। बेहतर हो कि आप कुछ खाद्य सामग्री साथ लेकर जाएँ या जाने से पहले भोजन कर लें। लौटते हुए भी मुजफ्फरनगर शहर में ही होटल, रेस्टोरेंट मिल सकेंगे, रास्ते में नहीं। हाँ, जगह जगह फल आपको अवश्य मिल जायेंगे। आइये, आप भी घूम आइये इस पौराणिक स्थल पर।

●

103, रीगेल रेजीडेंसी, आगरा एन्क्लेव,
कामायनी हास्पिटल के पीछे, सिकंदरा,
आगरा-282007 फोन : 9897741150,
ई मेलः rgsverma.home@gmail.com

स्त्री अस्मिता की दृष्टि से मृदुला गर्ग के 'चित्तकोबरा' उपन्यास का मूल्यांकन

संगीता कुमारी पासी

मृदुला गर्ग साठोत्तरी हिन्दी साहित्य की एक जागरूक, सशक्तएवं बहुचर्चित लेखिका हैं। हिन्दी साहित्य में अपने आप को प्रतिष्ठित करने हेतु उन्हें तमाम संघर्षों का सामना करना तो पड़ा ही, साथ ही साथ उन्हें आलोचना का पात्र भी बनना पड़ा। इसके बावजूद भी उन्होंने अपनी लेखनी को कतई विराम नहीं दिया और लगातार हिन्दी साहित्य के भण्डार को अपनी रचनाओं द्वारा समृद्ध करती रहीं हैं। वह एक स्वतंत्र मानसिकता रखने वाली रचनाकार है। उनका कहना है - 'अगर मुक्ति की जरूरत है तो व्यक्ति को खुद अपने व्यक्तित्व या पूर्वाग्रहों से है। अपनी पसंद का काम करने की आजादी, जीवन में अपने चुनाव को लेकर आगे बढ़ने की क्षमता आदि ही वास्तव में किसी व्यक्ति को मुक्त कर सकती है। आप किसका चुनाव करते हैं, क्या वही जो हमेशा चुना जाता रहा है या कुछ और? अगर आप अपनी संकल्प शक्ति का उपयोग करके जो हमेशा चुना जाता है, उससे अलग चुनाव करते हैं, तो मेरा ख्याल है, वहीं वास्तविक आजादी है। मैं सोचती हूँ इस तरह की आजादी पुरुष और स्त्री, दोनों के लिए समान रूप से जरूरी है। इसी तरह मेरे विचार से प्रेम को स्वीकार करने की क्षमता भी उतनी ही जरूरी है।'[1]

हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में मृदुला गर्ग की रचनाओं और रचना-शैली को लेकर काफी आलोचनाएँ हुई हैं परन्तु उन्होंने अपने प्रति हो रहे आलोचनाओं पर ध्यान दिये बगैर ही रचना के कार्य में निरन्तर सक्रिय रही हैं। इन्हीं आलोचनाओं के कारण ही उनकी लेखन शैली और अधिक निडर व उग्र होती गई। अंग्रेजी शब्द 'बोल्ड' के बजाय मृदुला गर्ग हिन्दी में उसका प्रयोग 'बेबाक' के रूप में करना अधिक पसन्द करती हैं। शांतिस्वरूप त्रिपाठी से हुई बातचीत में उन्होंने कहा है - 'साहित्य बेबाकी का पर्याय है। जो कहने से डरता है, वह साहित्य का सृजन नहीं करता। कौन कितना बड़ा साहित्यकार है, यह इसपर निर्भर करता है कि वह कितना कम डरता है या कितना अधिक निर्भीक है।'[2]

मृदुला गर्ग एक सफल उपन्यासकार भी हैं। उनके द्वारा लिखित छः उपन्यासों का प्रकाशन हो चुका है - 'उसके हिस्से की धूप' (1975), 'वंशज' (1976), 'चित्तकोबरा' (1979), 'अनित्य'(1980), 'मैं और मैं' (1984), और 'कठगुलाब' (1996)। निम्न उपन्यासों में उन्होंने अपनी बातों को 'बेबाकी' से व्यक्तकिया है। मृदुला गर्ग का बेबाक होना कुछ लोगों को पसन्द नहीं आया। अपने उपन्यासों के माध्यम से उन्होंने वर्तमान

नारी को उसके सहज मानवीय-रूप में भलीभांति चित्रित किया है। मृदुला गर्ग अपनी रचनाओं के माध्यम से नारी को परम्परा एवं रूढ़िवादी बंधन से मुक्तिदिलाकर स्वतंत्र मानवी जीवन जीने की प्रेरणा प्रदान करती हैं। अपने रचनाओं के विषय-वस्तु के चुनाव में उन्होंने सदा स्वतंत्रता का ही आश्रय लिया है। मृदुला गर्ग ने अपने उपन्यासों में नैतिकता-अनैतिकता के प्रश्नों को ताक पर रखकर स्त्री-पुरुष के संबंधों का प्रतिपादन किया है। उनके द्वारा रचित बहुचर्चित और विवादित ऊपन्यास 'चित्तकोबरा' ने हिन्दी साहित्य जगत में एक भूचाल-सा ला दिया था। इस भूचाल के दो कारण थे - एक यह कि ऊपन्यासकार का महिला होते हुए भी बेबाकी से सेक्स के बारे में लिखना और दूसरा यह कि संभोग-दृश्य का खुलेआम वर्णन करना। कमाल अहमद से हुए बातचीत में उन्होंने कहा है -'1979 में जब 'चित्तकोबरा' छपा तो सारा जंगल एकजुट होकर मुझपर टूट पड़ा, अपना हमला फिर कभी वापस नहीं लिया। यह उपन्यास बरदाश्त क्यों नहीं होता? इसलिए कि वह मर्द के अहं पर चोट करता है; खासकर शादीशुदा मर्द के अहं पर, जो अपना रोज का अनुभव हो, जिसकी सच्चाई हमारे अहसास का हिस्सा हो, उसे लिखा देखकर बरदाश्त वह कर सकता है, जिसका दिमाग खुला हो और दिल साफ।'[3]

मृदुला गर्ग बहुत ही धैर्यशील और साहसी स्त्री लेखिका हैं। एक नारी होने के नाते वह नारी मनोविज्ञान को भली-भांति जानती-समझती हैं तथा अपने अनुभव को आधार बनाकर साहित्य सृजन करती रही हैं। वे ऐसे पुरुषों पर करारा चोट करती हैं जो नारी को केवल भोग की सामग्री मानकर उसे गुलाम बनाकर रखते हैं। स्त्री भी मानव हैं, उसकी भी अपनी इच्छाएँ एवं आकांक्षाएँ होती हैं, उसे भी स्वतंत्र होकर जीने का हक है, अपनी इच्छानुसार चुनाव करने का पूरा अधिकार है। लेखिका ने अपने रचनाओं में नारी पात्रों के द्वारा उसके स्वयं के अस्तित्व के प्रश्न को उठाकर उसका समाधान भी प्रस्तुत करती हैं और साथ ही नारियों को बिना हिचकिचाहट के स्वतंत्र जीवन जीने की प्रेरणा देती हैं। अपनी इसी विचारधारा को उन्होंने 'चित्तकोबरा' उपन्यास में उद्घाटित किया है। प्रस्तुत आलेख का उद्देश्य मृदुला गर्ग के 'चित्तकोबरा' ऊपन्यास में स्त्री की स्वतंत्रता को चित्रित करते हुए उसकी अस्मिता संबंधी चेतना पर प्रकाश डालना है।

'चित्तकोबरा' उपन्यास नये जीवन-मूल्यों पर आधारित है। इसमें मृदुला गर्ग ने नारी के बदलते अनुभव संसार को उसकी देह-गाथा के साथ चित्रित किया है। समय के परिवर्तन के साथ-साथ नारी के मानसिकता में भी निरन्तर बदलाव हुआ है। नारी की इसी परिवर्तित मानसिकता को महिला रचनाकारों ने अपनी रचनाओं में उद्घाटित किया है। आज स्त्री केवल पुरुषों की बन्दिनी ही नहीं है, वह अपनी स्वतंत्र-व्यक्तित्व रखनेवाली मानवी हैं। किसी भी क्षेत्र में वह आज पुरुषों से कम नहीं हैं। 'चित्तकोबरा' उपन्यास एक ऐसी स्त्री के देह एवं मन की गाथा है, जो पुरुषों से बराबरी करती है। इसमें परम्परा एवं रूढ़िवादी मानसिकता के विरुद्ध मोर्चा खड़ा करके स्त्री को अनेक मर्यादाओं के बंधन से मुक्तिदिलाने का सफल प्रयास किया गया है। 'चित्तकोबरा' उपन्यास के द्वारा एक नवीन लेखनशैली की उद्भावना हुई है, जिसमें एक स्त्री निडर होकर बड़े ही साहस के साथ पुरुषों की बराबरी करती है तथा उस वर्जनाओं के स्तरों को उजागर करती हैं जिसका सहारा पुरुष लेते हैं।

आधुनिकताबोध के कारण 'चित्तकोबरा' में 'सेक्स' को भी महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है। प्रस्तुत उपन्यास की सम्पूर्ण कथा प्रेम, संभोग एवं उसकी परितृप्ति से संबंधित है। पति-पत्नी का रिश्ता हमारे समाज में शारीरिक संबंधों की सीमा से ही बंधी हुई है। पति-पत्नी से इतर व्यक्ति के साथ शारीरिक संबंध बनाना अनैतिकता की कोटि में आता है। परन्तु कई बार ऐसा भी देखा जाता है कि

पति-पत्नी दोनों शारीरिक स्तर पर एक-दूसरे के साथ जुड़े होने के बाद भी मानसिक एवं आन्तरिक स्तर पर अलग होते हैं। पति-पत्नी का ऐसा भोग कभी भी मानसिक सुख और संतुष्टि नहीं देता है। अतः पति का भावनाहीन संभोग स्त्री को बलात्कार के समान लगता है तथा उसके हृदय में गहरी चोट पहुँचाता है।

'चित्तकोबरा' उपन्यास की प्रमुख स्त्री पात्र एवं नायिका मनु महेश गोयल नाम के एक उद्योगपति की पत्नी है। उनके दो बच्चे हैं। मनु का पति महेश एक विवेकशील एवं परिपक्व इन्सान है। किन्तु वह अपनी पत्नी मनु से प्यार नहीं करता। मनु इस बात से भलाभाँति परिचित है कि उसका पति उससे प्रेम नहीं करता है, इसलिए वह कहती है - 'मैं हमेशा जानती रही हूँ... जब उससे विवाह किया था, तब भी जानती थी... महेश के लिए वह एक तयशुदा, सुनिश्चित विवाह से अधिक कुछ नहीं है। प्यार सिर्फ मेरी तरफ है, सिर्फ मेरी।'[4] मनु एक भारतीय स्त्री के समान अपने पति महेश से प्रेम करती है। वह अपने पति को वह सबकुछ देती है जिसकी चाहत प्रत्येक पति को अपनी पत्नी से होती है। सुन्दर, सुचारु गृहस्थ जीवन, स्वस्थ संतान, दोस्तों-अजीजों की खातिरदारी, सामाजिक मेल-मिलाप। मनु के मन में एक प्रश्न हमेशा हिलोरे लेता है - 'क्या महेश मुझे प्यार करता है? वैसे जैसे मैं करती हूँ।'[5] महेश को वैवाहिक बंधन में थोड़ा भी विश्वास नहीं है। वह विवाह को मात्र एक औपचारिकता मानता है। वह अपनी पत्नी मनु से कहता है - 'विवाह के बंधन में मेरा विश्वास नहीं है, मनु।'[6]

मनु जमशेदपुर में नाटक के रिहर्सल के दौरान स्काटिश रिचर्ड नामक एक व्यक्ति के सम्पर्क में आती है। वह एक चर्च का पादरी है तथा घुमक्कड़ स्वभाव का इन्सान है। पहली ही नजर में दोनों एक-दूसरे के प्रति आकर्षित होते हैं। रिचर्ड और मनु दोनों शादीशुदा हैं, दोनों के अपने बच्चे भी हैं, फिर भी दोनों का संबंध अशरीरी नहीं है। मनु रिचर्ड के साथ अन्तर्मन से इस प्रकार जुड़ चुकी है कि उससे दूर रहकर भी उसे सदैव अपने पास पाती है। मनु अपनी भावनाओं को महेश के समक्ष प्रकट तो करना चाहती है किन्तु असफल रहती है। वह मन ही मन बोल उठती है -"... मैं क्या करूँ महेश, मैं उसी को प्यार करती हूँ..... रिचर्ड को....उसे ...उसी को....वह यहाँ नहीं है.... मेरे पास उसके पास जाने का कोई उपाय नहीं है। फिर भी मैं उसी को प्यार करती हूँ.. उसी को।'[7] मनु शारीरिक रूप से तो महेश के साथ जुड़ी है किन्तु मानसिक रूप से रिचर्ड के साथ।

आज की आधुनिक नारी शारीरिक और मानसिक रूप से पूरी तरह स्वतंत्र है। अपने इच्छानुसार वह पुरुष एवं परिवेश का चुनाव करने में सक्षम है। इस विचारधारा का प्रत्यक्ष उदाहरण उक्त उपन्यास की स्त्री-पात्र मनु है। लेखिका मृदुला गर्ग ने अपनी लेखनी के माध्यम से नारी अधिकार को सार्वजनिक स्तर पर उजागर किया है। उपन्यासकार ने अपनी गिरफ्तारी के बाद भी उन पृष्ठों को 'चित्तकोबरा' उपन्यास से नहीं निकाला, जिनपर अश्लीलता का आरोप लगाया गया था। शांतिस्वरूप त्रिपाठी से उन पृष्ठों के विषय में उन्होंने कहा है - 'इन पन्नों में पति और पत्नी के बीच संभोग के दृश्य का चित्रण है जो कहीं भी उद्दीपक नहीं है। बल्कि कह सकते हैं कि उबाउ है, अत्यधिक गंभीर है और वैज्ञानिक दृष्टि से लिखा हुआ है। मेरा आशय था यह दिखलाना कि प्रेम के बिना सेक्स होने पर, चाहे वह पति-पत्नी के बीच ही क्यों न हो केवल उत्पीड़न होता है; आनन्द नहीं। इसे किसी भी दृष्टि से अश्लील नहीं कहा जा सकता है। और न किसी पाठक ने कहा जिसने पूरा उपन्यास पढ़ा।'[8] महेश के साथ मनु यौन-तृप्ति के लिए जुड़ी रहती है। वह महेश के साथ संभोग करते समय केवल शरीर बनकर रह जाती है। वह अपने अनुभव के बारे में कहती है - 'लम्बे अनुभव से मैं पहले जान जाती हूँ, किस रात महेश मुझे प्यार करेगा... तभी

से उस दिन के लिए मैं सिर्फ शरीर बन जाती हूँ।'[9]

मनु आधुनिक विचारों वाली स्वतंत्र नारी है। एक ओर तो वह पति के रूप में महेश से जुड़ी हुई है तो दूसरी ओर प्रेमी के रूप में रिचर्ड से। वह दोनों के साथ शारीरिक संबंध भी बनाती है। मनु अपने विषय में कहती है - 'मैं उन लोगों में से हूँ, जो क्षणों में जीते हैं। मुझे प्यार मिले और मिलता ही चला जाए- रोज-दर-रोज, तो क्या मैं उससे उब जाउँगी? मेरे जैसे आदमी के लिए न मिलना वही अहमियत रखता है जो मिलना-उससे कुछ ज्यादा।'[10] वह तन से ज्यादा मन को अधिक महत्त्व देती है, इसीलिए वह कहती है - "शरीर क्या है - माँस-हड्डी-त्वचा। रक्त-पानी-हवा। असली चीज तो मन है...।'[11] मनु अपने अस्तित्व की खोज में रिचर्ड के सम्पर्क में आती है जो घुमक्कड़ स्वभाव का इंसान है। रिचर्ड ज्यादा दिनों के लिए भारत नहीं आता है, इसके बावजूद भी मनु उसके प्रेमपाश में बंधी रहती है, उसके सदैव मौजूद होने का अहसास अपने मन में जगाती रहती है। वह अपनी आन्तरिक पीड़ा को व्यक्तकरती हुई कहती है - 'मैं समझ गई, यह ज्यादा दिन हिन्दुस्तान में नहीं रहेगा। मैं बहुत डर गई। चाहा, नजर उसके चेहरे से हटा लूँ, पर हटा न सकी, बल्कि उसकी आँखों के चुम्बक ने उन्हें खींचकर अपने से सटा लिया। मेरी आँखे डबडबा आई। फिर भी उसकी आँखों से मिली रहीं।'[12] मनु अपने पति के हाथों की कठपुतली बनकर नहीं जीना चाहती है। वह पाश्चात्य विचारों वाली स्त्री है। जो एक ही खूँटे से बंधे रहकर भी स्वतंत्र जीवन जीती है। वह घर की चार दिवारी के बीच रहकर बच्चे नहीं सम्भालना चाहती है। वह महेश से कहती है - 'क्या तुम दुनिया भर में घूमोगे और मैं दिल्ली बैठकर तुम्हारे बच्चे देखूँगी।'[13] महेश को अपनी पत्नी और रिचर्ड के प्रेम प्रसंग के बारे में सब कुछ पता चल जाता है किन्तु वह मनु के समक्ष विवश था। वह अपनी आत्मग्लानि प्रकट करते हुए मनु से कहता है - 'शायद कोई भी इन्सान एक ही समय में एक-दूसरे को प्यार नहीं करते, जब एक करता है तो दूसरा नहीं और जब दूसरा करता है... देरी मुझसे हुई, मनु।'[14] शोभा चौधरी से हुई बातचीत में मृदुला गर्ग कहती हैं-" 'चित्तकोबरा' में पति में कोई बुराई नहीं थी, बल्कि उसमें कुछ गुण ऐसे थे, जो प्रेमी में नहीं थे। प्रेमी भी यह मानता था। सवाल गुण-दोष का नहीं, मन-मस्तिष्क-देह की माँग और समरसता का था।'[15] यू तो मनु को शारीरिक सुख अपने पति से तो मिल जाता है परन्तु मानसिक सुख चैन तो उसे अपने प्रेमी रिचर्ड से ही प्राप्त होती है। यही कारण है कि मनु रिचर्ड से दूर रहकर भी हमेशा उसे अपने पास महसूस करती है।

'चित्तकोबरा' उपन्यास की मूल संवेदना प्रेम है। बदलते समय एवं अनुभव को केन्द्र करके इस उपन्यास की रचना की गई है। इसमें एक ऐसी नारी की गाथा है जो पुरुषों की बराबरी निडर होकर करती है। वह पाश्चात्य जीवन शैली में जीने वाली आधुनिक नारी है। जो अपने जीवन में आत्मिक सुख को अधिक महत्त्व देती है। मनु का मन बहुरंगी है, वह शारीरिक रूप से तो अपने पति जुड़ी रहती है किन्तु मानसिक शांति तो उसे अपने प्रेमी के पास जाकर ही प्राप्त होती है। अपने मन पसंद प्रेमी रिचर्ड को पाकर वह बहुत ही खुश होती है तथा उसके साथ तन-मन से एकाकार हो जाती है। महेश मनु को शारीरिक तृप्ति देता तो है किन्तु मानसिक तृप्ति देने में असफल होता है जिसकी पूर्ति रिचर्ड करता है। मनु पूर्ण रूप से स्वतंत्र होकर खुशी-खुशी रिचर्ड का चुनाव करती है तथा उन घटनाओं का सामना करती है तो उसके जीवन का महत्त्वपूर्ण हिस्सा है।

'चित्तकोबरा' उपन्यास 26 खण्डों में विभक्तहै, जो 26 दिनों में लिखा गया है। उपन्यासकार 'चित्तकोबरा' शब्द का अर्थ स्पष्ट करते हुए कहती है कि दुनिया एक पथिय नहीं है। 'चित्त' का अर्थ है 'मन' (मानस हृदय) और 'कोबरा' का अर्थ है 'कोबरा साँप' अर्थात् पूरे शब्द की व्याख्या 'चित्त का कोबरा' के रूप में होती है। जिस प्रकार कोबरा साँप

जंगल की हरीतिमा में मद्मस्त टहलते; सर्र-सर्र सरकते अनेक रंगों में चमकता, रोशनी-सा दमकता, अंधेरे-सा लुप्त होता दिखाता है, उसी प्रकार चित्त अथवा मन की चपल, चंचल, बहुरंगा, अपने पर चकित होता है। अनेक प्रकार के स्पंदनों का अहसास करता है। यहाँ स्पन्दनों का अहसास ही अस्मिता की चेतना है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. मृदुला गर्ग : मेरे साक्षात्कार, पृ. 19
2. वही, पृ. 41
3. वही, पृ. 49
4. मृदुला गर्ग - चित्तकोबरा, पृ. 88
5. वही, पृ. 88
6. वही, पृ. 89
7. वही, पृ. 92
8. मृदुला गर्ग : मेरे साक्षात्कार, पृ. 41
9. मृदुला गर्ग - चित्तकोबरा, पृ. 96
10. वही, पृ. 137
11. वही, पृ. 85
12. वही, पृ. 41
13. वही, पृ. 87
14. वही, पृ. 92
15. वही, पृ. 30

●

पीएच.डी. शोध-प्रज्ञा
हिन्दी विभाग, कॉटन विश्वविद्यालय,
पानबाजार, गुवाहाटी (असम)
दूरभाष : 8486132971
ई-मेल : sangeetapasi1991@gmail.com

तोते की अक्लमंदी

एक आदमी रोजाना सत्संग में जाता था। उसने अपने घर पर पिंजरे में एक तोता पाल रखा था। एक दिन तोते ने पूछा- 'मालिक, आप रोजाना नियम से कहां जाते हैं?' आदमी ने कहा- 'सत्संग में ज्ञान की बातें सुनने जाता हूं। वहां एक संत हैं, जो हमारी हर शंका का समाधान कर देते हैं। तोता बोला- 'मालिक कल आप जाएं, तो उनसे मेरी तरफ से एक बात पूछ लीजिएगा। उनसे पूछना है कि मुझे आजादी कब मिलेगी?' आदमी को तोते की बात सुनकर हंसी आयी फिर भी उसने कहा कि वह जरूर पूछ लेगा। अगले दिन आदमी सत्संग में गया और उसने संत जी से पूछा- 'महाराज मेरे घर में एक तोता है। वह पूछता है कि वह आजाद कब होगा?' संत जी ने आदमी की बात सुनी, तो तुरंत बेहोश होकर गिर पड़े। आदमी घबरा गया कि आखिर उसने ऐसा क्या पूछ लिया, जो संत जी बेहोश हो गये। आखिर थोड़ी देर बाद वह होश में आ गये और आदमी अपने घर चला गया। आदमी घर पहुंचा, तो तोते ने पूछा कि संतजी ने क्या कहा। आदमी बोला- 'अब कुछ नहीं कहा, उल्टा तेरे प्रश्न में न जाने ऐसा क्या था कि सुनते ही बेचारे बेहोश होकर गिर पड़े।' तोता बोला-'ठीक है मालिक मैं समझ गया। अगले दिन जब आदमी अपने काम पर जाने के लिए तैयार हुआ तो चलते समय तोते का हाल देखने के लिए पिंजरे के पास आया तभी अचानक तोते ने पिंजरे में चक्कर लगाया और बेहोश होकर गिर पड़ा। यह देख आदमी ने पिंजरा खोला और उसे बाहर निकाला। तोता बेसुध पड़ा था। वह घबरा गया और उसे होश में लाने के लिए पानी लाने भीतर की ओर भागा। उसके जाते ही तोता फुर्र से उड़ गया। शाम को जब आदमी सत्संग में पहुंचा तो संत ने पूछा-'कल आपने जिस तोते की बात की थी वो अब कहां है?' आदमी बोला- 'महाराज, वह तो बड़ा नाटकबाज निकला, आज सुबह उसने बेहोश होने का नाटक किया और जब मैंने उसे पिंजरे से निकाला तो फुर्र से उड़ गया।' संत जी बोले- 'यह तोता तुमसे ज्यादा समझदार निकला तुम रोज रोज सत्संग में आते हो, फिर भी कुछ नहीं सीखे, अभी भी सांसारिक माया-मोह में बंधे हो। और वह बिना सत्संग में आये ही मेरा इशारा समझ गया और आजाद हो गया।' ●

संस्कृति के सच्चे रखवाले

राकेश भारतीय

पूजा-अनुष्ठान, नृत्य-संगीत या साहित्य-कला के इलाकों में हो रहे कार्यकलापों को ही सामान्यतः 'संस्कृति' समझ लिया जाता है। इन कार्यकलापों को लेकर दुराग्रही खूंटा गाड़ते रहने की प्रवृत्तियों ने 'संस्कृति' 'इनकी' हो या 'उनकी', को बदनाम करते रहने की तमाम मिसालें भी इतिहास में दर्ज करवा रखी हैं। पर वास्तविकता यह है कि 'संस्कृति' अपने मूल स्वरूप में एक व्यापक और समावेशी शब्द है। जो भी 'संस्कृति' किसी इलाके या देश के नाम दर्ज होती है वह न एक दिन में आकार लेती है और न ही किसी एक व्यक्ति, तबके या समूह की ही गतिविधियों का परिणाम होती है। विभिन्न कालखण्डों में तमाम किस्म की चुनौतियों से निपटती हुई संस्कृति सदियों बाद भी उसी एक स्वरूप में कायम नहीं रहती, सकारात्मक बदलावों को अपनाते हुए तथा नकारात्मक बदलावों से जूझते हुए इसमें बहुत कुछ (भले किंचित परिवर्तित स्वरूप में) सदा बरकरार रहता है तो कुछ न कुछ एक नये आयाम में जुटता चलता है। और ; संस्कृति की लंबी चली और चलती जा रही इस यात्रा में इसके मूल पारिभाषिक तत्व बरकरार रखने तथा समय के अनुरूप सकारात्मक परिवर्तन संभव करते रहने की जिम्मेदारी उठाते रहने वाले लोगों को हम संस्कृति के रखवाले कह सकते हैं। इन रखवालों के बिना कोई भी संस्कृति 'कूप-जल' बनकर रह जायेगी, समय की कब्रगाह में सड़-खप जायेगी। जबकि समर्थ और सजग रखवाले संस्कृति को 'बहता नीर' की तरह गतिमान रखे रहते हैं, समय के साथ आते जा रहे तमाम किस्म के बदलावों की पृष्ठभूमि में प्रासंगिक बनाये रखते हैं। कौन हैं ये 'संस्कृति के रखवाले'? किस तरह काम करते हैं ये? कुछ उदाहरण ही शायद बात को स्पष्ट कर सकते हैं।

वेदों के जमाने से 'भारतीय संस्कृति' की प्रतीक-नगरी के रूप में काशी समादृत है। भारतीय संस्कृति के मूल तत्वों को रेखांकित करने वाला तथा दूषित करने में लगे नकारात्मक तत्वों को बेनकाब करने वाला काव्य रचने वाले अद्भुत संत कबीर इसी काशी नगरी में रचनाशील थे। काशी नगरी मुझे प्रिय रही है, विभिन्न कारणों से उधर की यात्रा करता रहता हूँ। ऐसी ही एक यात्रा के दौरान संस्कृति के एक बेमिसाल रखवाले से मुलाकात हुई थी। काशी के एक इलाके से दूसरे इलाके तक की यात्रा तिपहिया वाहन से करने के समापन पर वाहन से उतरते-उतरते मुझे आश्चर्य हुआ यह देखकर कि उस तिपहिया के ढांचे के लोहे वाले भाग से लेकर प्लास्टिक शीट वाले भाग में जगह-जगह

कबीर के दोहे अंकित हैं। प्रसन्न होकर चालक से इस पर बात शुरू नहीं की कि उन्होंने एक के बाद एक दोहे सुनाते हुए वर्तमान समय की विसंगतियों की पृष्ठभूमि में उनकी प्रासंगिकता का बखान शुरू कर दिया। कबीर के काल के छह सौ साल बाद उनके काव्य तमाम आध्यात्मिक-सामाजिक पहलुओं का ऐसा व्याख्याकार पाकर मुझे अहसास हुआ कि भारतीय संस्कृति का एक सच्चा रखवाला मुझे संयोग से ही मिल गया। एक ऐसा रखवाला जो, प्रचार-प्रसार के ट्रैप से कोसों दूर, इस भूमिका का निर्वाह दिन-प्रतिदिन सहज रूप से कर रहा है।

वेद भारतीय संस्कृति के ध्वजवाहक के रूप में पूरे विश्व में समादृत हैं, दुनिया के तमाम देशों के सांस्कृतिक जिज्ञासु इस थाती की तह तक पहुंच पाने को लालायित रहते हैं। उपनिषदों को, यानी वेदों के ज्ञानकान्ड को, मैक्समूलर जैसे विदेशी विद्वानों ने जब बाकी दुनिया के लिए विधिवत उद्घाटित किया तो हमारी संस्कृति की अद्भुत वैचारिक पहुंच ने सबको अभिभूत कर रख दिया। पर वेदों के कर्मकांड का भी महत्व है, सृष्टि के तत्वों के आनुष्ठनिक संयोजक सूत्रों के सहारे भौतिक सुख-सुविधाओं का संधान बड़े विशद रूप में वर्णित है इस कर्मकांड में। वेदों की ही कर्मकांडीय परम्परा आगे बढ़ाने के नाम पर अक्सर विकृत या आधे-अधूरे अनुष्ठानों को करवाने में लगे पोंगा पंडितों ने दरअसल कर्मकांड को पोंगापंथी का पर्याय ही बना दिया है। इस पृष्ठभूमि में, ऐसे उदाहरण बेहद सुखद आश्चर्य के रूप में देखे जायेंगे जहां वैदिक कर्मकांड के किसी पक्ष को मूल शुद्ध स्वरूप में बनाये रखने का प्रयास होता है। केरल के थ्रिस्सूर जिले के पंजल गांव में नम्बूदरी ब्राह्मणों के परिवारों की पहल से बनाये गये ट्रस्ट द्वारा वेदों द्वारा अनुशंसित सोमयज्ञ का आयोजन विश्वशांति और पर्यावरण की सुरक्षा के लिए किया जाता है। ऋग्वेद, सामवेद एवम् यजुर्वेद के चुने हुए मंत्रों का पाठ शुद्ध उच्चारण के साथ सोमैया जी नामक एक सेवानिवृत्त बैंक-अधिकारी के नेतृत्व में होता है तथा मुख्य यज्ञवेदी पक्षी के आकार में ठीक वेदों में अनुशंसित स्वरूप में बनाई जाती है। यही नहीं, यज्ञ में प्रयुक्त एक हजार इष्टिकाएं (ईंटें), सोमलता से निकाला गया रस, दो काष्ठ के टुकड़ों के रगड़ने से उपजी अग्नि; सब के सब पूरी सावधानी तथा मेहनत से वैदिक कर्मकांड द्वारा अनुशंसित स्वरूप में ही तैयार किये जाते हैं। उस यज्ञ से मिलता क्या है, यह प्रश्न दरकिनार; हमारी संस्कृति की एक नितांत गूढ़ और कष्टसाध्य प्रक्रिया को इतनी निष्ठा तथा मेहनत से इक्कीसवीं सदी में बनाये-बढ़ाये रखने का प्रयास ही संस्कृति के इन रखवालों की तारीफ करने के लिए पर्याप्त है।

किसी भी देश का साहित्य उसकी संस्कृति का एक सर्वमान्य एवम् महीन रूप से रेखांकित करने वाला संकेतक माना जाता है। और, साहित्य का प्रचार-प्रसार तथा संरक्षण एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक जिम्मेदारी होती है। अक्सर यह जिम्मेदारी तरह-तरह की अनियमितताओं और पक्षपात से ग्रसित संस्थानों-संघों के खाते में डाल दी जाती है। पर लोगों की सक्रिय भागीदारी के बिना साहित्यिक परम्परा कायम नहीं रह सकती। और, एक अनूठी ही भागीदारी का उद्धाहरण है कर्णाटक राज्य की राजधानी बंगलूरू के बासवानगुडी इलाके के पेशे से नापित बी. हरीश का। हरीश उस इलाके में 'माडर्न बाम्बे मेन्स पार्लर' नाम से केश-कर्तन की दुकान चलाने के साथ कन्नड़ साहित्य का अनूठे रूप से प्रचार-प्रसार भी करते हैं। न सिर्फ उस दुकान में कन्नड़ साहित्यकारों के चित्र और पुस्तकें रखे हुए हैं, ऊनके नाम के हेयरस्टाइल (यथा कुवेम्पु मशरूम कट, शिवराम कारंथ कैंची कट इत्यादि) भी मांग पर अंजाम दिये जाते हैं। कर्णाटक राज्योत्सव के दौरान हरीश हजारों की संख्या में कन्नड़ साहित्य की पुस्तकें वितरित करते हैं। अखिल भारतीय कन्नड़ साहित्य सम्मेलन से सम्मानित हरीश (जो कभी स्कूल नहीं गये) संस्कृति के वो स्वतः स्फूर्त रखवाले हैं जिनपर किसी भी देश की संस्कृति को अभिमान हो सकता है।

बुंदेलखंड इलाके की आल्हा- गायकी एक प्रसिद्ध लोकविधा और शौर्य के काव्यात्मक महिमामंडन की अमूल्य सांस्कृतिक धरोहर है। आल्हा गायकी के लिए विख्यात लल्लू वाजपेयी ने अपनी उम्र के आठवें दशक में इस गायकी से सात से लेकर चौदह वर्ष की लड़कियों को जोड़ा और अपनी इन शिष्याओं को 'अल्हैत' बनाने में जुट गये। वाजपेयी की इस पहल से शौर्य की प्रतीक मानी जाने वाली इस गायकी के प्रचार-प्रसार में एक नया और स्वागतयोग्य आयाम तो जुड़ा ही, इस सांस्कृतिक धरोहर के संरक्षण की संभावना में भी इजाफा हुआ। संस्कृति के ऐसे रखवाले ही इसे 'बहता नीर' की तरह बरकरार रखते हैं।

गौरक्षा भारतीय संस्कृति का, उत्तर वैदिक काल से ही, एक महत्वपूर्ण अंग रहा है। कुछ हद तक इसका कारण एक पशु के रूप में गाय का स्वभाव-प्रकृति है तो कुछ हद तक पारम्परिक जीवन में 'आर्थिक ईकाई' के रूप में उपयोगिता भी। पर हिन्दू ही गाय के संरक्षक हैं, इस दुराग्रह के चलते हाल में गोवंश की रक्षा के नाम पर मानव-हत्या जैसे जघन्य अपराध भी हुए हैं। इस पृष्ठभूमि में गोरक्षा के तीन बेहद शानदार उदाहरण द्रष्टव्य हैं। हैदराबाद के बरकस इलाके में पूर्णतया मुसलमानों द्वारा संचालित 'अरब गौरक्षणा समिति' न सिर्फ गाय का मांस खाने के खिलाफ आवाज उठाती है, कटने के लिए ले जाने वाली गायों का उद्धार भी करती है। उधर राजस्थान के जोधपुर में 'मारवाड़ मुस्लिम एजुकेशनल अन्ड वेल्फेयर सोसायटी' द्वारा संचालित 'आदर्श गौशाला' में बूढ़ी, जीर्ण, उपेक्षित और त्याग दी गई गायों को वरीयता दी जाती है। जोधपुर के बुझावड़ गांव में स्थित यह विशाल गौशाला दो सौ से ज्यादा गायों की शरणस्थली है और इन गायों को राज्य के पशुपालन विभाग ने बाकायदा 'टैग' भी कर रखा है। उत्तरप्रदेश के बुलंदशहर जिले के स्थाना तहसील के चंदियाना गांव के जुबैदुर्रहमान उर्फ बब्बन मियां का परिवार तो पचास साल से ज्यादा अवधि से गोसेवा की मिसाल कायम कर रहा है। 'मधुसूदन' नाम से दो एकड़ जमीन में स्थापित बब्बन मियां की गौशाला में पैंतीस गायें हैं। गौशालाकर्मी बीमार गायों की सेवा के लिए आसपास के गांव भी जाते रहते हैं। इस सेवा पर होने वाला लाखों रु पयों का खर्च बब्बन मियां अपनी जेब से उठाते हैं। इस्लाम मत के अनुयायियों द्वारा पेश किए गए गोरक्षा के ये तीन उदाहरण संस्कृति के किसी पक्ष को किसी एक तबके की 'बपौती' मानने के दुराग्रह तो खड़े हैं ही, संस्कृति के रखवालों के समाज के हर तबके में मौजूद रहने के आंख खोल देने वाले प्रमाण भी हैं।

संस्कृति के मूल समावेशी चरित्र में जब भेदभाव या छूआछूत जैसी विकृतियां 'संस्कृति' के एक अंग के रूप में चलाने का दुराग्रह होता है तो यह संस्कृति की जड़ पर ही प्रहार है। हमारे सांस्कृतिक इतिहास में ऐसी विकृतियों के कई उदाहरण दर्ज हैं जिनकी तीखी आलोचना स्वामी विवेकानंद जैसी विभूतियों ने भी की। ऐसी ही विकृतियां 'कूप-जल' जैसा ठहराव लाकर सांस्कृतिक सड़न पैदा करती हैं। उधर, ऐसी विकृत परिपाटियों को मिटाकर सांस्कृतिक सलिला में समाज के हर तबके की भागीदारी के लिए आगे आने वाले लोग संस्कृति के सच्चे रखवाले कहे जायेंगे। तीर्थनगरी प्रयाग में आयोजित होने वाला कुम्भ मेला लोगों की व्यापक भागीदारी वाला सांस्कृतिक आयोजन है जिसमें देश-विदेश के श्रद्धालु आते हैं। हाथों में मल की टोकरी उठाने वाली आजीविका पूर्व में अपनाये रही, राजस्थान के अलवर तथा टोंक जिलों की लगभग सौ महिलाओं को वर्ष 2013 में न सिर्फ कुंभस्नान करने दिया गया, बल्कि करीब एक सौ पचास पुजारियों-संतों ने धार्मिक अनुष्ठानों में उनकी भागीदारी भी संभव की। इन महिलाओं ने विभिन्न अखाड़ों का भ्रमण किया और बड़े हनुमान मंदिर में अर्चना भी की। सुलभ इंटरनेशनल संस्था की यह बेहद महत्वपूर्ण पहल संस्कृति के सच्चे स्वरूप को सही ढंग से संरक्षित करने वाली पहल मानी जायेगी।

जैसा कि इस लेख की की शुरु आत में ही कहा गया है, 'संस्कृति' एक व्यापक और समावेशी शब्द है। आबोहवा तथा मिट्टी की गुणवत्ता के अनुसार पीढ़ियों से अपनाये जाने वाले पर्यावरण हितैषी कृषि के तरीके, देश-इलाके की खास पहचान के प्रतीक उत्पादों को संरक्षित-संवर्धित करने के उपाय इत्यादि भी संस्कृति के ही अंतर्गत हैं। इस पृष्ठभूमि में तमिलनाडु के कृष्णागिरी जिले का एक उदाहरण द्रष्टव्य है। रासायनिक खाद की अंधाधुंध फसल लेकर नोट कमाने की पृष्ठभूमि में सिद्धैया नायडू जैसे आम के बगीचे के मालिकों ने 'आर्गेनिक' या पर्यावरण-हितैषी तरीकों से आम की फसल लेने की स्वागतयोग्य पहल की। उनके जैसे करीब पांच दर्जन किसान, शुरू में मिली कम उपज झेलकर भी, रासायनिक खाद के बजाय गोबर, गोमूत्र तथा गुड़ के टुकड़ों से बनाये गये एक 'खमीरी मिश्रण' का प्रयोग कर आम की फसल लेते रहे। आर्गेनिक तरीकों से ली गई आम की ऐसी फसल में, जाहिर है, फल का स्वाद और गुणवत्ता कहीं ज्यादा बेहतर होंगे। नतीजे में, अब ऐसे आमों को विदेशों में निर्यात करने के लिए पेशे से डाक्टर तथा आम के उत्पादक एस. रंगनाथन जैसे प्रमाणित निर्यातक आगे आ रहे हैं। निर्यात से आने वाली विदेशी मुद्रा का फायदा अपनी जगह, हमारी संस्कृति की खांटी देशी समझ से पर्यावरण की सुरक्षा सुनिश्चित करते हुए उपज लेने के तरीकों का विश्व में स्वीकारा जाना एक महत्वपूर्ण उपलब्धि होगी।

आज के वणिक समय में हम लगभग हर रोज ही कला, संगीत, अभिनय जैसे संस्कृति के सहज स्वीकार्य इलाकों की हस्तियों को अपने 'सेलिब्रिटी स्टेटस' को बाजारवाद की लहर में भुनाते हुए देख रहे हैं। ऐसे माहौल में यह असंभव सा ही कृत्य लगेगा कि ऐसी कोई हस्ती भारी विरोध या अपने जाति-धर्म के ठेकेदारों की आलोचना की परवाह किए बिना संस्कृति के मूल स्वरूप के संरक्षण-संवर्धन के लिए सार्वजनिक रूप से सामने आये और अपने कृत्य को बाकायदा व्याख्यायित करे के. जे. येसुदास तमाम भारतीय भाषाओं में गायन कर देश-विदेश के असंख्य प्रशंसकों को आनन्दित करते रहे हैं। शास्त्रीय पृष्ठभूमि की उनकी गायकी का अपना एक विशिष्ट मुकाम है। भजन गाने के लिए पहले भी उनका ईसाई कठमुल्लों ने विरोध किया है क्योंकि उन कठमुल्लों के हिसाब से ईसाई येसुदास को 'हिन्दू' भजन नहीं गाना चाहिए। अगस्त 2017 में येसुदास ने न सिर्फ उन कठमुल्लों को बल्कि बाकी देशवासियों को भी बता दिया कि किस 'सांस्कृतिक समझ' के तहत वे भारतवर्ष में रहते हैं, किस 'संस्कृति के संवर्धन में वे विश्वास रखते हैं। येसुदास केरल के प्रसिद्ध सबरीमला मंदिर में पहले भी कई बार जा चुके हैं, अगस्त 2017 में वे अपनी पत्नी प्रभा येसुदास के साथ गये। पहाडों पर स्थित अय्यप्पा प्रभु के मंदिर में पवित्र लोरी 'हरिवरासनम् गाने के बाद (जो मंदिर के कपाट बन्द होते समय गाई जाती है) येसुदास ने वक्तव्य दिया- 'सबरीमला ही एक ऐसा तीर्थस्थान है जहाँ हर भक्त समान है। प्रभु अय्यप्पा के स्थान पर धर्म, जाति और नस्ल कोई मायने नहीं रखते। यहां हर कोई 'स्वामी', 'अय्यप्पा' , 'मणिकांत' या 'मल्लिकापुरम्' (भक्तिन) है .....'। येसुदास प्रकारांतर से उसी भारतीय संस्कृति की रखवाली कर रहे हैं जो 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' जैसे समावेशी सूत्रों द्वारा हजारों वर्षों से व्याख्यायित है। वे उसी एकत्व पर जोर दे रहे हैं जो 'ईशावास्योपनिषद' में 'यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्येवानुपश्यति, सर्वभूतेषु चात्मानम् ततो न विजुगुप्सते' के तहत रेखांकित है।

हाल में संस्कृति को लेकर बड़े संकुचित ढंग से 'मेरी ही, तुम्हारी नहीं' जैसी सोच के तहत हुई तमाम तरह की नकारात्मक गतिविधियों के खिलाफ हिन्दुस्तान के इतिहास में एक से बढ़कर एक शानदार उदाहरण उन संस्कृति के रखवालों के खड़े हैं जो मूल रूप से इस जमीन के बाशिन्दे ही नहीं थे। तकनीकी रूप से 'विदेशी मूल' के पर भारतीय संस्कृति के बेमिसाल प्रतीक बन गए अमीर खुसरो,

मीर तक़ी 'मीर' ,मिर्जा ग़ालिब (क्रमशः तुर्की, हेजाज़ और समरकंद के बाशिंदों के वंशज) के उदाहरण तो सर्वविदित हैं , वर्तमान काल में एक शानदार उदाहरण अभिनेता टाम आल्टर का है जो 2017 में स्वर्गवासी हुए। टाम के बाबा अमेरिका से आकर लाहौर में बसे थे और 1947 के बाद उनके माता-पिता ने हिन्दुस्तान में रहने का विकल्प चुना। देहरादून और मसूरी में पले-बढ़े टाम उर्दू-हिन्दी के उच्चारण में बड़े से बड़े 'ख़ालिस देसी' को आईना दिखा सकते थे और उन्होंने पुणे के राष्ट्रीय फिल्म इन्स्टीट्यूट से उत्तीर्ण होने के बाद ढेर सारे नाटकों और फिल्मों में अपने अभिनय का जौहर दिखाया। इन पंक्तियों के लेखक ने भी उनके अभिनय से सजे कई नाटक और फिल्में देखे हैं और, विशेषकर नाटकों में, संवादों की (उच्चारण की तमाम बारीकियों के साथ) अदायगी का कायल हुआ है। भारतीय संस्कृति की समझ और उसके बेहतर मूल्यों के संरक्षण के मामले में टाम अद्भुत थे। उनके सामने हिन्दी-उर्दू जानने वाला कोई हिन्दुस्तानी अंग्रेजी बोलता तो वे हिन्दी-उर्दू में ही जवाब देते। दरअसल टाम जैसे 'संस्कृति के रखवाले' , बल्कि 'संस्कृति के राजदूत' पर कोई भी संस्कृति गर्व करेगी।

जन्म पर आधारित जाति व्यवस्था भारतीय समाज में भेदभाव और शोषण के पीछे सदियों से मौजूद रही है तथा हमारी संस्कृति पर एक बदनुमा धब्बा है। आम आदमी ही नहीं,तमाम बुद्धिजीवी भी जाति व्यवस्था को वर्ण व्यवस्था का ही पर्याय मानते हैं। पर सत्य यह है कि वर्ण व्यवस्था जन्म पर नहीं, स्वभाव एवम् गुण-कर्म पर आधारित थी और इनके आधार पर व्यक्ति का समाज में स्थान तय करती थी। भगवद्गीता में स्पष्ट कहा गया है– 'चातुर्वन्य मया सृष्टम् गुणकर्म विभागशः (श्रीकृष्ण कहते हैं कि मैंने चारों वर्णों की रचना गुण एवम् कर्म के आधार पर की है।'

अब जाति के ख़िलाफ़ गुण एवम् कर्म के आधार पर समाज में स्थान तय करने का एक उदाहरण देखें। त्रावणकोर देवस्थानम् बोर्ड द्वारा आयोजित पुजारियों इत्यादि की नियुक्ति के लिए परीक्षा उत्तीर्ण कर बाईस वर्ष की उम्र में यदुकृष्णन् पहले दलित हुए जो मुख्य पुजारी बने एक शिव मंदिर के। यह पड़ाव उन्होंने हासिल कैसे किया? संस्कृति के एक सच्चे रखवाले के. के. अनिरुद्ध की प्रेरणा और मदद से। एक छोटे बच्चे के रूप में यदुकृष्णन् को केरल के थ्रिस्सूर जिले के अपने गाँव के मंदिर की पूजा में रुचि होती थी, वे इस मंदिर की पूजा के लिए फूल एकत्रित करते थे। मंदिर के तंत्री (पुजारी) के. के. अनिरुद्धन ने यदुकृष्णन् को छह वर्ष की उम्र में ही सहायक के रूप में नियुक्त कर लिया और बारह वर्ष की उम्र में एर्णाकुलम जिले के रिहाइशी श्री गुरुदेव तंत्र विद्यापीठम् नामक धार्मिक विद्यालय में पढ़ने भेज दिया। बालक के गुण एवम् स्वभाव को अनिरु द्धन द्वारा पहचान कर, उसके गुण एवम् स्वभाव को पुष्पित-पल्लवित करने की व्यवस्था करने के बाद, उसी गुण-स्वभाव पर आधारित भूमिका यानी मंदिर के पुजारी बनने तक यदुकृष्णन् का सफर संभव करना; भारतीय संस्कृति के सच्चे स्वरूप को पूरी निष्ठा के साथ यदुकृष्णन् के बहाने बहाल करने के संकल्प का प्रशंसनीय उदाहरण है।

संस्कृति के सच्चे रखवालों के उपरोक्त कुछ उदाहरण समाचार पत्रों या अन्य संचार माध्यमों के द्वारा रेखांकित होकर सामने आये पर समाज में ऐसे रखवालों के हजारों अन्य उदाहरण मौजूद हैं। इन उदाहरणों में कई एक बातें समान नज़र आती हैं। सबसे पहले यह कि संस्कृति के सही रू प की रखवाली ये किसी स्वार्थ के वशीभूत होकर नहीं करते हैं, ऐसी रखवाली से इन्हें कोई धन-धान्य नहीं मिल जाता। वाराणसी के कबीर-काव्य के प्रशंसक तिपहिया चालक हों या बंगलूरू के नापित हरीश, अपनी समझ से संस्कृति के बेहतर स्वरूप के संरक्षण में निस्वार्थ रू प से लगे हुए हैं। बुलंदशहर के जुबैदुर्रहमान जैसे उदाहरण में तो संस्कृति के अपनी समझ से बेहतर एक पक्ष को संरक्षित करने में अपनी

जेब से अच्छी खासी धनराशि भी नियमित रूप से खर्च की जा रही है। के. जे. येसुदास अन्य 'प्रसिद्ध' लोगों की तरह मेरी-तेरी संस्कृति वाले खेल में चुपचाप बने रह सकते थे पर उन्होंने विरोध तथा धर्म-बाहर जैसे खतरों को जानते-बूझते हुए उठाकर भारतीय संस्कृति के समावेशी मूल स्वरूप को अपने कृत्य के माध्यम से बारम्बार रेखांकित किया। सिद्धैया नायडू ने तो व्यावसायिक खतरा उठाकर पारम्परिक कृषि-पद्धति को बढावा देना चाहा, अपनी निष्ठा के चलते बाद में इससे लाभान्वित भी हुए और अपने उद्धाहरण से ऐसे निष्ठावान किसानों की कड़ी दर कड़ी तैयार की। पुजारी अनिरु द्धन ने सदियों से संस्कृति में घोली जा रही एक बड़ी विकृति को ठीक करने की एक शानदार पहल ही नहीं की, समाज में ऐसे प्रयास की स्वीकृति को भी संभव कर दिखाया।

संस्कृति में विकृति घोलनेवाले, उस विकृत स्वरूप को अपने संकुचित स्वार्थों की पूर्ति के लिए प्रचारित-प्रसारित करने वाले सदियों से समाज में रहे हैं। पर विज्ञान-प्रौद्योगिकी की अभूतपूर्व प्रगति से संभव हुए तमाम त्वरित संचार एवं संपर्क माध्यमों ने उनके विकृतिकामी खेल को पहले से कहीं ज्यादा खतरनाक और क्रूर बना दिया है। इसके मुकाबले संस्कृति के सच्चे रखवाले अपने सीमित साधनों के बावजूद, और कहीं-कहीं व्यक्तिगतत खतरे उठाकर भी, मजबूती से खड़े हुए हैं। भले उन्हें कोई न जानता हो, भले उनके काम की कहीं वाहवाही न होती हो; वे भारतीय संस्कृति को सही रूप से समझकर सही ढंग से संरक्षित करने में लगे हुए हैं।

इस परिदृश्य में भर्तृहरि के शब्दों में 'बोद्धारो मत्सरग्रस्ताः ... 'यानी एक दूसरे के ईर्ष्याजनित खंडन-मंडन में सतत व्यस्त हम 'बुद्धिजीवी' क्या कर सकते हैं? कम से कम हम संस्कृति के ऐसे सच्चे रखवालों का साथ दे सकते हैं !

●

590, डी.डी. ए. फ्लैट्स
पाकेट-1, सेक्टर -22 द्वारका
नई दिल्ली-110077
मो. 09968334756

नहीं मांगता

नहीं मांगता, प्रभु, विपत्ति से, मुझे बचाओ, त्राण करो
विपदा में निर्भीक रहूँ मैं, इतना, हे भगवान, करो।

नहीं मांगता दुःख हटाओ, व्यथित हृदय का ताप मिटाओ
दुखों को मैं आप जीत लूँ, ऐसी शक्ति प्रदान करो।
विपदा में निर्भीक रहूँ मैं, इतना, हे भगवान, करो।

कोई जब न मदद को आये मेरी हिम्मत टूट न जाये।
जग जब धोखे पर धोखा दे और चोट पर चोट लगाये
अपने मन में हार न मानूं, ऐसा, नाथ, विधान करो।

तुम पर करने लगूँ न संशय, यह विनती स्वीकार करो।
विपदा में निर्भीक रहूँ मैं, इतना, हे भगवान, करो।

– रवीन्द्रनाथ ठाकुर

R. N. I. No. 22298/71 **ISSN. : 0975-6531**

वैचारिकी (Vaichariki) द्वैमासिक पत्रिका
भारतीय विद्या मन्दिर, 12/1, नेली सेनगुप्ता सरणी, कोलकाता-700 087
दूरभाष : (033) 71001614, ई-मेल : bvm.vaichariki@gmail.com

सदस्यता पत्रक

नाम :.....

कार्यालय का पता : .....

.....पिन .....

आवास का पता :.....

.....पिन : .....

दूरभाष : कार्यालय ..... निवास : .....

मोबाईल ..... ई-मेल :.....

1. **सदस्यता शुल्क चिह्नित ☑ करें**
   वार्षिक 300 रुपये ☐ त्रिवार्षिक 900 रुपये ☐ पंचवार्षिक 1500 रुपये ☐
2. पत्रिका-प्रेषण का निर्देश चिन्हित ☑ करें :- कार्यालय ☐ निवास ☐
3. प्रेषित सदस्यता शुल्क का विवरण :-
   नकद/चैक/ड्राफ्ट/धनादेश क्रमांक ..... दिनांक ..... बैंक / डाकघर.....
   आ. टी.जी.एस. या अन्य माध्यम .....
4. अन्य विवरण या निर्देश .....

दिनांक : ....
हस्ताक्षर

विशेष द्रष्टव्य :-

पत्रिका से संबंधित पुछताछ, शिकायत, पते में परिवर्तन आदि के लिए श्री शंकरलाल सोमानी (सिम्पलेक्स हाउस, 27 शेक्सपीयर सरणी, कोलकाता-700 017) से फोन नं. 033-71001614 या मोबाईल : + 91-9830559364 / 9330609541 पर सोमवार से शनिवार प्रातः 11.00 से सायं 5.30 बजे तक सम्पर्क करें अथवा ई-मेल :- **bvm.vaichariki@gmail.com** द्वारा सूचित करें। पत्रिका की सठीक पहुंच के लिए डाकघर का पिन कोड नम्बर जरूर लिखें।

सदस्यता राशि का चैक **Bharatiya Vidya Mandir** के नाम में लिखें। यह चैक स्टेट बैंक आफ इंडिया की किसी भी शाखा में हमारे करेंट एकाउंट संख्या **32030320176** में जमा कराया जा सकता है।

RTGS के माध्यम से भेजने के लिए निम्न विवरण नोट करें :- स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, न्यू मार्केट शाखा, 13, एस. एन. बनर्जी रोड, कोलकाता-700013, करेंट एकाउंट संख्या **32030320176**, **IFSC Code : SBI N0004662.**

जनसंचार माध्यमों में हिन्दी साहित्य के बदलते परिदृश्य

डॉ. भवानी सिंह

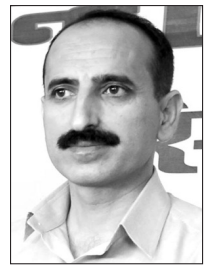

साहित्य का स्वरूप : समाज में रहकर ही साहित्यकार सुख-दुःख की परिस्थितियों और घटनाओं से जूझता है तथा युग का घटनाक्रम साहित्य को प्रभावित करता है। उन्हें देखता या सुनता है। वह सामान्यजन से अधिक संवेदनशील होता है। इसलिए प्रत्येक परिस्थिति या घटना को अधिक सूक्ष्मता से ग्रहण कर उसकी तह में घुस जाता है और फिर अपनी सूक्ष्म संवेदना को अपने साहित्य में मूर्त रूप देकर समाज के समक्ष प्रस्तुत करता है। रचनाकार अपनी लेखनी से अपनी प्रतिक्रिया को प्रकट कर आत्माभिव्यक्ति को समाज की अभिव्यक्ति देता है। उसकी सभी रचनाएं कलमबद्ध होकर समाज द्धकी रचनाएं बन जाती हैं। तुलसीदास जी के अनुसार, 'हित अनहित पशु पक्षिहुं जाना' अच्छे-बुरे का ज्ञान, हित एवं अहित का ज्ञान पशु-पक्षियों को भी होता है। फिर मनुष्य तो सर्वश्रेष्ठ जीव है।' अतः उसका समाज भी पशु-पक्षियों से श्रेष्ठ होगा। इसी समाज की सच्ची तस्वीर साहित्य प्रस्तुत करता रहा है। किसी विद्वान् ने कहा है कि 'संगीत, साहित्य कला विहीना, साक्षात् पशु पुच्छ बिना हीना।' अर्थात् संगीत, साहित्य और कला से विहीन मनुष्य उस पशु के समान है, जिसके पास न तो सींग हैं और न ही पूंछ। अतएव साहित्य के विषय में यही कहना उपयुक्त होगा - 'हितेन सहितम्, साहित्स्य भावः साहित्यम्।' साहित्य हमारी कौतूहल और जिज्ञासा वृत्तियों को शान्त करता है। ज्ञान की पिपासा को तृप्त करता है और मस्तिष्क की क्षुधापूर्ति करता है।

हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल, जो हमारी नई सोच और नए दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करता है, उसके लिए तत्कालीन विभिन्न राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक परिस्थितियों तो उत्तरदायीं थीं ही, साथ ही उन परिस्थितियों के ग्रहण के लिए वह अंग्रेजी सत्ता जिसने वास्तव में हमें प्रत्यक्षतः तथा परोक्षतः पुनर्जागरण के लिए उत्तेजित किया। इसमें हमारे साहित्यकारों ने विभिन्न परिस्थितियों से परिचित होकर अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई और उनसे प्रेरित हो साहित्य के क्षेत्र में आधुनिकता का आह्वान किया। इस काल खण्ड में नवचेतना के उदय से जीवन के प्रायः सभी क्षेत्रों में व्यापक परिवर्तन हुए। शिक्षित जनता की बदली हुई मनोवृत्ति ने साहित्यिक गतिविधियों को बहुत प्रभावित किया। फलतः इस युग में रचे गये साहित्य में पूर्ववर्ती रीतिकालीन काव्य की पुरानी प्रवृत्तियों को अपदस्त कर नये आयामों को प्रशस्त करने की चेष्टाएं परिलक्षित हुईं। नये पुराने के सम्मिश्रण में से अपेक्षित वस्तुओं को ग्रहण और अनपेक्षित वस्तुओं को त्यागकर

हिन्दी साहित्य को नवीन चेतना से अनुप्राणित करने का प्रयास सर्वप्रथम भारतेन्दु हरिशचन्द्र की कविताओं में दृष्टिगोचर हुआ। भारतेन्दु जी बहुमुखी प्रतिभा के रचनाकार थे। उन्होंने गद्य-पद्य में समान रूप से साहित्य की रचना की।

जनसंचार माध्यम का स्वरूप : कोई भी व्यक्ति, समूह या समाज बातचीत या संवाद के बिना नहीं रह सकता। मनुष्य अपने भाव-विचारों तथा अनुभवों को दूसरों के साथ बाँटना चाहता है और फिर ऊनसे लाभान्वित भी होना चाहता है। इसके लिए संचार के विभिन्न माध्यम अहम भूमिका निभाते हैं। प्राचीन समय में हमारे पास आधुनिक जनसंचार जैसे माध्यम उपलब्ध नहीं थे। फिर भी वहाँ के लोक जीवन में जनसंचार लोक-माध्यम से होता था, जिनमें पशु-पक्षी, संदेशवाहक, विभिन्न लोकवाद्यों की ध्वनि द्वारा सूचना का संप्रेषण किया जाता था। ग्रामीण जीवन में कलाओं के माध्यम से जनसंचार के विभिन्न रूप उभरकर सामने आए, जिनमें लोकगीत, लोकगाथाएँ, लोककथाएँ और लोक नाट्य प्रमुख थीं। परन्तु आज हमारे पास आधुनिक जनसंचार के विभिन्न माध्यम उपलब्ध हैं, जिनमें लिखित जनसंचार माध्यम-समाचार पत्र-पत्रिकाएँ, पोस्टर, पम्फलेट्स, होर्डिंग, श्रव्य माध्यम में रेडियो और टेपरिकार्डर, इत्यादि। दृश्य-श्रव्य माध्यम में सिनेमा और टेलिविजन आदि प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त अत्याधुनिक जनसंचार के सामाजिक माध्यमों में मोबाइल, फेसबुक, वंट्सऐप,ट्वीटर,यूट्यूब और इन्स्टाग्राम आदि लोकप्रिय माध्यम हैं, जो हमारे जीवन और राष्ट्रीय विकास का अभिन्न अंग हैं। सुबह से शाम तक इन जनसंचार माध्यमों से विभिन्न क्षेत्रों में जैसे साहित्य, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सिनेमा, खेलकूद आदि से सम्बन्धित हम सारी जानकारियाँ क्षण भर में प्राप्त कर रहे होते हैं। उदाहरणतया सुबह होते ही हमें अखबार की आवश्यकता होती है और फिर सारा दिन हम रेडियो, दूरदर्शन और सामाजिक माध्यम से समाचार प्राप्त करते रहते हैं। साथ-साथ ही रेडियो और टी.वी.सुबह से रात गए तक हमारे मनोरंजन के अतिरिक्त कई तरह की जानकारियों से हमें परिचित करा रहे होते हैं। परिणामस्वरूप जनसंचार के विभिन्न माध्यम ने व्यक्ति से लेकर समूह तक और गांव, देश से लेकर सारे विश्व को एक सूत्र में बाँध दिया है, जिसके कारण जनसंचार माध्यम आज राष्ट्रीय स्तर पर विचार, अर्थ, राजनीति, साहित्य और यहाँ तक कि संस्कृति को भी प्रभावित करने में भी सक्षम हो गए हैं।

जनसंचार माध्यम में हिन्दी साहित्य : संचार माध्यमों का विकास मानवीय सभ्यता के विकास से जुड़ा हुआ है। यूरोप में जो औद्योगिक क्रांति हुई उसके परिणामस्वरूप संचार माध्यमों की मांग में तेजी आई है। इसी औद्योगिक क्रान्ति ने संचार माध्यमों के विकास का मार्ग खोल दिया। कंप्यूटर के आगमन से तो इस दिशा में और भी तेजी आई है। वस्तुतः भाषा स्वयं संचार का माध्यम है और साहित्य तथा पत्रकारिता की अभिव्यक्ति में तो भाषा की अनिवार्यता अधिक है। विश्व में हिन्दी भाषा तथा हिन्दी साहित्य की विकास यात्रा जनसंचार के माध्यमों के साथ-साथ चल रही है। वैश्वीकरण के आधुनिक दौर में जनसंचार माध्यम ऐसा व्यवहार क्षेत्र है जिसमें हिन्दी साहित्य की विभिन्न विधाएँ देखी जा सकती हैं।

भारत में तो जनसंचार की अवधारणा अत्यन्त प्राचीन है। भारतीय पौराणिक साहित्य में इसके अगणित उद्धाहरण मिलते हैं। 'संजय' महाभारत में सम्भवतः दूरदर्शन की भान्ति ही किसी माध्यम से धृतराष्ट्र के समीप बैठकर उन्हें युद्ध के 'लाइव टेलिकास्ट' का वर्णन सुनाते हैं, जिसे हम सभी 'दिव्य-दृष्टि' का नाम देते हैं। पौराणिक साहित्य में ही आकाशवाणी की अनेक घटनाएँ मिलती हैं। कंस को देवकी पुत्र द्वारा अपनी हत्या की सम्भावना का समाचार आकाशवाणी से ही मिलता है और उस समय का आकाशवाणी निष्पक्ष एवं निर्भीक समाचारों को देने में आज से अधिक सम्भव रहा होगा, जो कि उपरोक्त उदाहरण से स्पष्ट है। ये घटनाएँ प्राचीन भारत में आधुनिक समाचार माध्यमों की तरह सूचना

संचारतंत्र की उपस्थिति का सन्देश देती हैं। किन्तु यह निर्विवाद है कि भारत में परम्परागत रूप से समूह संचार ही अपनाया जाता रहा है, जिसमें मेले, सभा, तीर्थाटन आदि के माध्यम से अलिखित भारतीय स्तर पर संचार सम्भव था। यह एक संचारतंत्र के रूप में भारत की अद्वितीय विशेषता रही है, जिसके कारण उत्तर भारत में 'रामचरित-मानस' अखिल भारतीय जनमानस तक पहुँच सका तथा सुधारात्मक आयाम लिए दक्षिणी भारत का 'भक्ति आन्दोलन' धुर उत्तर भारत की धरती तक पहुँच सका। यद्यपि लोकगीत, लोकगाथा, लोककथा और लोकनाट्य, के रूप में प्राचीन भारत में जनसंचार माध्यम उपस्थित थे। तथापि आधुनिक काल में पत्र-पत्रिकाओं के साथ नवीन प्रकार के जनसंचार का प्रचलन शुरु हुआ जो फिल्म, रेडियो, टेलिविजन से होकर आज के तीव्रगामी इंटरनेट सेवा तथा सामाजिक माध्यम तक जा पहुँचा है। इन आधुनिक जनसंचार माध्यमों ने युगान्तरकारी परिवर्तन स्थापित करते हुए सम्पूर्ण विश्व को गांव में बदल दिया है। अतः विभिन्न जनसंचार माध्यमों की हिन्दी भाषा एवं साहित्य के प्रचार और प्रसार में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका है जिसका वर्णन निम्न रूप से किया जा रहा हैः

<u>सिनेमा में हिन्दी साहित्य :</u> जनसंचार के दृश्य माध्यम सिनेमा ने आज समाज के हर वर्ग तक अपनी गहरी पहुंच बना दी है और हर वर्ग इससे आज पूरी तरह प्रभावित है। विशेषकर यदि हिन्दी सिनेमा का अवलोकन किया जाए तो कई तथ्य दिखाई देते हैं। मनोरंजन और ज्ञान विकसित करने का यह एक अनुपम साधन है। इसीलिए तो प्रसिद्ध हिन्दी साहित्यकार प्रेमचन्द जी ने एक बार इच्छा व्यक्त की थी कि वे अपनी कृतियों को सिनेमा के माध्यम से विशाल जनसमुदाय तक पहुंचाना चाहते हैं, ताकि असमानता, शोषण, छुआछूत एवं जात-पात के बंधन टूट सकें। यदि भारतीय भाषाओं की चर्चा करें तो आज हिन्दी में निर्मित सिनेमा किसी भी रूप में सभी भारतीय भाषाओं में आगे है।

डॉ. महेन्द्र मितल ने भारतीय चित्र नामक पुस्तक में लिखा है कि, 'सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और राजनैतिक सभी स्थितियों को आत्मसात करते हुए सिनेमा बीसवीं सदी में सशक्त रचनात्मक माध्यम बनकर उभरा है। कविता, कहानी, उपन्यास, संस्मरण, रिपोर्ताज, रेखाचित्र सभी को सिनेमा ने एक अभिव्यक्ति दी है। इसलिए आज हम सिनेमा 'मासस्केल' वाली कला कह सकते हैं जिसमें मानव के लिए शाश्वत मनोरंजन उसके जीवन का विश्लेषण, संस्कृति के परम्परित स्वर, शिक्षा-दीक्षा और साहित्य संवदनाओं की रम्य चित्रानुभूति समाविष्ट रहती है जिसे साहित्य एवं कला के विभिन्न पक्ष सिनेमा के रूप में अपने संगठित प्रयास से अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं। इस तरह कला व रचना के अनेक रूपों को एक ही धरातल पर एकत्र करने का महान् कार्य सिनेमा ने किया।'

हिन्दी साहित्य की विधाओं को पर्दे पर लाने में सिनेमा की भी महत्वपूर्ण भूमिका है। जिस प्रकार हिन्दी उपन्यासों के शुरू के दौर में देवकीनंदन खत्री के एय्यारी उपन्यासों 'चंद्रकांता' और 'चन्द्रकांता संतति' पढ़ने के लिए लोग हिन्दी सीखते थे। उसी प्रकार हिन्दी सिनेमा को समझने तथा देखने के लिए देश तथा विदेश में स्वतन्त्रता के बाद हिन्दी सीखने लगे। आज हिन्दी सिनेमा की एक अन्तर्राष्ट्रीय छवि बनी है। इसलिए प्रवासी भारतीय तथा अन्य विदेशी लोगों के लिए हिन्दी सिनेमा उनके मनोरंजन का साधन बना तथा हिन्दी-भाषी लोगों को जोड़ने का भी एक माध्यम बना। हिन्दी सिनेमा के गीतों की लोकप्रियता और व्यापकता नई तकनीक के सहारे पूरे विश्व में इतनी बढ़ गयी है कि कई प्रतिष्ठित साहित्यकार तथा कवि इनकी लोकप्रियता की ओर आकर्षित हो रहे हैं।

जिस प्रकार से अन्य विधाएं सिनेमा से प्रभावित हुई उसी प्रकार हिन्दी साहित्यिक कृतियों पर भी सिनेमा का विस्तृत प्रभाव देखा जा सकता है। स्वतन्त्रता से पूर्व भी बहुत से निर्माता-निर्देशकों ने

हिन्दी की साहित्यिक कृतियों को फिल्माने के प्रयास किए थे। दूरदर्शन जैसे छोटे दृश्य की साहित्यिक कृतियों को उसी रूप में फिल्माने के सफल प्रयोग भी हुए। 'माया दर्पण', 'तीसरी कसम' से लेकर 'उसकी रोटी' और शतरंज के खिलाड़ी' जैसी कहानियों पर सफल फिल्में बनी हैं। जिससे ज्ञात होता है कि सिनेमा में भी साहित्यिक सिनेमा जैसी धारा उभरी है, जिसमें हिन्दी कहानी का अपना महत्त्व है।

1913 में बनी फिल्म 'राजा हरिशचंद्र' से शुरु आत करने से लेकर आज तक भारतीय समाज में सिनेमा जनसंपर्क का सर्वाधिक प्रभावशाली एवं महत्त्वपूर्ण माध्यम बना हुआ है। मनोरंजन एवं सामाजिक वैचारिकता के बीच सामंजस्य स्थापित करने की इसकी क्षमता ने अन्य संचार माध्यमों को काफी पीछे छोड़ दिया है। फिर साहित्य की तरह यह भी विभिन्न कालखण्डों को प्रतिबिंबित करता है और इसका प्रभाव पीढ़ियों तक रहता है। कला एवं साहित्य की कोई भी विधा समाज की उन्हीं आशाओं, आकांक्षाओं, असंतोष एवं विडंबनाओं को व्यक्त करती हैं जिस समाज में स्वयं उसका विकास होता है और सिनेमा इसका अपवाद नहीं है। कुछ के लिए यह साहित्य या साहित्यिक संदेश का सदृश्य-श्रव्य-रूपांतर है। सरकार की दृष्टि में यह रोजगार सृजन एवं राजस्व का एक महत्त्वपूर्ण स्रोत है। विभिन्न लोगों की दृष्टि में साहित्य के स्वरूप में कहानी, ऊन्यास, कविता, गीत आदि में मनोरंजन के साथ-साथ समाज के आयने का वर्णन मिलता है। वहीं सिनेमा का स्वरूप सामान्यता मनोरंजन की कलात्मक विधा के रूप में समझा जाता है, जिसमें चलचित्रों के माध्यम से पट्टकथा, नृत्य, गीत, संगीत, हास्य-रोमांच, विरह-वेदना, संयोग-वियोग, करुणा आदि सबका समन्वित रूप आकर्षक ढंग से पर्दे पर प्रस्तुत किया जा सकता है जिसको देखकर समाज का प्रत्येक वर्ग मानवीय समाज की विभिन्न अच्छाईयों और बुराईयों के सकारात्मक और नकारात्मक रूपों से परिचित होता है। इस तथ्य से भी इनकार नहीं किया जा सकता है कि साहित्य से अधिक सिनेमा आज समाज पर प्रभाव डालने वाली एक महत्त्वपूर्ण विधा के रूप में भी स्थापित हो चुका है क्योंकि साहित्य लिखित रूप में है, उसकी पहुंच समाज के विभिन्न वर्गों तक आज भी नहीं है। जबकि संचार के इस युग में तकनीकी माध्यम से साहित्य को कोसों दूर तक पहुंचा दिया है जिसका प्रयोग शिक्षित जनसमुदाय ही कर सकता है। लेकिन फिल्मों के माध्यम से शिक्षित एवं अशिक्षित बच्चे एवं वृद्ध समाज की घटनाओं के जीवंत श्रव्य एवं दृश्य रूपों को देखकर आसानी से समझ सकते हैं। सिनेमा के प्रभाव का स्वरूप अच्छा हो या बुरा इससे सम्बद्ध लोगों की सतर्कता पर निर्भर करता है जिनमें फिल्म निर्माता, कलाकार, दर्शक एवं सरकार सभी शामिल हैं। आरम्भिक हिन्दी साहित्य से निर्मित फिल्में जैसे 'अछूत कन्या,' 'गोदान' 'आवारा' आदि में अन्य बातों के साथ-साथ सामाजिक दायित्व का भी अच्छी तरह से निर्वाह किया गया है। इन फिल्मों में भी लाभ कमाने या व्यवसाय की भावना निश्चित रूप से थी। इसके बावजूद भी इन फिल्मों ने सामाजिक आवश्यकताओं की अवहेलना नहीं की। इनमें राष्ट्रीयता साम्प्रदायिक सौहार्द, परस्पर सहयोग और सामाजिक सुदृढ़ता को प्रोत्साहित करने की दिशा में सराहनीय प्रयास किए।

साहित्य में जहां साहित्यकार विभिन्न पक्षों से प्रभावित होता हुआ साहित्यिक रचना करता है, वहीं सिनेमा निर्देशक उस साहित्यिक कृति को मूल रूप रखते हुए ऐसा रूप देता है कि जिस से वह जीवंत और प्राणवान हो उठती है और ऐसा हुआ है कि कई उपन्यासकारों की कृतियां साहित्यिक रूप में उतने लोगों तक नहीं पहुंच पायीं जितने कि सिनेमा के माध्यम से। सिनेमा ने उस कृति को एक नवीन आयाम दिया। अब प्रश्न उठ सकता है कि क्या सिनेमा का निर्देशक एक साहित्यकार की मूल भावना को अथवा उन संवेदनाओं, सूक्ष्म तत्वों को पकड़ सकता है जो किसी भी साहित्यिक कृति को स्थापित करती है। इस संदर्भ में कहा जा सकता है कि सिनेमा

का निर्देशक कृति के समय विशेष में रचनाकार के उन्न सृजनात्मक क्षणों को तो नहीं जी सकता लेकिन सतत अध्ययन और शोध के उम्रान्त प्राय: वह उन भावनाओं संवेदनाओं को उभार पाने में सफल होता है जिसकी कल्पना कई बार मूल साहित्यकार से भी नहीं की जा सकती है। बहुत बार ऐसा हुआ कि एक अच्छी साहित्यिक कृति ज्यादा लोगों तक नहीं पहुंच पायी लेकिन उसी साहित्यिक कृति को लोग सिनेमा के माध्यम से जान पाये।

भीष्म साहनी द्वारा लिखे गये उपन्यास 'तमस' भारत पाक की विभाजन की पृष्ठभूमि पर रचित यह उपन्यास उस बहशीच की कहानी कहता है जो विभाजन के दौरान हिन्दू-मुसलमानों के दिमाग में उभरा। उम्रन्यास पर प्रसिद्ध फिल्म निर्देशक गोविन्द निहलानी ने फिल्म बनायी। जिसे दूरदर्शन सहित अन्तर्राष्ट्रीय फिल्म महोत्सव दिल्ली में भी दिखाया गया। सारे देश में 'तमस' को लेकर एक अभूतपूर्व बहस का वातावरण देखने को मिला। यद्यपि फिल्मांकन से पूर्व भी तमस उपन्यास चर्चा में रहा। तथापि फिल्मांकन के प्रदर्शन के बाद संभवत: भारत के हर कोने में इस बारे में चर्चा होती देखी गयी। भाषा और वर्ग की सीमा लांघ कर फिल्मांकन के माध्यम से यह उम्रन्यास लोगों को भीतर तक कुरेद गया। वस्तुत: 'तमस' के जरिये साहित्य और सिनेमा के संबंधों को लेकर नयेपन की शुरुआत सामने आयी। विभिन्न फिल्म समीक्षकों ने इन संबंधों को अलग-अलग कोणों से देखा-परखा। लेकिन एक बात बहुत गहराई से उपस्थिति हुई कि एक साहित्यिक कृति किस तरह सिनेमा के माध्यम से अपने देश की परिस्थितियों व घटनाओं का एक प्रासंगिक आधार लिए वर्णन करती चलती है, जिन से आज भी भारतीय समाज जूझ रहा है।

सिनेमा के आरम्भिक वर्षों का अध्ययन करें तो ऐसी फिल्में सामने आयीं जो साहित्यिक कृतियों पर बनीं। प्रेमचन्द की प्रसिद्ध कथा 'दो बैलों की कथा' पर 'हीरा-मोती' नामक फिल्म बनी। सिनेमाई माध्यम से यह कहानी बहुत अच्छे रूप से भारतीय दर्शकों के सामने आयी। सहजता और स्वाभाविकता इस फिल्म के महत्त्वपूर्ण तत्व थे। अन्य कहानी 'शतरंज के खिलाड़ी' पर इसी नाम से सत्यजीत राय ने फिल्म बनायी जो ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में अनुपम फिल्म थी। संभवत: पहली बार किसी विख्यात भारतीय निर्देशक ने किसी विख्यात साहित्यकार की रचना पर फिल्म का निर्माण किया। इस फिल्म के माध्यम से भारत में सिनेमा और साहित्य की अंतरंगा में प्रौढ़ता आयी। यह एकमात्र भारतीय हिन्दी फिल्म थी जिसका विश्वव्यापी प्रदर्शन हुआ। फणीश्वर नाथ रेणु की कहानी 'तीसरी कसम' ने भारतीय लोकजीवन की अंतरंग हलचलों को अभिव्यक्ति दी। इसी से ये संभावनाएं तलाशी गयीं कि एक निर्देशक चाहे तो अपनी सूझबूझ से साहित्य और सिनेमा में सामंजस्य स्थापित कर सकता है। साहित्यिक विधा पर बनी यह फिल्म भारतीय जनमानस में खूब प्रसिद्ध और चर्चित हुई। पारम्परिक वातावरण और समस्याओं पर 'सारा आकाश' का निर्माण हुआ, जो राजेन्द्र यादव के इसी नाम पर आधारित उम्रन्यास पर बनी फिल्म थी। प्रसिद्ध भारतीय साहित्यकार मुंशी प्रेमचन्द के विख्यात उपन्यास 'गोदान' पर इसी नाम से 1963 में फिल्म बनीं तत्काल भारतीय सामाजिक जीवन को इसमें दर्शाने की पूरी कोशिश की गई। हिन्दी कहानीकार श्री कांत वर्मा ने उस फिल्म का मूल्यांकन करते हुए लिखा था की 'गोदान फिल्मीकरण वास्तव में प्रेमचंद को एक श्रद्धांजलि है। अगर गोदान का कभी संक्षिप्त संस्करण प्रकाशित हो, तो इससे अच्छा संपादन शायद ही नहीं हो सकता।' प्रेमचंद के अन्य उम्रन्यासों में 'रंगभूमि', 'गबन' आदि का भी फिल्मांकन हुआ। अन्य साहित्यिक कृतियों में भगवती चरण वर्मा के उपन्यास 'चित्रलेखा' पर 1965 में फिल्म बनी। हिन्दी भाषा के अतिरिक्त अन्य भारतीय भाषाओं का हिन्दी में अनुवाद हुआ और उससे सुंदर फिल्में बनी। रविन्द्र नाथ टैगोर के उम्रन्यासों का हिन्दी में फिल्मांकन हुआ। जिनमें 'नौका डूबी' 'काबुली

वाला' नामक उपन्यासों पर उसी नाम से फिल्में बनीं। बंगला, गुजराती, मराठी के कई प्रसिद्ध उपन्यासों का हिन्दी में अनुवाद हुआ और उन पर सफल फिल्में बनीं। बंगला भाषा में तो साहित्यिक सिनेमा को नये आयाम मिले। विश्वप्रसिद्ध सिनेमाकार सत्यजीत राय की विश्वप्रसिद्ध फिल्म 'पाथेर पांचाली' उपन्यास पर ही बनी थी। जिसने न केवल भारतीय बल्कि विश्व में सिनेमा और साहित्य के आंतरिक संबंधों पर नयी बहस को जन्म दिया बल्कि भारतीय सिनेमा के विकास में यह साहित्यिक फिल्म मील का पत्थर साबित हुई। सिनेमा में कुशल निर्देशक के माध्यम से मानवीय करुणा का चित्रण चाक्षुष बिम्बों के रूप में जिस तरह हमारे सामने आया वह अतुलनीय था। शरतचंद्र के उपन्यास 'देवदास', 'बड़ी दीदी', 'काशीनाथ', 'परिणीता' आदि हिन्दी भाषा में अनुदित हुए और इन्हीं नामों से इनका फिल्मांकन हुआ। धर्मवीर भारती के उपन्यास 'सूरज का सातवां घोड़ा' पर श्याम बेनेगल ने फिल्म बनायी।

आजकल सिनेमा में ऐसे लेखकों की भीड़ देखी जा सकती है जिनके लेखन का कोई उद्देश्य ही नहीं होता है। वस्तुतः इस प्रकार के साहित्य पर आधारित सिनेमा समाज को रचनात्मक संस्कारों से जोड़ने के बजाय उसे कुंठा से धरातल पर घसीट ले जाता है। ऐसा साहित्य, साहित्य नहीं बल्कि कामुकता का विज्ञापन है, कल्पित जासूसी का प्रचार है और सब बढ़कर पैसा बटोरने की एक कलाकारिता है। लेकिन अच्छे व गंभीर सिनेमा के निर्माण में आज गंभीर साहित्य के उपर गंभीर सिनेमा का निर्माण हो रहा है। जिससे हमारे परिवेश से ऊपजे दुःख-दर्द, बड़ी सहजता और महता लिये सामने आये हैं। भारत के सिनेमाकारों श्याम बेनेगल, गोविंद निहलानी, तपन सिन्हा, सुधीर मिश्र, केतन मेहता, वासु चटर्जी आदि ने भारत में सिनेमा की साहित्यिक परम्पराओं को एक आन्दोलन के रूप में खड़ा किया है।

साहित्य की एक प्रमुख विधा के रूप में मूलतः कहानी ने भी सिनेमा और साहित्य के सम्बन्धों को उत्तरोत्तर विकसित एवं पोषित किया है। उपन्यास की विविध घटनाओं को सिनेमा के माध्यम से सामने लाना संभवत? उतना मुश्किल न हो लेकिन एक विशेष समय, घटना या विविध छोटे-छोटे प्रसंगों को इस माध्यम से प्रस्तुत करना काफी कठिन कार्य हो जाता है। कहानी में निर्देशक विभिन्न प्रसंगों को लेते हुए समय को बांधता है, सूक्ष्म से सूक्ष्म भावनाओं उत्कंठाओं को अभिव्यक्ति प्रदान करता है। वस्तुत? एक कहानी का फिल्म में सही रूपान्तर ही उसे साहित्य की तरह ही कलासिक कृति बना देता है।

आधुनिक काल में सिनेमा का महत्त्व मानवीय समाज में कई रूपों में उद्घाटित हुआ है। समाज के प्रत्येक वर्ग बच्चों से लेकर वृद्धों तक इसका प्रभाव देखने को मिलता है। यह ऐसी दृश्यकला है जो सम्पूर्ण विश्व में जनसंचार के प्रमुख माध्यम के रूप में अपनाई जा चुकी है। सिनेमा में साहित्य को लेकर जो प्रयोग हुए हैं उनसे कई सम्भावनाएं सामने आई हैं। विशेषकर हिन्दी सिनेमा में साहित्यिक कृतियों पर जो फिल्में आधारित हैं उनमें ये तत्व प्रमुखता से देखे जा सकते हैं। सिनेमा की यह रचनात्मकता, सकारात्मकता और नकारात्मकता दोनों रूपों में निर्देशकों द्वारा अपनाई गयी है। नकारात्मक पक्ष में सिनेमा के उस पहलु को लिया जा सकता है जहां पैसा कमाने की प्रवृति को ही सामने रखा गया है। हिंसा, सैक्स और प्रेम का मिश्रण ऐसे सिनेमा में है और इसके बल पर जन सामान्य का ज्ञान उनकी ओर ऊन्मुख हुआ है। हिन्दी सिनेमा में यह वृत्ति ही अधिक घर कर रही है। सिनेमा की विकसित परम्परा को हम देखें तो ऐसे निर्देशक भी हैं जिन्होंने प्रारंभ में सिनेमा के माध्यम से समाज निर्माण में स्वस्थ परम्पराएं आरंभ की, लेकिन कालांतर में वह भी पैसे की दौड़ में गुम हो गये। जहां सिनेमा के सकारात्मक पक्ष का उद्देश्य एक अच्छे समाज का निर्माण, समाज के यथार्थ को सामने लाना है। वहां पर सत्यजीत राय, श्याम बेनेगल के.ए. अब्बास, सईद मिर्जा, गोविन्द निहलानी, शांताराम जैसे निर्देशक इस शृंखला

में हैं जिन्होंने सिनेमा के सकारात्मक पक्ष को पोषित और पल्लवित किया है। वर्तमान में ऐसी भी फिल्में आ रही हैं जो समाज की समस्याओं, शोषण और असमानता के विरु द्ध आवाज बुलन्द कर रही है। यही कारण है कि आज हिन्दी सिनेमा विभिन्न धरातलों में विकसित हो रहा है।

फिल्मों में कवि की भूमिका :

हिन्दी फिल्मों में हिन्दी गीतों की भूमिका भी सर्वोपरि है, जिनकी रचना में हिन्दी कवियों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। जिनमें प्रमुख हैं - पं. प्रदीप, नरेन्द्र शर्मा नेपाली, भरत व्यास, विपुल भाई पटेल, नीरज और दुष्यन्त आदि। इनमें से एक-दो कवियों को छोड़ सब पर फिल्मी मुहर लग गई थी, लेकिन इसके बावजूद फिल्मों में लिखे गए इनके गीत भी एक धरोहर है, जिन्हें किसी भी प्रकार से हम साहित्य में कम नहीं आँक सकते। प्रख्यात कवि प्रदीप ने हिन्दी फिल्मों के लिए कई प्रकार के गीतों की रचना की है जिनमें निम्नवत प्रमुख हैं -

1.'ऐ मेरे वतन के लोगों, जरा आंख में भर लो पानी, जो शहीद हुए हैं उनकी, ज़रा याद करो कुर्बानी' - लता मंगेशकर द्वारा गाए गए इस गीत ने 1962 में भारत और चीन के युद्ध के बाद लोगों की संवेदना पर मरहम लगाने और सैनिकों की पीड़ा को पूरे देश में अनुभव कराने का काम किया किया था।

2. देख तेरे संसार की हालत क्या हो गई भगवान कितना बदल गया इन्सान...

इस प्रकार जनसंचार का प्रमुख माध्यम सिनेमा में न जाने कितने ऐसे गीत होंगे जिन्हें हम एक सशक्त साहित्य कह सकते हैं। इसमें अन्तर सिर्फ इतना है कि इन्हें लिखने वाले साहित्यकार कम और फिल्मी गीतकार अधिक हैं, जिन्हें हम साहित्यकार की परिधि में लाने हेतु संकोच करते हैं। वरना ये गीत हिन्दी साहित्य की अमूल्य धरोहर है। इस प्रकार कई रचनाकार साहित्यिक पृष्ठभूमि से आए और फिर मील का पत्थर साबित हुए। कमलेश्वर का मानना है कि फिल्म का उदय एक व्यावसायिक माध्यम के रूप में हुआ। इसे यदि शुरु से साहित्यिक सहयोग मिल जाता तो इस माध्यम से कला संस्कार सम्पन्न हो जाती।

रेडियो प्रसारण में हिन्दी साहित्य :

जनसंचार के माध्यम में रेडियो की भूमिका हमेशा प्रमुख रही है। 'बहुजन हिताय और बहुजन सुखाय' के आदर्श को समर्पित रेडियो ने अपनी विकास यात्रा के कई वर्ष पूरे कर लिए हैं। श्रव्य माध्यम के क्षेत्र में रेडियो एक बहुत बड़ी उपलब्धि है जिसमें हिन्दी भाषा का वर्चस्व हमेशा से रहा है। जिसके प्रभाव से दूर-दराज के जन समुदाय तक संदेश को पहुँचाया जा सकता है। इसका सन्देश जिस स्टेशन से चलता है, उसे हजारों मील दूर बैठा हुआ व्यक्तिसुन सकता है, जहाँ आपातकालीन परिस्थितियों में जनसंचार के अन्य माध्यम ठप्प हो जाते हैं, वहाँ रेडियो सशक्तमाध्यम के रूप में अपनी अहम भूमिका निभाता है।

रेडियो प्रसारण ने हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं को अपने विभिन्न कार्यक्रमों के माध्यम से विश्व के कोने-कोने तक पहुँचा दिया है। एफ.एम. रेडियो इस दिशा में बहुत ही सराहनीय कार्य कर रहा है। हिन्दी भाषा में विभिन्न प्रकार की सूचना एवं जानकारियां एक सामान्य श्रोताओं को उपलब्ध हो रही है। सिर्फ ऑल इंडिया रेडियो एवं आकाशवाणी से हिन्दी भाषा में कार्यक्रम प्रस्तुत नहीं होते, अपितु विश्व के अन्य देशों के रेडियो से भी हिन्दी प्रसारण होते हैं, जिससे हिन्दी का विश्वव्यापी सफर आसान हुआ है।

टेलीविजन चैनल और दूरदर्शन पर हिन्दी साहित्य:

टेलीविजन पर प्रस्तुत विभिन्न कार्यक्रमों तथा विज्ञापनों के माध्यम से हिन्दी भाषा जन-जन तक पहुंच रही है। समाचार चैनलों की पृष्ठभूमि में हिन्दी के महत्व का किस्सा और भी अनोखा है। एक समय था जब हिन्दी चैनलों की पहुंच सम्पूर्ण भारत में नहीं थी, परन्तु सूचना प्रौद्योगिकी के उपकरणों ने इनको आज विश्वव्यापी बना दिया है। 9वें दशक के अन्तिम में जिस तरह टेलीविजन उद्योग में एक क्रान्ति आई,

उसी तरह भाषा की भूमिका भी महत्वपूर्ण बनी। विशेषकर हिन्दी भाषा की एक नई पहचान बनी और हिन्दी लिखने, पढ़ने व समझी जाने वाली भाषा से बाहर निकलकर सुनने, बोलने तथा देखने वाली भाषा बनी। इससे हिन्दी को एक प्रभावशाली अस्तित्व प्राप्त हुआ है। हिन्दी के प्रचार-प्रसार में डी.डी. न्यूज तथा इसको प्रसिद्ध करने में दूरदर्शन की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण रही है, क्योंकि दूरदर्शन चैनल भारतवासियों एवं हिन्दी भाषियों का सबसे लोकप्रिय है तथा जनसंचार का सर्वव्यापी एवं आकर्षक माध्यम है और आज इसके लगभग सौ से अधिक चैनल कार्य कर रहे हैं।

दूरदर्शन पर प्रसारित होने वाले विभिन्न कार्यक्रमों में क्षेत्रीय भाषा से लेकर राष्ट्रभाषा तथा गीत-संगीत, कवि सम्मेलन, साहित्य समीक्षा से हिन्दी ने अपने को फलने-फूलने तथा जनाश्रय प्राप्त करने में अहम भूमिका का निर्वाह किया है। दूरदर्शन पर 1960 में 'उगते हुए सवाल' शीर्षक से कमलेश्वर ने साहित्यक कार्यक्रम की शुरू आत की थी। वर्तमान दौर में दूरदर्शन अन्य जनसंचार माध्यम से कई कदम आगे है। इसकी पहुँच गाँव से लेकर शहर ही नहीं अपितु देश-विदेश तक है। हिन्दी साहित्य को वैश्वकरण के रूप में आगे लाने के लिए दूरदर्शन की एक विशेष भूमिका है, क्योंकि दूरदर्शन के समाचारों तथा विभिन्न प्रकार के क्षेत्रीय, राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय कार्यक्रमों ने हिन्दी को एक मजबूत आधार प्रदान किया है।

दूरदर्शन पर हिन्दी धारावाहिक :

हिन्दी साहित्य की प्रसिद्ध कहानियों एवं उपन्यासों पर आधारित धारावाहिकों ने दर्शकों में अपनी अलग जगह बनाई थीं। दर्पण के द्वारा न केवल प्रसिद्ध कहानियां प्रकाश में आईं बल्कि रचनाकारों के नाम भी दर्शकों में चर्चित हो गए। कहानियों के प्रभावशाली दृश्य-श्रव्य रूप ने दर्शकों के सामने चिन्तन के नए आयाम भी खोले। भारतीय विरांगनाओं पर आधारित प्रसिद्ध धारावाहिक 'तेरह पन्ने' ने दर्शकों को स्वगौरव की भावना से आपूरित कर दिया था। प्रसिद्ध रचनाकार रांगेय राघव की कृति 'कब तक पुकारुं', पंडित जवाहर लाल नेहरु की 'डिस्कवरी आफ इंडिया' पर आधारित 'भारत एक खोज', डॉ. राही मासूम रजा का 'नीम का पेड़', श्री लाल शुक्ल का 'राग दरबारी' और तिलिस्मी ऐयारी उपन्यास 'चन्द्रकान्ता सन्तति' की प्रस्तुति ने हिन्दी और अहिन्दी दर्शकों में साहित्य के प्रति आकर्षण बढ़ाया। देश-विभाजन पर केन्द्रित भीष्म साहनी का उपन्यास 'तमस' और 'कहां गए वो लोग' जैसे धारावाहिकों ने न केवल पूर्व भारत का परिचय दिया बल्कि स्वतन्त्रता के बाद जन्मी पीढ़ी को आत्मावलोकन कराते हुए राष्ट्रभक्तिकी भावना से भी परिपूर्ण किया। कथासागर और खजाना जैसे धारावाहिकों ने देशी व विदेशी प्रसिद्ध साहित्य को दर्शकों के समक्ष दृश्य-श्रव्य रूप में प्रस्तुत किया। 'ये जो जिन्दगी' ने जीवन के तनाव को हल्के-फुलके ढंग से सुलझाते हुए जीवन को हंसी-खुशी के साथ जीने का सन्देश दिया। करम चन्द और ब्योमकेश बख्शी ने जासूसी धारावाहिकों का मार्ग प्रशस्त किया। अदालत, बैरिस्टर विनोद, पुलिस फाइलों से आदि ने कानूनी विषय को मनोरंजन के रंग से भर दिया। कानूनी दांव-पेचों ने संवादों के द्वारा दर्शकों में जिज्ञासा एवं ऊत्कंठा जगाई। किशोर मन की परतें खोलना अमोल पालेकर का धारावाहिक 'कच्ची धूप' ने सर्वप्रथम किशोरों की समस्याओं को उठाया। दादा-दादी की कहानी, बीबी नीतियों वाली, विक्रम और बेताल, देखो मगर प्यार से, तितलियों आदि धारावाहिकों ने बाल मन को लम्बे समय तक बाँधे रखा।

धर्म एवं आध्यात्म से जुड़ी पुस्तकें पहले विद्वान पुरोहितों, वृद्ध एवं दुःख से सन्तप्त लोगों तक ही सीमित थीं। धार्मिक क्रियाकलाप एवं कथाएँ बहुधा उपहास करने एवं मिथकीय चरित्रों का विदूषकीय प्रयोग करने के काम आते। किन्तु रामानन्द सागर ने 'रामायण' का निर्माण करके समाज कल्याण का वही कार्य किया जो वाल्मीकि के बाद तुलसी ने किया था। तुलसी ने रामकथा को संस्कृत से मुक्त

करके आम आदमी की भाषा अवधी में ढाला था और रामानन्द सागर ने उसे धारावाहिक में ढालकर घर-घर तक पहुँचा दिया। इसी प्रकार 'कृष्णावतार' और 'महाभारत' ने भी हिन्दू जनमानस की सीमा को लाँघकर जन-जन तक धर्म का मर्म पहुँचाया।

इंटरनेट पर हिन्दी साहित्य :

आधुनिक संचार माध्यमों में इंटरनेट एक ऐसा नेटवर्क है, जो विष्व स्तर पर लाखों कंप्यूटरों को परस्पर जोड़ता है और व्यवसाय, शैक्षणिक संस्था, मनोरंजन जगत, साहित्यिक क्षेत्र, समाचार, ज्ञान-विज्ञान, विभिन्न प्रकार की जानकारी, घटना-दुर्घटना, आम जनसमुदाय, गैर-सरकारी तथा सरकारी संगठनों का विश्वव्यापी संप्रेषण एवं संचार की मुख्य आधार भाषा है। इंटरनेट पर कई वेबसाइटें हिन्दी साहित्य से सम्बन्धित हैं। इंटरनेट और कंप्यूटर विशेषज्ञों के प्रयास से ही देवनागरी लिपि की सामर्थ्य बढ़ी है। इंटरनेट और वेबसाइट पर हिन्दी भाषा एवं साहित्य का प्रचार व प्रसार तथा जनसमुदाय से जुड़े विभिन्न विषय की जानकारी की उपलब्धता से विश्व पटल पर हिन्दी की विभिन्न विधाएं अपनी पहचान बना सकी है। आज इंटरनेट पर हिन्दी भाषा एवं हिन्दी साहित्य से सम्बद्ध वेब साइटें उपलब्ध हैं, जिनमें विविध स्तम्भ लेख, साहित्यिक पुस्तकें और रचनाओं की समीक्षा, कहानी, कविता, गीत, गजल पाठकों के लिए मौजूद हैं। गोष्ठियां, कवि सम्मेलन से सम्बन्धित अपडेट होती हुईं हमें अपनों से जोड़ती हैं। इनमें से कुछ वेबसाइटें ऐसी हैं जिनमें हिन्दी साहित्य की विभिन्न विधाओं की गतिविधियों को पढ़ा जा सकता है, जिनमें प्रमुख निम्नवत् हैं -

1. www.sahityakunj.com साहित्यकुंज एक वेब साहित्यिक पत्रिका है, जिसमें निरन्तर कई वरिष्ठ एवं युवा रचनाकरों द्वारा हिन्दी साहित्य का सृजन हो रहा है। यह हिन्दी की बहुत बड़ी वेब पत्रिका है, जिससे लाखों लोग जुड़े हुए हैं। इस साइट में कविता, कहानी, लोक कथा, लेख-आलेख, हास्य-व्यंग्य, महाकाव्य, अनुदित साहित्य, साहित्यिक चर्चा, समाचार, बालसाहित्य, पुस्तक समीक्षा आदि विधाओं पर ज्ञानवर्धक जानकारियां उपलब्ध हैं।

2. www.sarijangatha.com सृजनगाथा साहित्य, संस्कृति व भाषा अन्तर्राष्ट्रीय मंच है, जिसमें बड़े-बड़े साहित्यकार साहित्य सृजन में जुटे हुए हैं। इस साइट को पढ़ने वाले भी लाखों साहित्य प्रेमी हैं। इसमें कविता, कहानी, लघुकथा, पुस्तकायन, माह का कवि, छन्द, ललित निबन्ध, संस्मरण तथा कवि संगोष्ठी आदि की जानकारी प्रमुख हैं।

3. www.anubhuti-hindi.org अनुभूति में हिन्दी कविताओं का कन्त कलेवर, काव्य संगम, गीत, हास्य व्यंग्य, गौरव ग्रन्थ, दोहे, क्षणिकाएं, दिशान्तर आदि से सम्बन्धित जानकारियाँ उपलब्ध हैं।

4. www.abhiviakti.in - अभिव्यक्ति में साहित्य का सरु चिपूर्ण साप्ताहिक, उपन्यास, उपहार, कहानियां, कविताएं, गौरव गाथा, रचना प्रसंग, प्रकृति-पर्यटन, साहित्य संगम, संस्मरण, साहित्य समाचार, साहित्यिक निबन्ध, हास्य-व्यंग्य आदि विधाओं पर रचनात्मक साहित्य देश-विदेश के हिन्दी पाठकों के लिए प्रस्तुत है।

5. www.bharatdarshan.net - भारत दर्शन में न्यूजीलैंड में बसे भारतीयों ने हिन्दी साहित्य, कविताएं, लघु कथाएं, बाल साहित्य, कहानी, विभिन्न काव्य, नवगीत की पाठशाला आदि प्रस्तुत की हैं।

निष्कर्ष :

आज हिन्दी का समाज तथा व्यवसाय पूरे विश्व में फैला हुआ है। संसार के एक कोने से दूसरे कोने तक हिन्दी भाषा और हिन्दी साहित्य के प्रचार और प्रसार में जनसंचार माध्यमों की अहम भूमिका है। इस समय संचार का ऐसा कोई माध्यम नहीं है जिस पर हिन्दी साहित्य का प्रभाव न हो। निष्कर्षतः हम यह कह सकते हैं कि संचार के सभी माध्यमों में हिन्दी की भूमिका महत्वपूर्ण है। भारत के विभिन्न क्षेत्रों में ही नहीं बल्कि विदेशों में भी कवि सम्मेलनों और हिन्दी साहित्य में अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठी और विश्व हिन्दी सम्मेलनों का आयोजन भी निरन्तर हो रहा है,

जिसको प्रचारित और प्रसारित करने में आधुनिक जनसंचार माध्यमों की अहम भूमिका है। जनसंचार माध्यम में आज के दौर में हिन्दी का व्यापक प्रयोग हो रहा है। भले ही यह हिन्दी शुद्ध न हो, लेकिन हिन्दी की एक नई शैली विकसित हो रही है, जिसमें आज का युवा रचनाकार हिन्दी साहित्य की विभन्न विधाओं में निरन्तर सृजन करता जा रहा है, जो शायद आज के वैश्वीकरण के दौर में हमारी जरूरत बन गई है। लेकिन हमें इस बात से भी सचेत होने की आवश्यकता है कि संचार माध्यमों की अति उदारता के चलते हम हिन्दी भाषा तथा साहित्य के वास्तविक स्वरूप को न खो दें, क्योंकि विभिन्न संचार माध्यमों में हिन्दी के अलग-अलग रूप प्रयुक्त होते हैं। रेडियो श्रव्य माध्यम है। अतः इसकी भाषा केवल सुनी जा सकती है। इसलिए यह अन्य माध्यम, विशेषकर दृश्य माध्यम से भिन्न है। समाचार-पत्र और पत्रिकाओं की भाषा काफी हद तक परिष्कृत होती है।

परिणामस्वरूप वैश्वीकरण के प्रभाव ने संसार की सीमा को तोड़ दिया है। इसको तोड़ने में संचार के प्रमुख माध्यम तथा जनसंचार क्रान्ति के औजार कंप्यूटर, इंटरनेट, रेडियो, टेलीविजन, वेबसाइट, टेलीफोन, मोबाइल फोन, ई-मेल तथा सामाजिक माध्यमों में मोबाइल, फेसबुक, वंट्सऐप, ट्वीटर, यूट्यूब और इन्स्टाग्राम आदि ने प्रमुख भूमिका निभाई है। हालांकि आरम्भ में इन पर अंग्रेजी भाषा का ही अधिकार था। लेकिन धीरे-धीरे हिन्दी ने इसका अधिकार समाप्त कर दिया है। आज भारत में ही नहीं अपितु विदेशों में भी हिन्दी साहित्य में रुचि पैदा हो रही है, विशेषकर हिन्दी फिल्मों ने पूरे विश्व में अपना परचम लहरा दिया है। यह हिन्दी साहित्य ही है जिसने अपनी भाषा शैली कथावस्तु से समाज को जागरुक करने का काम किया है और इसको विश्व के कोने-कोने तक पहुँचाने की भूमिका जनसंचार माध्यमों ने बखूबी निभाई है। आज हमारे पास आधुनिक जनसंचार के विभिन्न माध्यम उपलब्ध हैं। यदि हम गुणवत्तापूर्ण तथा सामाजिक सरोकार से युक्त और समाज में पनप रही कुरीतियों से सम्बन्धित साहित्य का सृजन करेंगे तो वह तुरन्त करोड़ों लोगों तक पहुँच जाएगा। लेकिन कुछ रचनाकार साहित्य सृजन में उपभोक्तावादी संस्कृति की ओर मोड़ रहे हैं, जो पाठकों को ग्लैमरस तथा तथा वासना की ओर ले जा रहा है और जिसमें इन जनसंचार माध्यमों की भूमिका भी लगातार बढ़ती जा रही है। अतः इस ओर आज के साहित्यकारों, रचनाकारों और जनसंचार के माध्यमों का संचालन करने वाले विद्वानों को गौर करना भी अत्यावश्क है ताकि समाज को उपभोक्तावादी संस्कृति से काफी हद तक बचाया जा सके।

सहायक पुस्तकें :

1. अवतार अग्निहोत्री, आधुनिक हिन्दी सिनेमा का समाजिक व राजनीतिक अध्ययन।
2. चंद्रकांत सरदाना-कृ.शि. मेहता, जनसंचार आज और कल।
3. जवरीमल्ल पारख, हिन्दी सिनेमा का समाजशास्त्र।
4. जे दुबे, भारतीय फिल्म और समाज।
5. बलराम अग्रवाल (संपादक) प्रेमचन्द की सर्वश्रेष्ठ कहानियां।
6. महेन्द्र मित्तल, भारतीय चलचित्र।
7. रामधारी सिंह दिनकर, साहित्य और समाज।
8. रीश कुमार, सिनेमा और साहित्य।
9. विवेक दुबे, साहित्य, समाज और सिनेमा
10. सुदेश, साहित्य के विविध आयाम।

सहायक व्याख्यान

1. डॉ. अमर नाथ अमर, साहित्य और समाज के उत्थान में मीडिया की भूमिका (विशेष संदर्भ : दूरदर्शन द्वारा प्रसारित कार्यक्रम)।
2. अशोक श्रीवास्तव, मीडिया और बाज़ार।
3. प्रो. करुणाशंकर, बदलता भारतीय परिदृश्य : साहित्य, संस्कृति, संचार और मनोविज्ञ।
4. तेजेन्द्र शर्मा, हिंदी सिनेमा के गीतों में साहित्य ।
5. संजीव झा, साहित्य और सिनेमा ।

●

वरिष्ठ सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला-5
मोबाइलः 09418088848
ईमेल: bhawanisinghhpu@gmail.com

हस्तलिखित साहित्यिक पत्रों का महत्व

डॉ. अमरसिंह वधन

हस्तलिखित 'पत्र' कागज के सीने पर अंकित मानव हृदय के भावों, संवेदनाओं एवं विचारों का दस्तावेज़ है। इसमें पत्र लेखक एवं पत्र प्राप्तकर्ता का मनोवैज्ञानिक धरातल पर मिलन होता है, भले ही दोनों के बीच कितनी भी दूरी क्यों न हो। पत्र पढ़ते समय लेखक के संपूर्ण व्यक्तित्व की तस्वीर सामने आ जाती है। पत्र किसी विशेष क्षण में आई याद की मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति है, अपनत्व भाव की सूचना है, महत्वपूर्ण संदेश है। मखमली अनुभूतियों, भावनाओं और संवेदनाओं से किनारों तक भरा हर शब्द पत्र बनकर लेखक के हाथों से निकलकर जब पत्र प्राप्तकर्ता के पास पहुँचता है, तो वह उसकी अपनी अमानत बन जाता है। पत्र लेखक को जवाब मिले या न मिले, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, क्योंकि मजमून प्राप्तकर्ता के हृदय में अपना स्थायी आशियाना बना लेता है, जिसमें दूरस्थ बोध एवं यादों के आदान-प्रदान का सिलसिला मनोवैज्ञानिक धरातल पर सक्रिय रहता है।

पत्र प्रेरणा और मनोबल को बढ़ाने का एक महत्वपूर्ण ज़रिया है। पत्र में विवेचित स्थितियाँ, घटनाएँ, मनोदशाएँ और दिए गए सुझाव दिशा- निर्देशन का कार्य करते हैं। एक अच्छा पत्र ज़िंदगी में ज़बर्दस्त मोड़ ला सकता है, अदालत में पेश करने पर फैसले को बदल सकता है और युद्ध की हार-जीत का निर्णय बन सकता है। पत्र लेखन एक कला है, अनुभवजन्य हुनर है। गुस्से में या क्रोध में आकर तथा अत्यंत भावुक दशा में पत्र नहीं लिखना चाहिए। क़लम की नोक को बाध्य करके पत्र में लिखा गया कोई अस्पष्ट अथवा दोहरा अर्थ देने वाला शब्द घातक परिणाम निकाल सकता है। नेपोलियन बोनापार्ट के वाटरलू की लड़ाई में हारने के मूल में एक कारण संदिग्ध कूट पत्र भी था, जिसमें शत्रु सेना पर अमुक समय एवं दिशा में आक्रमण करने का अस्पष्ट अंकन था। अमरीकी कवि वाल्ट विट्मैन तो पत्र को दार्शनिक उँचाई देते हुए अपनी विश्व प्रसिद्ध काव्य कृति लीव्ज ऑफ ग्रास में एक जगह कहते हैं, 'मैं ईश्वर द्वारा लिखे गए पत्रों को गलियों में चलते-फिरते एवं बातचीत करते लोगों के रूप में देखता हूँ।' तात्पर्य यह कि प्रत्येक मनुष्य का मस्तिष्क विचारों एवं भावनाओं का अपार भंडार है, जिसका प्रयोग वह मौखिक एवं लिखित रूप में समयानुसार करता रहता है। यह कहना भी सही है कि आत्म-प्रकटीकरण की प्रवृत्ति मानव में जन्मजात है। वह कुछ लिखने या संप्रेषित करने के बिना नहीं रह सकता। भाषा के आविष्कार से पहले भी मानव

अपने भावों-विचारों को संकेतों, चीख़ों, विविध आवाजों, पुष्पों, शारीरिक हरकतों आदि के माध्यम से व्यक्त करता रहा है। इस संदर्भ में टार्जन द ऐप एवं रोबिन्सन क्रूसो को उदाहरण स्वरूप लिया जा सकता है। वसंत, पतझड़, गर्मी, सर्दी, अकाल, बाढ़, ज्वालामुखी, भूकंप आदि प्रकृति के भिन्न-भिन्न विषय-वस्तु पर लिखे पत्र ही हैं।

पत्र के कई प्रकार गिनवाए जा सकते हैं- साहित्यिक पत्र, प्रेरणाप्रद एवं ज्ञानवर्धक पत्र, पारिवारिक पत्र, क़ानूनी पत्र, व्यावसायिक पत्र, संस्थागत पत्र, खुशी-ग़म के पत्र, शिकायती पत्र, पिता के द्वारा पुत्र या पुत्री को लिखे पत्र, पुत्र या पुत्री द्वारा माता-पिता को लिखे मर्मस्पर्शी पत्र आदि। पत्र उत्साहवर्धक राह खोलने का माध्यम भी बनते हैं। यहाँ याद कराना ज़रूरी है कि फ्रलोरेंस नाइटिंगेल इंग्लैंड के एक संपन्न एवं सुशिक्षित परिवार की लड़की थी। वह नर्सिंग सेवा का पेशा अपनाना चाहती थी, लेकिन माता-पिता क़दम-क़दम पर उसका विरोध करते थे। एक दिन फ्रलोरेंस ने अमरीका के मानवतावादी दार्शनिक डॉ. वार्ड होवी को पत्रा लिखकर पूछा, 'क्या एक संभ्रान्त अंग्रेज़ महिला के लिए अस्पताल में मरीजों की सेवा का काम ग़लत होगा? यदि कैथोलिक सिस्टर्स यह काम कर सकती हैं तो मैं क्यों नहीं'? इसके उत्तर में डॉ. वार्ड होवी ने जो पत्र लिखा, वह इतना प्रेरणादायी था कि फ्रलोरेंस के लिए उसके मनचाहे पेशे के नूतन द्वार खुल गए। विश्व आज उसे 'लेडी ऑफ द लैंप' अर्थात् 'प्रकाश की देवी' नाम से जानता है। यूँ तो पंडित जवाहरलाल नेहरू ने अपनी बेटी इंदिरा को 'पिता की ओर से लिखे पुत्री को पत्र' शीर्षक से तीस पत्र लिखे थे जो पुस्तकाकार में इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस, इलाहाबाद से प्रकाशित हुए हैं। इन पत्रों के विषय आर्यजाति, प्राणिजगत, भारतीय कृषि, वृक्ष, पशु, पक्षी, पर्वत, चट्टानें, भारतीय संस्कृति, प्राचीन नगर, शहर, आदि मानव, समुद्री यात्राएँ, राजा, मंदिर, पुजारी आदि से संबंधित हैं। अंतिम पत्र में 'रामायण' और 'महाभारत' महाकाव्यों के कुछ प्रसंग दिए गए हैं। ये सभी पत्र ज्ञानवर्धक एवं प्रेरणादायी हैं।

अंग्रेज़ी कवि जॉन कीट्स (1795-1821) ने अपने घनिष्ठ मित्रों, साहित्यकारों एवं अपनी प्रेमिका फैनी ब्राउन को सन् 1814 से 1821 तक कुल 320 पत्र लिखे थे। इन पत्रों का हाइडर एडवर्ड रौलिन्स ने दो खंडों में संपादन किया तथा हार्वार्ड यूनिवर्सिटी प्रेस केम्ब्रिज ने इनको सन् 1958 में प्रकाशित किया। ये सभी पत्र मानवीय संबंधें, आत्मीयता एवं सच्चे इन्सानी इश्क़ की ग़वाही देते हैं। अपनी प्रेमिका फ़ैनी ब्राउन को लिखे गए पत्रों में कीट्स का रोमानी भाव उत्कर्ष पर है। ये पत्र अंग्रेज़ी गद्य का उत्कृष्ट नमूना है। सन् 1820 में फ़ैनी ब्राउन को लिखे पत्रा में कीट्स का मृत्यु-बोध् साफ इलकता है–

'अंत में मृत्यु को आना ही है। मनुष्य की मृत्यु निश्चित है, जैसा कि शैलो कहता है।' शैलो कहता है, 'मृत्यु, जैसा कि हस्तरेखाशास्त्राी मानता है, सभी के लिए निश्चित है, सभी को एक दिन मरना है।' जॉन कीट्स 26 वर्ष जीवित रहा, लेकिन 21 वर्ष से 26 वर्ष की आयु तक उसने अद्वितीय काव्य रचना की जिससे वह अंग्रेज़ी के महान कवियों में स्थान पा गया।

रॉबर्ट ब्राउनिंग और उसकी प्रेमिका ऐलिजाबेथ बैरेट के बीच अद्भुत साहित्यिक पत्र-व्यवहार रहा। ब्राउनिंग के एक पत्र के उत्तर में ऐलिजाबेथ ने लिखा-

यह ऐसा पत्रा था, जो वास्तविक खुशी का झोंका लेकर आया था। बैरेट ने इस पुरुष को कभी नहीं देखा था, लेकिन वह उसकी काव्य-कृतियों से सुअवगत थी। अब उसे लगा कि वह उसे भी जानती है। उसने तत्काल अपनी क़लम उठाई और लिखा-

प्यारे मिस्टर ब्राउनिंग,

'मैं तहदिल से आपकी आभारी हूँ। यह कड़ाके की सर्दी मुझे बाहर नहीं निकलने देती। वसंत ऋतु में हम मिलेंगे।'

आपकी अनुगृहीत एवं विश्वसनीय

ऐलिजाबेथ बी. बैरेट

रॉबर्ट ब्राउनिंग ने ऐलिजाबेथ के उस शर्मीले वाक्य 'वसंत ऋतु में हम मिलेंगे' को एक प्यारे आमंत्रण के रूप में समझा। इस प्रकार दोनों ने एक-दूसरे को कुल मिलाकर 573 साहित्यिक प्रेम पत्र लिखे।

ताज्जुब नहीं कि जूलियट डाउट ने अपने पति विक्टर ह्यूगो से हुई मुलाकातों के समय को छोड़कर शेष समय में 17,000 पत्र लिखे थे। सेसिल सावेज को अपने पति की अनुपस्थिति में खिड़की से बाहर झाँकना व्यर्थ प्रतीत होता था और वह स्वयं को कुर्सी पर झूलते हुए वस्त्र की तरह निर्जीव और निष्प्राण महसूस करती थी। इस खाली समय में वह अपने पति को पत्र लिखा करती थी, जिनकी कुल संख्या 575 पत्र मानी गई है। नारीवादी आन्दोलन की प्रवर्तक सीमोन डी बोउआर ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'द सेकंड सेक्स' में इन प्रसंगों का उल्लेख किया है।

इसमें कोई हैरत नहीं कि फ्रांज क्राफ्का (1883-1917) ने अपने पिता को 2500 पंक्तियों में एक पत्र लिखा था जो विश्व के हस्तलिखित पत्रों के इतिहास में सबसे लंबा पत्र है। पत्र की शुरू आत कुछ इस तरह है–

प्रिय पिता जी,

'पिछले दिनों आपने मुझसे पूछा था कि मुझे आपसे डर क्यों लगता है। हमेशा की तरह मैं नहीं जानता था कि क्या जवाब दूँ। कुछ तो उसी डर के कारण जो मुझे आपसे लगता है और कुछ इसलिए कि इस डर की जड़ें तमाम दूसरी बातों से जुड़ी हैं जिन्हें मैं शब्दों में पूरी तरह बयान नहीं कर पाता। यहाँ लिखकर आपके सवाल का जवाब देने की कोशिश भी अधूरी रह जाएगी, क्योंकि डर और उसके परिणाम मुझे लिख पाने से रोकेंगे। ऐसा इसलिए है, क्योंकि इस विषय का दायरा मेरी याददाश्त और समझ के दायरे से बहुत बड़ा है।'

एक करुणामय लहज़े में बता दें कि क्राफ्का का बचपन पिता के कड़े निर्देशों, कठोर शब्दों एवं चेतावनियों के माहौल में ही बीता। ऐसे वातावरण का एक प्रसंग हृदय में सहानुभूति और करु णा पैदा करता है– 'खाने की मेज़ पर हमेशा उदासी भरी चुप्पी छाई रहती थी, आपकी चेतावनियाँ तोड़ती थीं- - 'पहले खाना फिर बोलना' या 'जल्दी-जल्दी करो', देखते हो मैं कब का खा चुका हूँ। 'हड्डियाँ नहीं चबानी चाहिए'। लेकिन आप चबा सकते थे। 'सूप पीते समय आवाज़ नहीं होनी चाहिए', लेकिन आप आवाज़ कर सकते थे। 'डबल रोटी सीधी कटनी चाहिए', लेकिन यह बात अलग है कि जिस चाकू से आप काटते थे, उस पर सॉस लगा रहता था। 'ध्यान रहे, जूठन ज़मीन पर न गिरे', लेकिन आपके ही नीचे सबसे ज्यादा जूठन गिरती थी। 'खाने के समय ध्यान खाने पर ही होना चाहिए', लेकिन आप नाखून काटते, पेंसिल बनाते, दाँतखोदनी से कान साफ करते। पिता जी, मेरी आपसे प्रार्थना है कि मुझे ठीक समझिएगा, ये सारी बातें अपने में बेमतलब हो सकती हैं। लेकिन इन बातों ने मुझे सिर्फ इसलिए दु:खी किया कि आप जो मेरे लिए हर बात का मानदंड थे, उन्हीं बातों पर अमल नहीं कर रहे थे, जो मुझे सिखा रहे थे।'

मिर्ज़ा ग़ालिब एक उच्चकोटि के गद्यकार भी थे। लेकिन उनके गद्य का कमाल उनके पत्रों में मिलता है। उन्होंने अपने मित्रों और शिष्यों को सैंकड़ों पत्र लिखे थे। उन्होंने अपनी शायरी की तरह नए ढंग के पत्र लेखन की नींव डाली। उनके हस्तलिखित पत्रों के कई संकलन प्रकाशित हो चुके हैं। मिर्ज़ा ग़ालिब को अंतिम दिनों में आर्थिक एवं शारीरिक संकटों से गुज़रना पड़ा। सन् 1866 में शारीरिक और मानसिक स्थिति यह हो गई जो उन्होंने अपने मित्र को लिखे अंतिम पत्र में बयान की है–

मेरे मुहिब, मेरे महबूब,

'तुमको मेरी खबर भी है? पहले नातवां था, अब नीम-जान हूँ। आगे बहरा था, अब अन्धा हुआ चाहता हूँ। जहाँ चार सतरें लिखीं, उंगलियाँ टेढ़ी हो गईं। हुरुफ सूझने से रह गए। इकहतर बरस जीया, बहुत जीया। अब ज़िंदगी बरसों की नहीं, महीनों और दिनों की है।' - *मिर्ज़ा ग़ालिब*

और सचमुच इस भविष्यवाणी के बाद वे अधिक दिनों तक जीवित न रहे। 15 फरवरी, 1869 के दिन दोपहर ढले इस महान शायर एवं पत्र लेखक का देहान्त हो गया। अमृता प्रीतम और इमरोज़ के बीच 30 अक्टूबर, 1959 से 9 अक्टूबर, 1976 के दरमियान खूब़ आत्मीय पत्र-व्यवहार चलता रहा। दोनों ने एक-दूसरे को बढ़-चढ़कर दर्जनों प्रेमपरक, साहित्यिक एवं कलात्मक पत्र लिखे। ये सभी पत्रा 'दस्तावेज़' शीर्षक से पुस्तक के रूप में 1978 में नागमणी प्रकाशन, नई दिल्ली से प्रकाशित हुए हैं। 29 अप्रैल, 1960 को अमृता द्वारा इमरोज़ को लिखे एक पत्र की बानगी देखिए-

मेरे विश्वास,

'ज़िंदगी के दुःख-सुख, तेरे और मेरे, दो नदियों की मानिंद आप में मिल जाने दो! और फिर जैसे पानी में लीक नहीं पड़ती, तेरे मेरे अस्तित्व में भी कोई लकीर न खींची जा सके।'

- तेरी सलामती माँगती तेरी आशी

अमृता ने सच्चे मन से इमरोज़ से मुहब्बत की थी जो उनके द्वारा इमरोज़ को लिखे गए अनेक पत्रों से ज़ाहिर है। द्रबोवनिक; यूगोस्लाविया से इमरोज़ को लिखे पत्र में अमृता ने अपने मन की अवस्था को खोल कर रख दिया है। पत्र कुछ तरह है–

दोस्त,

'एक पराये देश से तुझे पत्र लिखते हुए याद आया कि आज पन्द्रह अगस्त है, हमारे देश की स्वतंत्रता का दिन। अगर कोई इन्सान किसी दिन का चिह्न बन सकता है तो कहना चाहूँगी कि तू पन्द्रह अगस्त है, मेरे अस्तित्व की और मेरे मन की अवस्था की स्वतंत्रता का दिन।' -अमृता

शहीद भगत सिंह ने अपने दादा जी, पिता जी, भाई कुलबीर सिंह, मित्रा अमरचन्द, क्रान्तिकारियों साथियों, भारत सरकार के उच्च पदाधिकारियों, पत्र-पत्रिकाओं के संपादकों आदि को कई पत्र लिखे थे। इन पत्रों में उनके क्रान्तिकारी मिशन, भावी विज़न, समाजवाद, देश प्रेम, निःस्वार्थपरकता, मानवतावाद, इन्सानियत, राजनीतिक एवं सामाजिक संघर्ष, उनके निर्भीक व्यक्तित्व तथा आत्मीयता की सच्ची तस्वीर मिलती है। ये पत्र राष्ट्र की धरोहर हैं। लेकिन इन पत्रों में अपने पिता जी सरदार किशन सिंह के नाम लिखा गया प्रतिवाद पत्र एक ऐतिहासिक दस्तावेज़ है। यों शुरू होता है यह पत्र-

पूजय पिता जी,

'मुझे यह जानकर आश्चर्य हुआ कि आपने स्पेशल ट्रिब्यूनल को मेरे बचाव के लिए एक प्रार्थना पत्र भेजा है। यह समाचार मेरे लिए इतना दुःखदायी था कि मैं इसे शान्त रहकर सहन नहीं कर सकता। इस समाचार ने मेरे हृदय की सारी शांति समाप्त कर दी। मेरी समझ में नहीं आता कि वर्तमान स्थिति में आप इस विषय पर किस प्रकार ऐसा प्रार्थना-पत्र दे सकते हैं। आपको मेरे साथ परामर्श किए बिना मेरे विषय में कोई प्रार्थना-पत्र देने का अधिकार न था। मेरा जीवन इतना मूल्यवान नहीं है, जितना आप समझते हैं। यदि कोई दूसरा व्यक्तिमेरे प्रति इस प्रकार का वर्ताव करता, तो मैं उसे देशद्रोही समझता। यह एक ऐसा समय था, जब हम सबकी परीक्षा हो रही थी, किन्तु आप इस परीक्षा की घड़ी में असफल रहे हैं।'

आपका ताबेदार

भगत सिंह

टॉलस्टॉय, दोस्तोएवस्की, लेनिन, कार्ल मार्क्स, जूलिया क्रिस्टेवा, मिशेल फूको, जीन पॉल सार्त्र, रोमाँ बार्थ, रोमाँ रोलाँ, महात्मा गाँधी, आइंस्टीन, सिग्मंड फ्रायड, टी. एस. इलियट, डब्ल्यू. बी. यीट्स सी. जी. रोसेटी, चार्ले ब्रान्टी, एमिली ब्रान्टी, सीमोन डी. बोउआर, कामू, मैक्सिम गोर्की, एंटन चेख़्व, वर्ज़िनिया वुल्पफ़, जेन आस्टिन आदि विश्व विख्यात साहित्यकारों एवं विचारकों ने अनेक हस्तलिखित पत्र अपने साहित्यिक मित्रों को लिखे थे, जिनका कालजयी महत्व है। इन पत्रों में मानव की नियति, विश्व शांति, साहित्य की उपायेदयता, धर्म, विज्ञान, दर्शन, मनोविज्ञान, युद्ध आदि प्रखर विषयों पर वैचारिक आदान-प्रदान का उल्लेख मिलता है।

हस्तलिखित साहित्यिक पत्रों संबंधी एक अन्य सच्चाई सामने आई है कि डॉ. जॉन्सन के जीवन-चरित के लेखक बौसवेल का बहुत पुराना पत्र-व्यवहार मिला है और इंग्लैंड में यह एक अत्यंत महत्वपूर्ण घटना मानी जाती है। रूस में तुर्गनेव, चेख़्व और टॉलस्टॉय की कुछ चिट्ठियाँ मिली हैं और उनका जिक्र लंदन के 'टाइम्स' में साप्ताहिक संस्करण में किया गया है। लेकिन खेद है कि हमारे यहाँ इस प्रकार के अनुसंधान कार्य का शायद श्रीगणेश ही नहीं किया गया है। हम तो हरिशंकर शर्मा, नाथूराम शंकर के ज़माने का बहुत-सा पत्र-व्यवहार सुरक्षित नहीं रख सके और वह नष्ट हो गया। राधाचरण गोस्वामी के संग्राहलय का पत्र-व्यवहार भी सुरक्षित नहीं रह सका। 'भारत मित्र' की पुरानी फाइलें नष्ट करके रद्दी में फैंक दी गईं। पंडित नेहरू ने अपनी पुस्तक 'भारत की खोज' में एक जगह लिखा है, 'अक़बर के शासन काल में तुलसी नाम का एक व्यक्ति कविताएँ लिखता था।' इस पुस्तक को पढ़ने के बाद आचार्य विनोबा भावे ने पंडित नेहरू को लिखे गए पत्र में उन्हें सलाह दी थी कि इस पुस्तक के आगामी संस्करण में यह संशोधन कर लें, 'तुलसीदास के काल में अक़बर नाम का मुग़ल शासक राज्य करता था।' यह पत्र आज तक खोजा नहीं जा सका है। सस्ता साहित्य मंडल ने विनोबा जी पर जो अभिनन्दन ग्रंथ छापा था, उसके अंत में दिए गए परिशिष्ट में विनोबा जी के 17 पत्रों की सूची में इस पत्र का कहीं उल्लेख नहीं है।

एक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि किसी भी साहित्यकार के मनोजगत का अनुसंधान एक रोचक विषय हो सकता है। पत्रों के माध्यम से यह अनुसंधान एक अर्थ में प्रामाणिक माना जा सकता है, क्योंकि पत्र एक संबोधित एवं संरचनात्मक विधा है। इसमें निजता, आंतरिकता और मनस्विता का घुला-मिला आस्वाद विद्यमान रहता है। पत्रों का महत्व तो पत्नी के आभूषणों से भी अधिक होता है। यह सच्चाई आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, रामधरी सिंह दिनकर और भीष्म साहनी ने भी स्वीकार की है। सच्चाई एवं निष्ठाभाव से लिखा गया पत्र मानव मन का एक्स-रे है।

●

3150, सेक्टर 24-डी,
चंडीगढ़-160023
मो. 9876301085

बरगद का पेड़

किसी गांव में बरगद का एक पेड़ बहुत वर्षों से खड़ा था। गांव के सभी लोग उसकी छाया में बैठते थे, गांव की महिलाएं त्योहारों पर उस वृक्ष की पूजा किया करती थीं। ऐसे ही समय बीतता गया। कई वर्षों बाद वृक्ष सूखने लगा। उसकी शाखाएं टूटकर गिरने लगीं और उसकी जड़ें भी अब कमजोर हो चुकी थीं। गांव वालों ने विचार किया कि अब इस पेड़ को काट दिया जाये और इसकी लकड़ियों से गृहविहीन लोगों के लिए झोपड़ियों का निर्माण किया जाये। गांववालों को आरी-कुल्हाड़ी लाते देख बरगद के पास खड़ा एक वृक्ष बोला– 'दादा! आपको इन लोगों की प्रवृत्ति पर जरा भी क्रोध नहीं आता, ये कैसे स्वार्थी लोग हैं, जब इन्हें आपकी आवश्यकता थी तब ये आपकी पूजा किया करते थे, लेकिन आज आपको टूटते हुए देखकर काटने चले हैं।' बूढ़े बरगद ने जवाब दिया– 'नहीं बेटे! मैं तो यह सोचकर बहुत प्रसन्न हूं कि मरने के बाद भी मैं आज किसी के काम आ सकूंगा।'

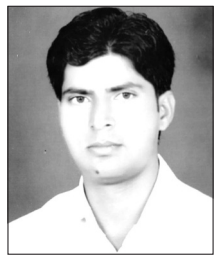

शिक्षा से वंचित समुदाय : लिंग विकलांग जीवी

डॉ. विजय कुमार पटीर

आधुनिक युग के बाद उत्तर आधुनिक को छोड़कर आज हम उत्तरोत्तर आधुनिकता के युग में प्रवेश कर चुके हैं। आज यह साबित हो चुका है कि मनुष्य कुछ भी कर सकता है, इसी विचार धारा के चलते हमने अनेक मानवीय और अमानवीय कार्यों को अंजाम दिया है। आज प्रत्येक बुदधिजीवी रूढ़ीवादी परम्पराओं व धारणाओं को अंतर्मन से तोड़ चुका है लेकिन सामाजिक सामंजस्य बनाये रखने के लिए वह अब भी बाध्य-मन से प्रतिबद्ध है। आज का युग महाविज्ञान का युग है। इसमें बच्चा बिना औरत के जन्म ले रहा है। ये युग महामानव की स्थापना करता है। इस युग की अवधारणा में शिक्षा जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग मानी जा रही है। शिक्षा के बिना आज प्रत्येक मानव अधूरा है। यहां तक कि लोग आज अपने कुत्ते-बिल्ली आदि जानवरों को शिक्षित कर रहे हैं, ऐसे में अगर कोई मानवी शिक्षा से वंचित होता है तो इसके लिए मां-बाप और समाज ही जिम्मेदार हैं। अशिक्षित प्राणी को आने वाले समय में एक हीन दृष्टि से देखा जाएगा ये विश्चित है। चूंकि बहुत से लोग किसी कारणवश पढ़ नहीं पाते या पढ़ाई बीच में छोड़ देते हैं, वो अलग बात है। उन्हें भी हम किसी प्रकार सहायता देकर शिक्षित कर सकते हैं ऐसे लोगों पर लोग छींटाकशी नहीं करते। भारतीय परिवेश में दो मानवीय प्राणियों को शिक्षा के अधिकार से हमेशा वंचित रखा गया। एक शूद्र कर्म और दूसरा किन्नर। भारतीय संकीर्ण विचार धारा ने इन दोनों के प्रति शिक्षा के क्षेत्र में कभी न्याय नहीं किया। इन दोनों को शिक्षित न कर इनके एक अधिकार छीन लिए गये। इनको गांव/शहर के बाहर अपने समुदाय या डेरे पर रहने को मजबूर किया गया। हालांकि आज चौथा वर्ग शिक्षा प्राप्त कर समाज के अन्य सभी वर्गों से सामंजस्य स्थापित कर एक सम्मान की जिन्दगी जीने की कोशिश कर रहा है। लेकिन किन्नरों के डेरे आज भी गांव और शहर के बाहर दिखाई देते हैं। ये लोग समाज से पूर्णतः बहिष्कृत हैं। ऐसे में इनको शिक्षित कर मुख्य धारा में लेकर आना बहुत जरूरी है।

आज शिक्षा ने अनेक प्रतिभाओं को निखारा है। जो कल तक उपेक्षित माने जाते थे वे शिक्षा ग्रहण कर आज सम्मान पूर्वक जीवन जी रहे हैं। आज शिक्षा के मामले में किन्नर पूरी तरह से पिछड़े हुए हैं, हालांकि कुछेक किन्नर ने समाज से संघर्ष कर शिक्षा ग्रहण कर अपना मुकाम हासिल किया है, परन्तु जो स्थान, जो शिक्षा वास्तव में उन्हें

मिलनी चाहिए उससे वे आज भी वंचित हैं। प्राचीन साहित्य में किन्नरों की शिक्षा संबंधी विचारों को दरकिनार किया गया परन्तु आज हिन्दी साहित्य इनके शिक्षा संघर्ष को न्याय के साथ प्रस्तुत कर रहा है। आज प्रत्येक मां-बाप यह चाहते हैं कि उसका बच्चा पढ़-लिखकर एक सुशिक्षित नागरिक बने। परन्तु किन्नर पैदा होने पर कोई भी उसकी शिक्षा पर ध्यान देना नहीं चाहता। लोग विकलांग, या मानसिक (मंद बुद्धि) विकार ग्रस्त बच्चे को शिक्षित बनाना चाहते हैं फिर इनके प्रति उपेक्षित भाव क्यों है? परिवार सामाजिक बन्धनों में बंधा होने के कारण अपने किन्नर बच्चे को स्कूल भेजना नहीं चाहता। लोक लाज के भय से वह परिवार हमेशा सहमा रहता है। अगर स्कूल भेजता भी है तो स्कूल ऐसे बच्चों को दाखिला नहीं देता। स्कूल के एडमिशन फॉर्म में केवल दो ही कॉलम होते हैं मेल/फीमेल। हालांकि आजकल एक और कॉलम दिखाई देने लगा है 'अन्य'। स्कूल ऐसे तृतीय लिंगी बालक को एडमिशन दे भी देता है तो साथ पढ़ने वाले उस बच्चे का जीना हराम कर देते हैं। स्कूल आते-जाते समय असामाजिक तत्व भी इन्हें परेशान करते हैं। जिससे तंग आकर ये बच्चे अपनी पढ़ाई छोड़ देते हैं।

ऐसे कितने दिन शिशु किन्नर अपना भविष्य बर्बाद करते रहेंगे? आज उस थर्ड प्राणी को ये पता नहीं है वह लिंग विकलांग क्यूं है? उसे समाज में अलग क्यूं समझा जाता है? जो बालक अभी स्त्री-पुरुष का भेद नहीं जानता, उसे क्या पता कि मैं किन्नर हूं? लेकिन समाज उस थर्ड जेंडर को बचपन में इस बात से अवगत करवा देता है, कि तुम एक सामान्य बालक नहीं हो, तुम हमसे अलग हो, हमारे समाज में तुम्हें रहने का कोई अधिकार नहीं है, तुम एक अप्रवासी हो, तुम शरणार्थी हो। ऐसे बालक को जब एक संकीर्ण समाज से वास्ता पड़ता है तो उसकी मनः स्थिति क्या होगी? उस दुध मुहें बालक पर क्या बीतती होगी? क्या वह हीन मानसिकता का शिकार नहीं होगा? घर-मुहल्ले, स्कूल के बालकों को जब उसके थर्ड जेंडर होने की बात मालूम होती है तो वे उससे घृणा करने लगते हैं। वे उसके साथ उठना-बैठना, खेलना-पढ़ना नहीं चाहते। हालांकि सामान्य बच्चों का इसमें कोई दोष नहीं है। ये बच्चे भी अपने घर-बार, परिवार समाज में उस बालक के बारे में हो रही संकीर्ण मानसिकता को ग्रहण कर लेते हैं और उस तृतीय प्रकृति के साथ भेदभाव करना शुरू कर देते हैं? यहीं से शिशु किन्नर पहली बार यह एहसास करता है कि वो सबसे अलग है, हीन है, वह इस समाज का प्राणी नहीं है, ये माँ बाप मेरे नहीं हैं। मैं पराया हूं बस पराया। आज इसी परायेपन और इनके शिक्षा संघर्ष को हिन्दी साहित्य की अनेक विधा समाज के सामने यथार्थ रूप में प्रस्तुत कर रही है। आज थर्ड जेंडर के प्रति लिखा जा रहा साहित्य इनके प्रति विशेष न्याय करता नजर आ रहा है। आज के किन्नर विमर्श उपन्यासों और कहानियों ने हमारे विचार बदले हैं। ये निश्चित है।

चित्रा मुद्गल के उपन्यास पोस्ट बाक्स नं. 203 नाला सोपारा में थर्ड जेंडर की शिक्षा का पुरजोर समर्थन हुआ है। पिताजी ने अपने रूप उपन्यास में बिन्नी, विनोद उर्फ बिमली को शिक्षा के लिए निरन्तर संघर्ष करते दिखाया है। यह उपन्यास ही इस बात को जाहिर करता है कि शिक्षा के बिना तृतीय प्रकृति समाज में सम्मान का जीवन नहीं जी सकती। वह अपने हक अधिकारों को नहीं जान सकती। चित्रा मुद्गल आम आदमी को किन्नरों के प्रति अपना नजरिया बदलने की बात कहती है- जरूरत है सोच बदलने की संवेदनशील बनने की। सोच बदलेगी, तभी जब अभिभावक अपने लिंग दोषी बच्चों को कलंक न मान किन्नरों के हवाले नहीं करेंगे। उन्हें घूरे पर नहीं फेकेंगे। ट्रांस जेंडर के खांचे में नहीं ढकेलेंगे। यह पहचान जब उन्हें किन्नरों के रूप में जीने नहीं दे रही, समाज में तो सरकारी मान्यता मिल जाने के बाद जीने देगी?[1]

चित्रा जी के नाला सोपारा में किन्नर की शिक्षा को लेकर एक यथार्थ जीवित चित्र हमारे सामने खड़ा

होता है। बिन्नी उर्फ विनोद को माँ पढ़ाना चाहती है। बिन्नी पढ़ने में तेज है, होशियार है। माँ उसे समझाती है कि बेटा तू सबसे अलग है और छोकरों से तू अलग है। यह मान लेने में ही तेरी भलाई है न किसी से बराबरी कर, न अपनी कमी की उनसे कोई चर्चा। समाज को ऐसे लोगों की आदत नहीं है और वे आदत डालना भी नहीं चाहते।[2] माँ उससे कहती है कि तेरी प्रकृति अलग है 'स्कूल की चार दीवारी से सटकर पैंट के बटन खोलकर खड़े हो जाने वाले।'[3] लड़कों की तरह तू नहीं है। एक दिन किसी तरह बिन्नी के घर हिजड़ों की टोली आ जाती है, वे बिन्नी को साथ ले जाना चाहते हैं, उनकी दलील है कि आपका बच्चा हिजड़ा है ये बात पक्की है, वे उसे देखना चाहते हैं। आज तक माँ-बाप ने बिन्नी को दुनिया की नजर से छुपा रखा था अब धीरे-धीरे यह बात जाहिर हो रही है। खैर किसी तरह बिन्नी के छोटे भाई को दिखाकर इस आफत से पिण्ड छुड़ाया गया। लेकिन कितने दिन? शिशु किन्नर अभी पढ़ रहा है। माँ बाप नहीं चाहते कि बच्चा उनके साथ जाये। वे आज तक समाज और रिश्तेदारों से ये बात छुपाते आये थे। एक हफ्ते तक बिन्नी स्कूल नहीं गया। इसके बाद माँ रोज स्कूल लाने ले जाने लगी। सारे दिन माँ स्कूल में ही बच्चे की रखवाली करती। 18वें दिन ही माँ के पैर में दर्द हो गया। वह स्कूल नहीं जा सकी, सो बिन्नी का भी स्कूल छूट गया। रिश्तेदारी में भी बच्चे को भेज नहीं सकते, डर था कि उन्हें सच्चाई का पता चल जाएगा। फिर एक दिन मजबूर होकर बिन्नी को हिजड़ों को सौंप दिया गया और ये खबर स्कूल में भी फैला दी गई कि गांव में एक भयानक हादसा हुआ जिसमें विनोद मर गया।

हिजड़ों की जमात में आने के बाद भी बिन्नी ने अपनी पढ़ाई जारी रखी। वह बाजार से इंडिया टुडे आदि पत्रिकाएं खरीदता और पढ़ता है। अब उसने कम्प्यूटर सीखना शुरू कर दिया है। उसे विधायक की मदद से एआईटी. बेसिक कम्प्यूटर प्रोग्राम में एडमिशन भी मिल गया है। यह डेढ़ महीने का कोर्स है। 'तेरे दीकरे की काया में से कोई दूसरा ही फुर्तीला नौजवान जन्म ले लेता है। आत्म विश्वास से भरा हुआ।'[4] इन्द्रिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय से उसे पता चलता है कि किसी नौकरी के लिए कम्प्यूटर ही नहीं 10वीं और 12वीं पास की भी जरूरत होती है। उसे कम्प्यूटर का कोर्स पूरा करने के बाद विधायक के दफ्तर में काम करना है 'तनख्वाह मेरी लगभग सात हजार होगी। काम बढ़ेगा तो तनख्वाह भी बढ़ेगी।'[5] उपन्यास में बिन्नी वह पात्र है जो दूसरों के सामने हाथ फैलाकर नहीं बल्कि मेहनत की रोटी बखाना चाहता है। अगर देखा जाये तो नाला सोपारा ही किन्नरों की शिक्षा पर महत्वपूर्ण प्रकाश डालता है। इस उपन्यास में इस बात का समर्थन बिन्नी के माध्यम से किया गया है कि एक पढ़ा-लिखा किन्नर कभी भी भीख नहीं मांगेगा। वह बिन्नी की तरह कार धोकर, कम्प्यूटर चलाकर, एक स्वाभिमानी जिन्दगी जी सकता है। चित्राजी का उपन्साय के माध्यम से किन्नरों में शिक्षा के प्रति एक नयी चेतना जाग्रत करते हैं।

आज के युग में ये जाहिर हो चुका है कि आदमी ज्यों-ज्यों बुद्धिवादी और महानगरीय सभ्यता को ग्रहण करता जा रहा है त्यों-त्यों वह मानवीयता और संवेदना भी खोता जा रहा है। इसी मानवता और अमानवता को नीरजा माधव अपने उपन्यास 'जयदीप' में किन्नरों के माध्यम से प्रस्तुत करती है। सड़क के किनारे एक पागल लड़की प्रसव पीड़ा से कराह रही है। सभ्य स्त्रियां खिड़कियां खोले तमाशा देख रही हैं, कोई घर से बाहर आकर इसे संभालती नहीं है। आवारा लड़के ऐसी स्थिति में मजा ले रहे हैं। मानवीयता का गला सबके सामने घुटा जा रहा है, सबको अपनी इज्जत प्यारी है। ऐसे में एक हिजड़े की टोली उधर से निकलती है। अफसोस पगली एक कन्या को जन्म देकर मर जाती है। नाज बीबी सबसे गुहर लगाती है कि इस कन्या को कोई गोद ले ले, लेकिन कोई भी तैयार नहीं होता। जो लोग

मानवता और बेटी को लेकर बड़ी-बड़ी बातें करते थे सब पीछे हट जाते हैं। ऐसे में नाज बीबी ही अपने शिक्षित होने और असली मानवी होने का परिचय देती है '... और तब एक संकल्प जागता है नाज बीबी के हृदय में... शिव संकल्प! जो होगा देखा जायेगा। मैं पालूंगी इस बच्ची को। मैं इसे मरने के लिए, चील कौओं और कुत्तों के नोचे जाने के लिए नहीं छोड़ सकती। मैं हिजड़ा हूं, इन्सान नहीं जो मुंह फेर लूं।'[6]

इसी उपन्साय में किन्नर शिक्षा, आरक्षण, नौकरी आदि को लेकर बड़ी मार्मिक बातें कही गई हैं। गुरु महताब के तथा किन्नरों के माध्यम से एक आरोप-प्रत्यारोप परिवार और समाज की ठेकेदारी सरकार पर भी लगाये गये हैं। ये चाहते हैं कि हमारे लिए भी स्कूल हो, शिक्षा हो, नौकरी हो... 'किसी स्कूल में आज तक किसी हिजड़े को पढ़ते देखा है? किसी कुर्सी पर हिजड़ा बैठा है? पुलिस में मास्टरी में, कलेक्टरी में... किसी में भी कोई आगे नहीं आयेगा कि हिजड़ों को पढ़ाओ, लिखाओ, नौकरी हो, जैसे कुछ जातियों के लिए सरकार कर रही है। हमारे लिए तो वह नहीं। माता-पिता, घर-परिवार सबसे छुड़ाकर इस बस्ती में नाचने गाने के लिए फेंक जाती है हमारी किस्मत।'[7]

'जिन्दी 50-50' उपन्यास में थर्ड जेण्डर के जन्म होने पर पिता अपनी पीड़ा कुछ यूं व्यक्त करता है- 'मैं अपनी माँ को कैसे बताऊंगा कि मैंने और आशिका ने ऐसे बच्चे को जन्म दिया जो अपना वंश आगे नहीं बढ़ा सकता। आशिका जब सुनेगी तो उस पर क्या बीतेगी? उसने ऐसे बच्चे को जन्म दिया, जो समाज में जीने लायक ही नहीं, उसे समाज के हाशिए पर जीना पड़ेगा। इतना दर्द कि मेरा बेटा अगर मर भी जाता तो शायद इतना दुख नहीं होता। ऐसे ही सिर्फ मैं ही दुःख झेल रहा हूं, पर अब वो दुख झेलेगा और उसका गवाह मैं खुद बनूंगा। शिक्षा से लेकर, खेलकूद, नौकरी और सेक्स, उससे सभी जगह दोगला व्यवहार होगा।'[8]

बाप 'हर्षा' को बहुत पीटता है। स्कूल में हर्षा जैसे तृतीय लिंगी बच्चे का सरेआम अपमान होता है। बच्चे उसका खूब मजाक उड़ाते हैं–'रोज हमारी कक्षा में लड़के हमें चिढ़ाते हैं कि हर्षा के है नहीं आये, सफाचट है।'[9] सामाजिक अपमान होने के कारण हर्षा रोज मार खाता है, अत्याचार की भी हद होती है। इस नरकीय जीवन से वह भाग जाना चाहता है, लेकिन जायेगी कहां, ऐसी स्थिति में उसे स्कूल ही अच्छा लगता है। परन्तु स्कूल के साथी उसके साथ पड़ना नहीं चाहते, उसका मजाक बनाते हैं फिर भी वह नजर अंदाज कर स्कूल जाना चाहता है। इसलिए कि यहां मार तो नहीं पड़ती। अध्यापक भी बच्चों को कहता है कि अगर किसी में कोई शरारत की तो उसे हर्षा के साथ बिठा दिया जायेगा। हर्षा कक्षा में सबसे अलग बैठने वाला एक तृतीय प्रकृति का बाल अपराधी है। गुनाह बस इतना कि वो किन्नर है। जन्म लेना क्या उसके बस में था? उसका सहपाठी अमन हर्षा को बताता है कि हर्षा इस दुनिया में तुम्हीं एक अकेली ऐसी नहीं हो और भी तुम्हारे जैसे इंसान है। ये बात सुनकर हर्षा को खुशी का अहसास हुआ। उसे पता चला कि उनका एक अलग समुदाय है। वो कस्तूरी किन्नर से मिलने उनके डेरे में जाता है। वहां उस मोहल्ले में सभी हर्षा जैसे लोग थे। कस्तूरी हर्षा को ढांढस बंधाती है। उसको शिक्षा और जीवन के प्रति सचेत करती है 'तोहार बाप बढ़िया है, कम से कम तुझे पढ़ा-लिखा रहा है। वरना हमारा बाप जन्म लेते ही निकाल दिया था हमें घर से।'[10] कस्तूरी हर्षा को समझाती है कि तुम पढ़ो-लिखो, नौकरी करो। अपना भविष्य बनाओ। इस समुदाय में कुछ भी नहीं है। अगर तुमको अपने घर में आराम न मिले तो हमारे पास चले आना। यही हर्षा इस दिन स्कूल से घर लौटते वक्त बलात्कार का शिकार हो जाती है, किसी को अपनी पीड़ा बता भी नहीं पाती। इसी पीड़ा और सामाजिक अपमान के कारण एक दिन हर्षा अपनी पढ़ाई छोड़ देती है।

आज जरूरत है कि हम तृतीय प्रकृति का सहयोग करें। शिक्षा और नौकरी जैसा स्वाभिमानी जीवन जीने दें। अनमोल ने अपने बेटे सूर्या को पढ़ा लिखा कर शिक्षित व्यक्ति बनाया। सूर्या एक प्राइवेट डिटेक्टिव एजेंसी चलाना चाहता है। इसके लिए वह पुलिस कमिश्नर को अर्जी देता है। पुलिस विभाग ने लाइसेंस देने के केवल दो लोगों को बुलाया। इसमें सूर्या को लाइसेंस के लिए दूसरा लड़का पूछता है और उसमें अन्य का कॉलम देखकर वह सूर्या के लिए लाइसेंस लेना छोड़ देता है। घर आने पर माँ जब लड़के से पुलिस विभाग की कार्यवाही के बारे में पूछती है तो वह कहता है 'कुछ नहीं मम्मी, जो दूसरा लड़का था, वह मेरे बगल में ही बैठा था। मेरी नजर उसके रेज्यूम पर चली गई। मैंने देखा तो पाया सैक्स के कॉलम में वह अन्य में टिक किए हुआ था।.... मेरा मन मुझे झकझोर रहा था। मैं उस व्यक्ति को और दुख में नहीं भेजना चाहता था जो समाज से अभी तक लड़कर यहां तक पहुंचा है। अगर उसे यहां लाइसेंस नहीं मिला तो वह किस मनोदशा से गुजरेगा? उसके बाद वह क्या करेगा? अगर वह भी सड़क पर भीख मांगते हुए आ गया तो इसके जिम्मेदार सिर्फ हम होंगे।'[11]

हर्षा भी इसी उपन्यास की किन्नर पात्र है। वह सामाजिक विसंगतियों से तंग आ चुकी है। वह संवेदनशीलता तथा असामाजिक जीवन की त्रासदी पर गम्भीर आरोप लगाती है। 'इतने वर्षों में मैं यह समझ गयी थी कि यह समाज मुझे प्यार तो छोड़ो, मुझे समझने की भी कोशिश नहीं कर सकता। आखिर मेरी गलती क्या है? मेरा एक अंग अविकसित है। बस इतनी-सी। शायद इस तथाकथित समाज में सारा फसाद सिर्फ इसी अंग को लेकर होता है। लड़ाई-झगड़ा, प्रेम-मारपीट सब इसी अंग के कारण तो होता है। मेरे शरीर का हर अंग आहत था, चोट थी, मेरा शरीर टूट रहा था, हाथ पैर से लेकर गुदा तक!' मैं बिलख रही थी। मेरे आंखों के सामने अपने भविष्य का अंधकार मंडरा रहा था। मैं ऐसी कठपुतली बन गयी थी स्कूल से लेकर घर बाहर, हर कोई मेरा मजाक उड़ाता है। गाहे-बगारे मुझे हिजड़ा कहने से नहीं चूकता। खेलने कूदने में पढ़ते वक्त और यहां तक कि स्कूल का फार्म भरते वक्त मुझ जैसों के लिए एक अलग ही कॉलम होता है पुरुष-महिला या अन्य। हर वक्त मुझे यह एहसास दिलाया जाता है कि मैं हर किसी से अलग हूं।[12] किन्नर जीवन की परिभाषा भी उपन्यासकार ने हर्षा के माध्यम से वक्त की है। जब हर्षा अपनी माँ के साथ बाजार गया तो पीछे से उसका भाई अनमोल उसकी डायरी पढ़ता है। डायरी के पहले पन्ने पर हर्षा लिखता है– 'मैं जो दिखता हूं वह हूं नहीं, और जो हूं वह दिखता नहीं।[13]'

मैं क्यों नहीं (पाक मदन नाइक) ने अपने समाज के अस्तित्व के लिए एक लम्बी लड़ाई लड़ी। वह इतिहास के पन्नों में दर्ज हो गयी। नाज के सामाजिक कार्यों को समाज में सराहा जा रहा है। आज नाज और इसके पिता के सम्बध मधुर हो चुके हैं। जो पिता और समाज कल तक उसके दुश्मन थे, आज उसकी प्रशंसा करते नहीं अघाते। नाज का पिता समाज के लोगों को कहता है- 'नरेंद्र जैसा बच्चा आपके घर में बढ़ने लगे तो उससे नफरत न करें। जैसा पहले प्रेम किया करते थे वैसा ही देते रहें। उसकी इच्छानुसार उसको शिक्षा लेने दें। उसका हाथ थामकर समाज में सामान्य रूप से घूमें-फिरें। यदि आपके लिए संभव हो तो शस्त्र क्रिया करवा लें। कृपया करके उसे सड़क पर बेसहारा मत छोड़िये।[14] ऐसी बातें सुनकर नाज को अपने पिता के माध्यम से एक सामाजिक बल मिला। उसे जीने का नया आयाम मिला। उसको यह महसूस हुआ कि समाज चाहे मेरे खिलाफ खड़ा है परन्तु मेरा परिवार तो मेरे साथ है- 'मुझे अपने अस्तित्व की नये सिरे से पहचान हुई है। मैं कौन हूं ऐसा सवाल अब मेरे मन में कभी नहीं आयेगा।'[15]

किन्नर के रूप में पैदा होना या पैदा करना किसी के बस की बात नहीं है। जो किन्नर के रूप

में जन्म चुका है उसका क्या दोष? क्या वह शिक्षा ग्रहण नहीं कर सकता? आज हमें जरूरत है इस विकार को त्यागने की। आज भारतीय शिक्षा प्रणाली में किन्नरों से संबंधी सामग्री को स्थान देना चाहिए, ताकि अन्य बालक उनके जीवन संघर्ष को जान सकें। भारतीय शिक्षालयों में किन्नरों को पूर्णतः निःशुल्क शिक्षा देने का प्रावधान करना चाहिए, जिससे माँ-बाप उसे बोझ न समझे। एक बात और सरकार को थर्ड जेंडर के लिए विशेष कोर्स या शिक्षा की व्यवस्था करनी चाहिए जिससे वह कोई नौकरी या अच्छा स्वरोजगार कर अपना जीवन व्यतीत कर सके। अंग्रेजों से लेकर सन् 2000 तक भारतीय शिक्षा विभाग और सरकार इनसे पूर्णतः बेखबर नजर आती है। इस उभयलिंगी समाज के लिए सबसे बड़ी पहल तमिलनाडु ने की है। इसने किन्नर को 2008 में सरकारी मान्यता प्रदान की है। सीईपीटी यूनिवर्सिटी गुजरात ने 2014 में किन्नर को विश्वविद्यालय में प्रवेश देने की घोषणा की है। इग्नू विश्वविद्यालय ने भी इन्हें शिक्षा देने का ऐलान किया। 15 अप्रैल 2014 को भारतीय सरकार ने थर्ड जेंडर को मान्यता प्रदान की। इसमें ये प्रावधान भी किया गया है कि महिला पुरुष के अलावा एक तीसरा कॉलम 'अन्य' भी होना चाहिए।

खैर किसी तृतीय प्रकृति को सरकारी मान्यता मिल जाने के बाद वह एक तरह सुरक्षित और अपनापन तो महसूस करने लगा है। लेकिन अभी भी भारतीय शिक्षा प्रणाली को थर्ड जेंडर की शिक्षा पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है। सरकार के साथ-साथ हमारा भी सामाजिक और नैतिक कर्तव्य बनता है कि हम ऐसे बच्चों को प्यार दें, शिक्षा दें उन्हें परायापन महसूस न होने दें। आज हमें खुद को इस बात के लिए तैयार करना होगा कि भले ही किन्नर हमारा वंश नहीं बढ़ा सकता, परन्तु वह किसी भी रूप में बेटे या बेटी से कम नहीं है। किन्नर तो सिर्फ शारीरिक विकलांग है परन्तु हम और हमारा समाज मानसिक विकलांग है। आइये हम किन्नरों के प्रति अपनी रूढ़ीवादी धारणाएं बदलें और उन्हें शिक्षित कर सुयोग्य नागरिक बनाएं।

संदर्भ :

1. पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा, सामयिक प्रकाशन नई दिल्ली 2016 ले. चित्रा मुद्गल-प.112
2. वही, पृ. 10
3. वही, पृ. 10
4. वही, पृ. 45
5. वही, पृ. 46
6. यमदीप, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017, ले. नीरजा माधव, पृ. 12
7. वही, पृ. 94
8. जिन्दगी 50-50, राजपाल एंड संस, नई दिल्ली, 2017, ले. भगवंत अनमोल, पृ. 29
9. वही, पृ. 73
10. वही, पृ. 138
11. वही, पृ. 197
12. वही, पृ. 163
13. वही, पृ. 117
14. मैं क्यों नहीं, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 2012, ले. पारु मदन नाइक (अनु. सुनीता परांजये) पृ.168
15. वही, पृ. 168

●

राजकीय छात्रावास के सामने,
वार्ड नं. 11
रावतसर
हनुमानगढ़ (राज.) 335524
मो. 8107123197

दूसरों के अनुभवों का चिन्तन करने से भीतरी सामंजस्य कभी नहीं मिलता? उसके लिए स्वयं आग में से गुजरना पड़ता है।
-नार्मन डगलस

केदारनाथ सिंह की कविताओं में नारी संवेदना

डॉ. नीतू कुमारी

समकालीन हिंदी काव्य परिदृश्य के प्रतिनिधि हस्ताक्षर केदारनाथ सिंह बेहद सरल और आम बोलचाल की भाषा में जटिल विषयों पर अपनी लेखनी को चलाने में माहिर रहे हैं । उन्होंने गांव और शहर, परंपरा और आधुनिकता तथा प्रकृति और संस्कृति के सभी पहलुओं पर निरंतर संवाद किया है । उनकी कविताओं में प्रतिरोध का स्वर भी प्रच्छन्न भाव से रहता आया है। अकाल में सारस,यहां से देखो, बाघ, उत्तर कबीर और अन्य कविताएं, सृष्टि पर पहरा, अभी बिल्कुल अभी, जमीन पक रही है, टॉल्सटॉय और साइकिल जैसे संग्रहों के माध्यम से तीसरा सप्तक के कवि केदारनाथ सिंह ने हिंदी साहित्य जगत में अपनी काव्य प्रतिभा का लोहा मनवाया। उनकी कविताओं में गांव से लेकर शहर तक के संघर्ष और असीम इच्छाओं की झलक मिलती है वाह उनकी ही जिंदगी का प्रतिनिधित्व कर रही होती हैं ।

केदारनाथ सिंह जी का जन्म 1934 में उत्तर प्रदेश के बलिया जिले के चकिया गांव में हुआ था उन्होंने 1956 में बनारस विश्वविद्यालय से हिंदी में स्नातकोत्तर तथा 1964 में पीएचडी किया। फिर कई महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में अध्यापन कार्य करने के बाद जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालयों में हिंदी विभाग अध्यक्ष के अध्यक्ष पद से रिटायर्ड हुए। केदारनाथ सिंह के प्रमुख लेख और कहानियां मेरे समय के शब्द कल्पना और छायावाद हिंदी कविता दिव्य विधान और कब्रिस्तान में पंचायत संग्रह में शामिल हैं। उन्होंने ताना-बाना, समकालीन रूसी कविताएं, कविता दशक, अनियतकालिक पत्रिका साथी और अनियतकालिक पत्रिका शब्द का संपादन भी किया।

अकाल में सारस कविता संग्रह के लिए उन्हें 1989 में साहित्य अकादमी पुरस्कार प्रदान किया गया। उन्हें मैथिलीशरण गुप्त पुरस्कार, केरल सरकार का कुमार आशान पुरस्कार, दिनकर पुरस्कार, उड़ीसा सरकार का जीवन भारती पुरस्कार और व्यास सम्मान सहित अनेक प्रतिष्ठित सम्मान और पुरस्कार प्राप्त हुए। 2010 में उन्हें दिल्ली की हिंदी अकादमी द्वारा 200000 के सर्वोच्च श्लाका सम्मान दिए जाने की घोषणा की गई थी जिसे उन्होंने ठुकरा दिया था। 2013 में केदारनाथ सिंह को भारत का सर्वोच्च साहित्य सम्मान ज्ञानपीठ पुरस्कार दिया गया। लेकिन किसी भी रचनाकार का आकलन पुरस्कारों की संख्या के आधार पर नहीं किया जा सकता। केदारनाथ सिंह को जो पुरस्कार प्राप्त हुए, उससे उनकी कितनी गरिमा बढ़ी, यह कहना तो मुश्किल है लेकिन पुरस्कारों की

गरिमा अवश्य ही बहुत उंचाई पर गई।

लोक संस्कृति और लोक गीतों के बड़े अनुरागी कवि केदारनाथ सिंह जीवन भर गांव के ही बने रहे और ग्रामीण संस्कृति के अच्छे गुणों को अपने जीवन में अंगीकार किए रहे। ग्रामीण संस्कृति में लोकगीतों को बनाए-बचाए रखने में महिलाओं की भूमिका अग्रणी होती है। इन्हीं गीतों के माध्यम से महिलाएं अपने जीवन के दर्द और संवेदनाओं को प्रकट करती हैं। केदारनाथ सिंह की कविताओं में नारियों के कई रूपों के दर्शन होते हैं। स्त्री पर बात करते हुए कवि केदारनाथ सिंह ने अनेक कविताएं लिखी हैं जिनमें मैं एक स्त्री को जानता हूं,जो एक स्त्री को जानता है, मां-सुई और तागे के बीच में, बारिश में स्त्री, नमक, तुम आईं, टमाटर बेचने वाली बुढ़िया, हाथ, घुलते हुए गलते हुए,एक पारिवारिक प्रश्न आदि शामिल हैं।

ग्रामीण समाज में मां घर-आंगन का आधार होती है। मां सुई और तागे के बीच में कविता में केदारनाथ सिंह लिखते हैं–

पिछले साठ बरसों से
एक सुई और तागे के बीच
दबी हुई है माँ
हालाँकि वह खुद एक करघा है
जिस पर साठ बरस बुने गए हैं
धीरे-धीरे तह पल तह
खूब मोटे और गझिन और खुरदुरे
साठ बरस

स्त्री के मनोभावों को शब्दों में प्रकट करने में केदारनाथ सिंह को महारत हासिल है। एक प्रेम-कविता को पढ़कर शीर्षक कविता की इन पंक्तियां को देखिए–

वह स्त्री
न जाने कितनी देर से
कविता की बारहवीं पंक्ति में खड़ी थी
और बस का इंतजार कर रही थी
उसे कहां जाना है-कविता इसके बारे में
बिल्कुल चुप थी
सिर्फ एक हल्की-सी धूप

स्त्री के कंधों पर पड़ रही थी कविता की सत्रहवीं पंक्ति से छनकर जो एक स्त्री को जानता है कविता में प्यार और नारी मनः स्थिति पर वह कहते हैं–

हवा को बहने दो
और उस स्त्री को भूल जाओ
जिसे तुम प्यार करते हो

छोटे शहरों की स्त्रियों के जीवन को उन्होंने मैं एक स्त्री को जानता हूं कविता में चित्रित किया है–

इसलिए अँधेरे में
वह ज्यादातर चुप रहती थी
ज़्यादातर थरथराती रहती थी वह
यदि कुछ कहना हुआ
तो उसके काँपते हुए होठ
धीरे-धीरे बोलते थे
सिर्फ़ कुछ शब्द
जिसका अर्थ कुछ भी हो सकता था
या फिर कुछ भी नहीं।

परिवार की सुख शांति और संपन्नता के लिए गांव और कस्बों की महिलाएं अपने आपको चूल्हे में झोंक देती हैं। कोल्हू के बैल की तरह दिनभर खटती हैं। पूरे घर को खाना खिलाती हैं और अंत में रोटी का दो निवाला खा कर सो जाती हैं। लेकिन यदि किसी प्रकार की कोई कमी हो गई तो पुरुष अपनी हेठी दिखाते हुए मीन-मेख निकालते हैं जिससे घर का पूरा माहौल ही खराब हो जाता है । नमक कविता की इन पंक्तियों को देखिए-

पुरुष जो कि सबसे अधिक चुप था
धीरे से बोला–
'दाल फीकी है'
'फीकी है?'
स्त्री ने आश्चर्य से पूछा
'हाँ फीकी है

मैं कहता हूँ दाल फीकी है पुरुष ने लगभग चीख़ते हुए कहा–

पुरुषवादी समाज में महिलाओं को उनका वह हक नहीं दिया गया जिनकी वह हकदार रही हैं। पग-पग पर उपेक्षा और पुरुषों के व्यर्थ के दंभ ने स्त्रियों को तोड़ने का काम किया है। कवि केदारनाथ सिंह ऐसी मनोवृति के खिलाफ स्त्री के पक्ष में खड़े होते हैं-

जितनी वह चुप थी
बस उतनी ही भाषा
बची थी मेरे पास
बस उतना ही अनंत मेरी झोली में था
जितना जल्दी-जल्दी
ढल रहा था दिन।

सामाजिक ताने-बाने में अभी भी स्त्रियों को बराबरी का दर्जा प्राप्त नहीं हो पाया है। गांव और कस्बों की कौन कहे, दिल्ली-मुंबई से लंदन और न्यूयॉर्क जैसे महानगरों में भी स्त्रियों के साथ सौतेला व्यवहार किया जाता है। संयुक्त राज्य अमेरिका जैसा अति विकसित और प्रगतिशील देश अभी अपने प्रथम महिला राष्ट्राध्यक्ष की प्रतीक्षा कर रहा है। विकासशील और दूसरे अशांत देशों में स्त्रियों की दशा और भी खराब है। फिर भी जो लोग विचारों से प्रगतिशील है वह स्त्री के पक्ष में खड़ा होते हैं। एक-एक एक स्त्री के दुख-दर्द के बहाने पूरी स्त्री जाति की वेदना को शब्दों में समाहित कर कविता का रूप देते हैं । केदारनाथ सिंह ऐसे ही कवियों में एक हैं। चलते चलते उनकी कुछ और पंक्तियों को देखा जाए–

हाथ
उसका हाथ
अपने हाथ में लेते हुए मैंने सोचा
दुनिया को हाथ की तरह गर्म और
सुंदर होना चाहिए
1980

जाना
मैं जा रही हूँ-उसने कहा
जाओ- मैंने उत्तर दिया
यह जानते हुए कि जाना
हिंदी के सबसे खौफनाक क्रिया है
1978

संदर्भ :

1. केदारनाथ सिंह, पचास कविताएं, नई सदी के लिए चयन, वाणी प्रकाशन
2. तीसरा सप्तक, संपादक अज्ञेय, 1959
3. केदारनाथ सिंह की कविताओं में स्त्री चैताली सिन्हा आजकल जुलाई, 2019
4. सृष्टि पर पहरा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 2014
5. अकाल में सारस (साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित कृति) 1989 राजकमल प्रकाशन

●

डॉ. नीतू कुमारी
602 बी, ब्लॉक पाटलिपुत्र रेल परिसर,
दीघा, पटना 800012

जो पुरुष अपने ही समान दूसरों को भी सुखी देखने की कामना करते हैं, उनके पास रहने से विद्या प्राप्त होती है और अज्ञान का अंधकार दूर होता है। धन प्राप्त होता है और दरिद्रता का विनाश होता है। अतएव हम सदैव आत्मदर्शी महापुरुषों के समीप रहें।

-यजुर्वेद

समय सबसे बड़ा आलोचक है

आलोचना एक विवेचनात्मक कर्म है। इसे सृजन साहित्य से अलग कर्म माना जाता है। लेकिन साहित्य से प्रत्यक्ष जुड़ा होने के कारण इसे साहित्य में शामिल किया जाता है। फिर भी यह सृजन से अलग सर्जन कहें, उत्सर्जन है।

आलोचना वह पाठ नहीं है जो हल्के साहित्य सम्मेलनों में छोटी पोटी के लोगों द्वारा लिख लाखकर रचनाकारों के सामने किए जाते हैं, आलोचना वह पाठ भी नहीं है जो आलोचक का नाटक करने वाले लोगों द्वारा उच्च पुरुस्कारों या संस्थाओं के पुरस्कारों को प्राप्त करने के लिए उनसे जुड़े रचनाकारों को रिझाने के लिए प्रशंसा जाप का प्रारूप पाठ बने हों, आलोचना वह पाठ भी नहीं है जो किसी विधा पर 50 लेखों की किताबों से अंश लेकर उन रचनाकारों को अपनी ही रचना सुनाने का जाप हो, आलोचना वह जाप भी नहीं है जो निज मंदिर में कथा वाचक द्वारा खड़े होकर किए जाते हैं ; आलोचना इन सबसे अलग विषयवस्तु है। आलोचना का काम रचना पुनर पाठ नहीं है। यह पचास-साठ किताबों को लेकर उनमें से पंक्तियां लिखकर बोलने का काम नहीं है। आलोचना का काम आलोचना मार्ग पर सरल सरल पथ गमन है, रचना के सूक्ष्म पहलुओं को प्रकाशित करना है, रचना को साहित्य के सामने उघाड़ना है, खोलना है , किसी पराई हवा में उड़ बिखेरना नहीं है। आलोचना को समझना जरूरी है। बिना मूरत देखें के ही दर्शन का मोल कौन करता है? बिना आंखों वाले! बिना आंखों वाले बिना सहज कृति अवगाहन और बिना आलोचना को भलीभांति जाने कुछ कहेंगे तो उसका लाभ किसको नहीं मिलेगा! उस आलेख को भी नहीं, और आलेख लेखक को भी नहीं।

कुछ कृतियां आलोचना की बताई जाती है। किनसे? बिना आंखों वालों से। अंधों की गति तो मजबूत होती है लेकिन यह अंतर होती है। यह किसी भी विधा को अपनी इस अंधी गतिशीलता से किसी भी विधा को पटक सकते हैं। राजस्थानी में आलोचना के नाम पर यही प्रदर्शित हुई, है। आलोचना नहीं ।

भाषा की समृद्धता किसी कृति की उत्कृष्टता न्यूनता आलोचना में आती है, लेकिन सरसरी सरसरी सुंदर भावुक टिप्पणियां व लाभप्रद सोच की बुद्धि का प्रयोग की हुई रचनाएं आलोचना का भाग व काम नहीं होती। इतिहास लेखन आलोचना से अलग लेखन कार्य है। किसी कृति या कृतियों पर विवेचनात्मक लेखन आलोचना की श्रेणी में कब लिया जाएगा? इसका निरूपण विवेचना करने वाले के अपनाए संसाधनों और आलोचना - ज्ञान पर निर्भर करेगा। विशेषकर राजस्थानी में 'बड़े' आलोचक इस आलोचना पाठ में नहीं आते। जिन से जुड़े हैं उनके प्रशंसा पाठ एवं जगह-जगह पर प्रचार पाठ से आलोचना स्थापित नहीं होती ,और न आलोचक। आलोचना का काम पात्र को भी जानना होगा।

बिना काम जाने काम की बातें नहीं की जा सकती। भले ही उन्हें कोई पुरस्कृत करा लें।

हम एक उदाहरण लेते हैं। नाटक का। हमें नाट्य कृति को आलोचना में लेना है, तो नाटक विधा पर पूरी आंख रखनी है। थोड़ा तुलनात्मक भी रहना, थोड़ा रंगमंच पर भी रहना है; नाटक को इसी भांति देखनाहै। तो आलोचना का काम कथ्य की विषय विविधता, देशकाल, भाषा चिंतन, शिल्प, रंगमंचीयता, नाट्य अनुभूति दर्शक प्रभाव, अंक-दृश्य, वातावरण सृष्टि रूप आदि का काम आलोचना के काम हैं। नाटक आलोचना में रंगमंचीयता को सूक्ष्मता से देखा जाता है क्योंकि नाटक दृश्य विधा है। नाटक कृति में आलोचना के काम काफी बढ़ जाते हैं। नाटक में जहां शब्द मौन जाते हैं वहां अभिनय उस गुत्थी को खोल देते हैं। आंगिक अभिनय : होठों के द्वारा, मुखाकृति, मुंह हिलाने आंखें हिलाने, आंख स्थिति, माथे की सलवटें, मुंह के शांत इशारे आदि-आदि इतने शांत मूक अभिनय है जो बिना शब्दों के नाटकट की बात बताते हैं। रंगमंच के लिए नाटक में क्या छोड़ा ढ है क्या जोड़ा है; यह काम आलोचक हैं। इन सबके लिए नाट्य समीक्षक के भीतर गहरी रंगमंच की समझ होनी चाहिए। ऐसे दांत दिखाते लिखने-बोलने वाले बात करने से आलोचना की बात नहीं बनती। नाट्य समीक्षक को रंगमंच की भाषा का ज्ञान आलोचना के लिए होना जरूरी है।

मुझे एक वाकया याद है। राजस्थानी के एक नाट्य समारोह में एक आकाशवाणी- दूरदर्शन के बड़े अधिकारी, आलोचकों में शुमार कवि हृदय साहित्यकार ने एक नाटककार के लिए यह कह दिया कि ...राजस्थानी भाषा के पहले और अंतिम नाटककार हैं...। यह बात श्रोताओं के पची नहीं। सवाई माधोपुर के एक कवि ने इस पर आपत्ति की तो, जिस नाटककार पर यह बातें हो रही थी वह भी मंच पर मौजूद थे। असहज हो गए। बोले, आपको पता नहीं विद्वान आलोचक ने क्या कहा है? राजस्थानी के प्रथम और अंतिम नाटककार!..

मैं मंच पर था, मुझे हल्की-सी हंसी आ गई। श्रोताओं ने हंसी को इस स्थिति की आलोचना में ले लिया। असल में, तीनों ही आलोचना के दायरे में नहीं थे। असहज लेखन संभाषण तथा कथन तीनों, आलोचनात्मक के काम में शामिल नहीं हो सकते।

राजस्थानी भाषा की स्थिति साफ है। वह आलोचना के दायरे में नहीं आई है। इस कारण आलोचक भी नहीं बने। आलोचना के काम और नाम भी वे नहीं जान पाए। आलोचना- आलोचना करने से आलोचना खड़ी नहीं होती। आलोचक प्रखर आलोचक आदि-आदि बोलने से आलोचक नहीं बन जाते। साहित्य अकादमी दिल्ली 'अशांत' को पुरस्कृत करआलोचक नहीं बना सकती । दिल्ली की तो स्थिति ही बड़ी खराब है। रचनाकार शांत मन से लिखते रहें। समय सबसे बड़ा आलोचक है।

- बीएल माली अशांत
3/3 4 3 मालवीय नगर,
जयपुर (राजस्थान) ●

नारी सशक्तिकरणः वर्तमान संदर्भ में

इस विषय पर सोचते दीन दुनिया की सारी तकलीफों से निजात दिलाने वाली निद्रा भी बेगानी से हो गई जो मुझे अतिशय प्रिय है। वास्तव में इस विषय को लेकर ढेरों अंतर्द्वंद मन में उठने लगे और महिला सशक्तिकरण का तात्पर्य ही विचारों की ऊहापोह में कुछ धुंधला सा हो गया जिसका स्पष्ट अर्थ समझने में दिनाग के सारे तार खिंच गए।

महिला सशक्तिकरण का तात्पर्य या केवल शाब्दिक अर्थ महिलाओं को सशक्त बनाना है या इससे इतर, इससे बढ़कर कुछ और?

आज के समाज में महिला सशक्तिकरण का तात्पर्य सिर्फ पुरुषों की बराबरी प्राप्त करना तथा उससे भी बढ़कर पद प्राप्ति, उससे भी बढ़कर भौतिक सम्पन्नता अथवा उससे भी अधिक स्वतंत्रता आदि है। लेकिन क्या यही वास्तव में महिला सशक्तिकरण है? मेरी दृष्टि में महिला सशक्तिकरण

का अर्थ केवल शारीरिक शक्ति संपन्नता नहीं है, बल्कि वह इससे बढ़कर इससे इतर एक बढ़ी हुई अंतश्चेतना है। क्या आज भारतीय सामाजिक जीवन में नारी को सशक्त होने की वास्तव में आवश्यकता है? क्या वह वर्तमान में सशक्त नहीं है?

अरे 'यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमंते तत्र देवता।
यत्रैतास्तु न पूज्यंते सर्वास्तत्राफला क्रिया।।'

को मानने वाले देश में क्या कभी नारी की स्थिति निम्न रही है? भारतीय समाज को दिशा और आदर्श प्रदान करने वाले रमामचरितमानस में प्रारंभिक वंदना में तुलसीदास जी नारी को 'उद्भवस्थिति संहारकारिणी क्लेश हारिणी' बताते हैं। क्या समाज में ऐसी स्थिति प्राप्त नारी को किसी सशक्तिकरण की आवश्यकता रही है।

नारी तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास रजत नग पग तल में।
पीयूष स्त्रोत सी बहा करो, जीवन के सुंदर समतल में।।

जहां एक ओर नारी को श्रद्धा रूपिणी तथा अमृत स्त्रोत को संसार में बहाने वाली बताया गया है। क्या उस समाद्रज में नारी को और सशक्त होने की आवश्यकता है?

'दया माया ममता लो आज मधुरिमा लो अगाध विश्वास।
हमारा हृदय रत्न निधि स्वच्छ तुम्हारे लिए खुला है पास'

जहां स्त्री को दया, माया, ममता से युक्त तथा नारी हृदय को स्वच्छ रत्नों की निधि बताया जा कर पूजा की जा रही है। क्या उस समाज में नारी को सशक्तिकरण की आवश्कता पड़ गई? जहां देवता भी अपने परिचय में स्त्रियों को साक्षी मानकर अपना संबोधन देते हैं। जहां देवों को हवि देने से पहले उनके आह्वान में उनकी पत्नियों के नाम पुकारे जाते हैं। ओम पार्वतीपतये नमः, हे रमापति, हे लक्ष्मीपति, भवानी शंकरौ वंदे, सीतारम, राधाकृष्ण, जहां देव गणों को भी अपना परिचय देने के लिए स्त्रियों को सामने रखना पड़ा उनका परिचय देना पड़े। जहां नारी सहधर्मचारिणी कहलाये।

उन आदर्शों के उपासक समाज में क्या कभी नारी को सशक्तिकरण की आवश्यकता है? जहां की वैदिक परंपरा में विश्ववरा जैसी नारियों को अपौरुषेय और ईश्वरकृत वेदों का दर्शन कराया गया, जहां मैत्रेयी, गार्गी, विदुला जैसी नारियां अपने पांडित्य का प्रदर्शन पुरुषों के सम्मुख करें तथा उनसे अपनी प्रतिभा का लोहा मनवायें। क्या उस संस्कृति में भी नारियों को सशक्तिकरण की आवश्यकता है? आखिर सशक्तिकरण की आवश्यकता क्यों पड़ी? सोचने की बात यह है कि वास्तव में उस स्थान से नारी के पतन का कारण क्या रहा? इस विषय में दो तरह का कारण देख पाता हूं।

एक तो वह जिसकी उत्तरदायी नारी स्वयं हैं और जिसका निराकरण व्यक्तिगत स्तर पर उनके द्वारा आसानी से किया जा सकता है। दूसरा कारण समाज की तात्कालिक परिस्थितियां रही है जिनके कारण ऐसी व्यवस्था अपनानी पड़ गई जिसके कारण हमारे समाज में ना चाहते हु भी स्त्री को निम्न का दर्जा प्रदान कर दिया गया।

यह सच है कि विगत कुछ शताब्दियों में स्त्री अपने पद से बहुत नीचे चली गई है लेकिन क्या हमें नहीं लगता कि इसका एक कारण हमारी सोच में परिवर्तन का आना रहा है? आज सशक्तिकरण की आवाज के साथ नारी स्वतंत्रता की पुरजोर वकालत कर रही है। क्या यह सिर्फ स्वतंत्रता है या इसकी आड़ में कुछ और? पुरुष द्वारा किये जा रहे समस्त कार्यों को करने की होड़ चाहे वह उचित हो अथवा अनुचित। क्या यह सही है? आज महिलाएं पब जाना, किटी पार्टीज का आयोजन, आधुनिकता के नाम पर अमर्यादित फैशन और मादक पदार्थों का सेवन करना, चाहे जिस समय चाहे जहां जाएं, सब कुछ अपने मन का करना क्या यही सशक्तिकरण का तात्पर्य है? मेरी नजर में आज का महिला सशक्तिकरण वास्तव में पाश्चात्य बौतिकतावाद के सानिध्य में पल बढ़ रहे उन विचारों का प्रतिफलहै जहां नारी की स्वच्छंदता, उसका चकाचौंध से युक्त जीवन जीना तथा स्वेच्छाचारिणी हो जाना ही सशक्तिकरण का पर्याय बन गया है। वास्तव में आज भारतीय नारी अपने मूल गुणों को छोड़कर उसका अंधानुकरण कर रही है तथा उसके जैसी जीवन

शैली को अपनाने को ही महिला सशक्तिकरण समझ रही है। आज भौतिकता की चकौचौंध में नारी अपने नैसर्गिक गुणों को निरंतर खोती जा रही है। सामाजिक व पारिवारिक कार्यों की अपेक्षा आज जिम जाना उसे अधिक भाता है।

एक नई परंपरा अभी कुछ दिनों में देखने को मिला है। जिसे कहते हैं 'ब्रेस्टफीडिंग डे' मनाना। इसमें माताएं अपने शिशुओं को स्तनपान कराकर अन्य महिलाओं को इसके लिए जागरुक करती हैं कि शिशुओं को स्तनपान अवश्य करायें। अरे यह कहां की संस्कृति है? अरे आज हमारी माताएं बहने अपने शिशुओं को पालकर भी स्तनपान नहीं कराती। इसेत्क पीछो जो भी सोच रही हो, लेकिन क्या यह सशक्तिकरण है? हमारे यहां तो मां अपना शरीर तो क्या आत्मा तक बच्चों की खातिर निछावर कर देती हैं। वहां यह संस्कृति क्यों कर? जब भी कोई ललकारता है तो यही कहावत मुख से निकलती है कि मां का दूध पिया है तो बाहर निकल और बच्चा चाहे जो हो यह चुनौती सहन नहीं कर पाता, बाहर आता है। उस देश में ब्रेस्टफीडिंग डे मनाना, क्या हमें अपनी स्थिति को निम्न स्तर तक पहुंचाने का आईना नहीं है? बच्चों को किसी भी समय, कहीं भी जाने देने की स्वतंत्रता देने वाली शिक्षित, संस्कारित, तथा सभ्य कहलाने वाली सशक्त मां की अपेक्षा मेरी नजर में तो गांव की वह अनपढ़ तथा असभ्य कहलाने वाली अथवा समझी जाने वाली माता अधिक सशक्त लगती है जो घर से बाहर जा रहे बेटा या बेटी को यह हिदायत जरूर देती है कि बेटा घर जल्दी लौटना। आज की शिक्षा पद्धति जिसमें अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त कर अंग्रेजी मानसिकता से संपृक्त होकर ही हमें ऐसा लगता है कि हम तो कमजोर हैं, हमें सशक्त होना चाहिए। अरे जो यह अवधारणा को जन्म देने वाले हैं वास्तव में उन्हें इसकी आवश्यकता है। क्योंकि इस तथाकथित सभ्यता की हिमायती वे नारियां आज नारीत्व के मूल गुणों से शून्य हो चुकी हैं।

नारी तो दया, क्षमा, ममता, सहिष्णुता, करुणा, सहानुभूति की प्रतिमूर्ति है, जो कि ईश्वर प्रदत्त गुण हैं। ये सभी गुण देवोचित गुण हैं। जिन गुणों की प्राप्ति के लिए पुरुष युगों-युगों से घर-बार, राज-पाट छोड़कर तपस्या करता हुआ वन-वन भटकता है। वह सारे दैवीय गुण तो नारी में जन्मजात हैं।

अब रही बात सशक्तिकरण की तो मैं सोचता हूं कि जो गुण नारी को ईश्वर द्वारा प्रदान किए गए हैं उन गुणों को ही उत्कृष्ट रूप में यदि साधने का प्रयत्न किया जाए तो किसी भी सशक्तिकरण या शक्तिकरण की आवश्यकता ही नहीं है। गोदान उपन्यास को लिखते हुए प्रेमचंद कहते हैं कि 'जब पुरुष नारी के गुणों को धारण कर लेता है तो वह देवत्व को प्राप्त कर लेता है' तो फिर नारी इन गुणों को हीन क्यों समझती है? खैर जो भी स्थिति है तो वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भी नारी किसी भी रूप में अक्षम नहीं है। आज हर क्षेत्र में चाहे राजनीति हो, आर्थिक हो, सामाजिक हो, विज्ञान हो अथवा धार्मिक। प्रत्येक क्षेत्र में नारी शक्ति अपना पुरजोर प्रतिनिधित्व कर रही है। उसके योगदान से कोई क्षेत्र अछूता नहीं है। चलो आज समाज में नारी को कम माना जा रहा है तो सरकारों के द्वारा इनके उत्थान के लिए अनेक प्रावधान भी किए गए हैं। सब सभी क्षेत्रों में महिलाओं के सशक्तिकरण हेतु विशेष प्रधानता दी जा रही है। नौकरियां हो या अन्य क्षेत्र सब में आरक्षण का प्रावधान है यहां तक कि पंचायती राज में भी उनका प्रतिनिधित्व तय किया गया है जिससे उनके उन्नयन का कोई भी मौका रह ना सके।

अब एक सबसे बड़ी- आज के समय में कोई महिला अशक्त नहीं है अपितु आज तो नारी के सामने तो पुरुष ही अपने को अशक्त महसूस करते हैं और उन बेचारों को ही पुरुष सशक्तिकरण की ज्यादा आवश्यकता रहती है। यह उचित नहीं है। आज की किसी भी महानगरीय शिक्षित सभाओं की स्थिति तो ऐसी है कि कुछ सशक्त महिलाएं ही सामने बैठी हुई अनेकों सशक्त महिलाओं से कहती हैं कि हमें सशक्त होना चाहिए। अरे वास्तव में इन कार्यक्रमों का आयोजन तो गांव देहात के क्षेत्रों में,

झुग्गी झोपड़ियों में, गांव-ढांढियों की उन झोंपड़ियों में किया जाना चाहि जहां की नारी यह जानती ही नहीं कि सशक्तिकरण होता क्या है जिनका जीवन आज बी अत्यंत कष्टप्रद स्थिति में जिया जा रहा है। शिक्षा तथा सुधार जैसी बातों से जो पूर्णतया अनभिज्ञ है। अरे हम तो किसी शुभ कार्य से पहले कन्याओं का पूजन तथा भोजन देवी के प्रतीक रूप करते-करवाते हैं। गांव देहात में अनपढ़ महिलाओं के सामने इन कार्यक्रमों को करने से उनमें एक चेतना जागृत होगी, उनमें कुछ सुधार होंगे, वे भी जागरूक होंगी और उनका सामाजिक जीवन और सभी क्षेत्रों में जीवन बेहतर हो सकेगा।

निष्कर्ष : आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी बाणभट्ट की आत्मकथा में लिखते हैं कि 'नारी की सार्थकता पुरुष को बांधने में है किंतु नारी जीवन की सार्थकता उसे मुक्ति देने में है।' महिला सशक्तिकरण का तो मैं सोचता हूं कि जो गुण नारी को नैसर्गिक रूप से प्राप्त हैं उन्ही शक्तियों को उन्हीं गुणों को उच्चता के शिखर पर पहुंचाकर जीवन जीना ही सबसे बड़ा सशक्तिकरण है।

– अक्षांश भारद्वाज 'अक्षर'
शोधार्थी, हिंदी साहित्य
123, स्वर्ण जयंती नगर, एनएच-11 के पास
भरतपुर (राज.) 321001
मो. 765331113 ●

देशभक्त रानी अब्बक्का चौटा, जिन्हें भुला दिया

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम से 300 वर्ष पूर्व की इस गाथा से ज्ञात होता है कि सीमित साधनों के होते हुए भी रानी अब्बक्का चौटा ने अपना राज्य उल्लाल आक्रमणकारी पुर्तगालियों से बचाया, साथ ही मंगलोर किले को भी उनके कब्जे से छुड़ाया था। वे जैन थीं और उनकी सेना में मुस्लिम सिपाही भी थे। देश के कर्त्ता-धर्ता उन्हें भूल गये, इतिहास में उनका नाम दर्ज नहीं है। केवल एक डाक टिकट जारी हुआ, दो नाव के नाम उनके नाम पर रखे गये एवं पूरे भारत में उनकी दो मूर्तियां बनाई गई थी। इसके मुकाबले उत्तर प्रदेश में तो अनजान हाथियों की अनगिनत मूर्तियां स्थापित की गई थीं।

15वीं शताब्दी में भारतीय क्षेत्र में पुर्तगाली शासन का बोलबाला वहां गिरजाघर बनाई थी, उसके उपरान्त मुम्बई, मंगलोर पोर्ट, दम्मन, बीजापुर एवं कालीकट को अपने अधीन किया था।

मंगलोर (कर्ना.) से 14 कि.मी. दूर उल्लाल एक छोटा सा राज्य था, जिसका शासन 30 वर्षीय अब्बक्का चौटा करती थीं। 1555 ई. में पुर्तगाली शासन ने उनके राज्य पर विजय हेतु दो नाव एवं कुछ सैनिक भेजे थे, किन्तु वे लौट कर वापस नहीं पहुंचे। फिर एडमायरल सिल्वेरिया के नेतृत्व में 2 जहाज भेजे गये, घायल अवस्था में ऐडमायरल शीघ्र ही वापस पहुंचा था। क्रोधित हो इस बार बड़ी सेना भेजी गई, किन्तु कुछ लोग ही बच कर वापस पहुंचे थे। इसके उपरान्त पुर्तगाली शासन ने मंगलौर बन्दरगाह एवं किले को अपने अधीन कर लिया। अबकी बार जनरल पैक्सटो के नेतृत्व में बड़ी संख्या में सैनिक आधुनिक हथियार के साथ उल्लाल पहुंचे। वहां पहुंचने पर उन्हें उल्लाल वीरान मिला, वे इसे अपनी विजय मानकर जश्न मनाने लगे। अक्समात रानी चौटा ने चुने हुए 200 सैनिकों सहित उन पर धावा बोल दिया, अनेक सैनिक एवं जनरल पीक्सटो को भी मृत्यु के घाट उतार दिया गया था।

इसके उपरान्त रानी ने मंगलोर किले की यात्रा कर, अपनी सूझ-बूझ से इस किले को पुर्तगालियों से मुक्त कराया, वहां के एडमायरल मैस्करेनस को भी मार डाला था। इसके बाद 100 किमी. दूर स्थित पुर्तगाली कालोनी कुन्दापुर को अपने अधीन कर लिया। पुर्तगाली शासकों ने अंततः रानी को उन्हीं के पति के विश्वासघात से बंदी बना लिया। जेल में भी रानी ने विद्रोह किया, किन्तु वहां से भागते समय उन्हें मार दिया गया था। इस प्रकार इस अदम्य साहसी, देशभक्त, वीरांगना रानी के जीवन का अंत हो गया।

जितेंद्रनाथ जौहरी
उदयपुर (राज.), मो. 8003188087 ●

स्मार्ट फोन छोटे बालकों के लिए घातक

विज्ञान के अनेक चमत्कारपूर्ण आविष्कार प्रतिदिन होते रहते हैं। स्मार्ट फोन भी उनमें से एक ऐसा ही आविष्कार है। वर्तमान में सम्पूर्ण विश्व के ताजा तरीन समाचार पल भर में एक कोने से दूसरे कोने तक पहुँच जाते हैं। अनेक घटनाओं को तो हम अपने टी.वी. स्क्रीन पर जीवन्त होते हुए ही देख लेते हैं। वास्तव में यह एक अद्वितीय चमत्कार ही है। जरा सोचिए हमारी पीढ़ी पूर्व के व्यक्ति आज तक जीवित होते तो दैनिक जीवन में आये परिवर्तन को देखकर उनकी मनःस्थिति क्या होती? शायद वे किंकर्तव्यविमूढ़ होकर दांतों तले उंगली दबा लेते।

आज प्रत्येक घर में हर सदस्य के पास स्मार्ट फोन है। घर के वरिष्ठ सदस्य अपने आवश्यक कार्य के लिए इनका उपयोग करते ही हैं, यह तो उचित है पर शिशु जो अपनी जननी की गोद में है वे भी स्मार्ट फोन को देखकर रोना बंद कर हँसने का उपक्रम करने लगते हैं। माताएँ भी अपने ममता भरे हाथों से उन्हें स्मार्ट फोन दे देती हैं मानो कोई खिलौना है।

वर्तमान में बाजार की हर वस्तु स्मार्ट फोन के माध्यम से ऑनलाइन क्रय की जाती है। न पर्स में पैसे रखने की झंझट, न घर से थैला ले जाने का कार्य। ऑनलाइन पेमेन्ट करो और मनचाही वस्तु आपके द्वार पर। आज से पाँच-दस वर्ष पूर्व हमें बाजार जाते समय साथ में नोटों की गड्डी लेना, खुल्ले पैसे का भी ध्यान रखना, जेब कतरों से सावधान रहना, थैले ले जाना, सारा सामान उठाना, टेम्पो टेक्सी या सीटी बस की प्रतीक्षा करना, इसमें अच्छी खासी कसरत हो जाती थी। अध्ययन करने वाले बच्चे तो अपना अधिकांश गृह कार्य स्मार्ट फोन के माध्यम से ही करते हैं, वो इसका उपयोग खेल के लिए करते हैं। अभी कुछ समय पूर्व 'ब्लू व्हेल गेमों के कारण कई बालक अपना जीवन समाप्त कर चुके हैं। स्मार्ट फोन के माध्यम से बच्चे वे सब जानकारी प्राप्त कर लेते हैं, जिन्हें इस उम्र में अभी नहीं जानना चाहिये। इस कारण समाज में चारित्रिक पतन होता जा रहा है। नर्सरी तथा प्रायमरी कक्षा में पढ़ने वाले बालक भी इससे अछूते नहीं हैं। गुरु ग्राम में एक नन्हें बालक की हत्या टायलेट में कर दी गई। आये दिन अबोध बालक-बालिकाएँ जिनमें कुछ तो एक-दो वर्ष की थी के साथ गलत कार्य किया गया। ये घटनाएँ सभ्य समाज को शर्मसार करने के लिए पर्याप्त है।

हमारी गरिमामय संस्कृति कलंकित हो रही है। हमारे समाज के प्रबुद्धवर्ग आगे आएं और इस नई स्मार्ट फोन पीढ़ी को पतन की और जाने से बचाएँ। माता-पिता को अपने लाड़ले-लाड़लियों के स्मार्ट फोन-ज्ञान पर गौरवान्वित नहीं होना चाहिए। उनका यह ज्ञान उन्हें पतन की ओर धकेल सकता है। हाईस्कूल तथा इससे बड़ी कक्षाओं में स्मार्ट फोन विद्यार्थियों के लिए अध्ययन में सहायक हो सकता है, किंतु माध्यमिक स्तर तक के बच्चे मिट्टी के कच्चे घड़े के समान होते हैं। उन्हें तो इस डिवाइस से दूर ही रखना चाहिए। स्मार्ट फोन पर समय व्यतीत करने के बजाय यदि वे खेल के मैदान में शारीरिक खेल खेलेंगे तो वे तंदुरुस्त रहेंगे। उनका मानसिक व शारीरिक विकास भी होगा। खेल भावना का विकास होने से वे सक्षमतापूर्वक किसी समस्या का समाधान कर पायेंगे।

बच्चों को महानगरों में निवास स्थान से काफी दूर विद्यालय जाना होता है। किसी आवश्यक कार्य से उन्हें घर से संपर्क करना होता है। ऐसे समय यदि उनके पास छोटा मोबाइल फोन हो, जिनमें कुछ आवश्यक नम्बरों के द्वारा घर के सदस्यों से बात कर उन्हें वस्तु स्थिति से अवगत करा सके तो उचित होगा। स्मार्ट फोन का उपयोग यदि करना ही हो घर के किसी बड़े व्यक्ति के सम्मुख उनके निर्देशन में करे, ताकि अध्ययन सम्बन्धी आवश्यक जानकारी प्राप्त कर लेवें। अकेले में स्मार्ट फोन का उपयोग बालक के स्वर्णिम भविष्य में घातक सिद्ध होगा।

डॉ. शारदा मेहता

सीनि. एमआईजी-103, व्यास नगर,
ऋषिनगर विस्तार, उज्जैन (म.प्र.) 456 010
फोन- 0734-2510708, मो. 9406660280

●

प्रतिस्वर

भारतीय विद्या मंदिर द्वारा प्रकाशित अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका 'वैचारिकी' का संयुक्तांक मार्च-अप्रैल/मई-जून 2020 मिला, धन्यवाद।

वर्षानुवर्ष विचारों की सतत श्रृंखला के रूप में पाठक 'वैचारिकी' को पढ़ते आ रहे हैं। यह एक पत्रिका है जिसमें साहित्य, इतिहास, भौगोलिक परिवेश, पुराण, भाषा, विज्ञान, पर्यावरण आदि सभी क्षेत्रों के उत्तमोत्तम ज्ञान को बुना जाता है। पत्रिका का चेहरा उसका संपादकीय होता है और वैचारिकी के संपादकीय को बड़े मननपूर्वक आदरणीय श्री विट्ठलदास मूंधड़ा जी ने कलमबद्ध किया है। कोरोना काल को करु ण काल की संज्ञा देते हुए आपने इस महामारी के सामाजिक-आर्थिक-सांस्कृतिक व राजनीतिक प्रभाव व संघर्ष पर अपने विचार प्रस्तुत किए हैं। प्रवासी मज़दूरों की जद्दोजहद से लेकर वैश्विक परिदृश्य में महामारी के मरात्मक परिणाम को आपने व्याख्यायित किया है।

पत्रिका में डॉ. मृदुल जोशी द्वारा हिंदी काव्य में गंगा के पौराणिक व आध्यात्मिक महत्व पर विचार मंथन प्रस्तुत करते हुए गंगा की भौगोलिक विशेषताओं, वनस्पतियों के सौंदर्य को भी संजोया गया है। आपने गंगा के प्रवाह के साथ हिंदी साहित्य की कल-कल धारा का रोचक विवरण दिया है। महिलाओं को घर की चारदिवारी में बांधकर रखने की जड़ सोच को चुनौती देती हुई डॉ. विद्या केशव चिटको का शोधपत्र 'विज्ञान जगत की महिलाएं' में आनंदी बाई, रखमबाई सावे राउत, जानकी अम्मल, असीमा चटर्जी, श्यामला चितले जैसी विदूषी भारतीय वैज्ञानिकों के योगदान को लिपिबद्ध किया है। लेखिका ने जीवन में परिवर्तन का कारक बनने वाले वैज्ञानिक आविष्कारों व नवनवोन्मेषी प्रतिभासम्पन्न महिला वैज्ञानिकों की उपलब्धियों का प्रामाणिक दस्तावेज प्रस्तुत किया है। भारत के इतिहास में किंवदन्तियों, मिथकों, लोककथाओं का घालमेल होता रहा है जिस पर प्रकाश डालते हुए डॉ. सतीश कुमार त्रिगुणायत ने इतिहास लेखन की भारतीय अवधारणा में वैदिक साहित्य, रामायण-महाभारत, बौद्ध व जैन साहित्य का महत्व दर्शाया है। साहित्य सदा से ही प्रकृति से प्रभावित व अनुपे्ररित रहा है जिसका सटीक आकलन डॉ. वासुदेवन 'शेष' ने अपने निबंध में किया है। रावेल पुष्प जी ने 'होला महल्ला' नामक निबंध में सिक्ख गुरु ओं द्वारा होली के त्योहार में वीरता, उत्साह, भाईचारे व शौर्य का समावेश करते हुए उसे निखारने के उद्यम की विशिष्टता से पाठकों को परिचित कराया है। डॉ. प्रेमशंकर त्रिपाठी जी ने अपने लेख में भारतीय संस्कृति व चिंतन में श्रीराम की सारस्वत उपस्थिति को गहन विवेचन के साथ प्रस्तुत किया है। लेखक सीताराम पांडेय ने 'अहल्या की अंतर्व्यथा' में पातिव्रत धर्म, शील, पवित्रता, विश्वास के संदर्भ में अहल्या का मूल्यांकन करते हुए हिंदी साहित्य के उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। डॉ. आर.एम श्रीनिवासन द्वारा रचित लेख में तमिलनाडु में श्रीरामनवमी उत्सव की रोमांचकारी छवि को प्रस्तुत करते हुए त्योहारों के देश भारत के सांस्कृतिक धरोहर की प्रस्तुति पठनीय है। लाहौर दरबार के

अल्पज्ञात कवि माधोदास के कृतित्व का उल्लेख करते हुए डॉ. सुनीता शर्मा ने हिंदी साहित्य के अनछुए व अल्पचर्चित रचनाकारों को मुख्यधारा में सम्मिलित करने का प्रयास है। इसी प्रकार अन्य आलेखों में हिंदी भाषा, हिंदी साहित्य में नारी विमर्श, हिंदी - गुजराती गज़ल के तुलनात्मक अध्ययन, कबीर की साहसिक समाजधर्मिता आदि विषयों के द्वारा पाठक के चिंतन को उर्वर, सोच को व्यापक, रुचि को परिष्कृत तथा दृष्टि को उन्नत करने का सक्षम साहित्यिक प्रयास किया गया है। सभी लेखकों व संपादक मंडल को शुभकामनाओं सहित आगामी अंकों की प्रतीक्षा में ...

- डॉ रेशमी पांडा मुखर्जी
2-ए, उत्तरपल्ली, सोदपुर, कोलकाता-700110
मो-09433675671 ●

वैचारिकी का ताजा अंक मार्च-अप्रैल/मई-जून 2020 प्राप्त हुआ। यह अंक विभिन्न दृष्टिकोण से पठनीय, बहुआयामी और बहू उद्धेशीय है। इस अंक में भारतीय इतिहास, साहित्य, समाज और संस्कृति की छठा का समावेश हुआ है। विज्ञान जगत की भी बातें हुई है। डॉ. मृदुल जोशी का शोध आलेख 'हिन्दी काव्य में गंगा का पौराणिक व आध्यात्मिक स्वरूप' गंगा के ऐतिहासिक महत्व का बखान करती है। अति प्राचीन काल से प्रकृति साहित्य का अभिन्न अंग रहा है। प्रकृति के बिना साहित्य अधूरा है। परंतु आज हमारी प्रकृति और पर्यावरण संकट में है। वैज्ञानिक आविष्कार, जलवायु परिवर्तन एवं युद्ध में प्रयोग किए गए रासायनिक पदार्थों ने विश्व पर्यावरण एवं प्रकृति के सौन्दर्य को नष्ट कर दिया है। इस वजह से सारा मानवता खतरे में है। आज के रचनाकार बखूबी इस विषय पर लेखनी उठा रहे हैं। डॉ. वासुदेवन 'शेष' का आलेख 'साहित्य और प्रकृति का सामंजस्यपूर्ण संबंध' अति महत्वपूर्ण है। होली और रामनवमी पर कवि एवं आलोचक रावेल पुष्प और डॉ. आर. एन. श्रीनिवासन का आलेख 'होला महल्ला' और 'तमिलनाडु में रामनवमी' भारतीय इतिहास का सांस्कृतिक बोध कराता है। 'होला महल्ला' दो भिन्न शासन व्यवस्था एवं सामाजिक और सांस्कृतिक पहलुओं का लेखा-जोखा प्रस्तुत करता है। एक मुस्लिम संस्कृति जो विदेशों से आई थी और दूसरी जो इस देश की अपनी संस्कृति थी जिसके पुरौंधा गुरु नानक देव जी थे। एक व्यवस्था अत्याचार और इस देश के सभ्यता और संस्कृति के विनाशक थे तो दूसरा देश भक्ति ज्ञान और अध्यात्म के पुजारी थे। गुरु गोविंद सिंह जी होली के नाम पर उस गलत परंपरा का विरोध किए जो भारतीय सभ्यता और संस्कृति के प्रतिकूल था और जो अनायास ही हमारी संस्कृति में अंधानुकरनवश समा गई थी। आज हमारे देश की महिलाएं जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सक्रिय है, वह किसी भी मायने में पुरुषों से कम नहीं है। इस दृष्टि से डॉ. विद्या केशवजी का आलेख 'विज्ञान जगत में महिलाएं' और अंजना देवी की 'हिन्दी साहित्य में नारी विमर्श' आलेख एक महत्वपूर्ण कदम है। भारतवर्ष एक धर्म निरपेक्ष राष्ट्र जो सभी धर्मों के प्रति आदर और सम्मान की भाव रखती है। यहाँ के भाषा और साहित्य के विकास में सभी धर्मों के रचनाकारों का बराबर योगदान रहा है। हमारे प्राचीन ग्रन्थों, वेदों, पुराणों एवं भारतवर्ष से इतर धार्मिक ग्रन्थों जैसे बाइबिल, कुरान आदि धर्म ग्रन्थों में सृष्टि की संरचना की जो परिकल्पना की गई है, इसका ऊल्लेख गोपाल शर्मा के आलेख 'ऋग्वेद, बाईबिल और कुरान में सृष्टि-प्रक्रिया एवं सृष्टि-पूर्व की स्थिति' में मिलता है। इस अंक में प्रकाशित अन्य विद्वानों, रचनाकारों एवं आलोचकों के आलेख भी सराहनीय है। कुल मिलाकर देखा जाय तो यह अंक संग्रहणीय है। इतने सुंदर अंक परोसने के लिए 'वैचारिकी' परिवार को असंख्य धन्यबाद।

- प्रो. मकेश्वर रजक, हिन्दी विभाग,
मानकर कॉलेज, बर्दवान,
मो. 9332653595,
ईमेल- makeswar.rajak@redffmail.com

वैचारिकी पत्रिका का मई-जून 2020 का संयुक्तांक मिला। अपने पुराने स्वरूप को बरकरार रखते हुए इस अंक के सभी आलेख साहित्य और संस्कृति से संबंधित हैं। शोध-पत्र होने के कारण इन निबंधों की प्रामाणिकता स्वतः सिद्ध है। मुझे इसकी सबसे अच्छी लगती है इसकी अखिल भारतीय स्वरूप के प्रति निष्ठा। इसी अंक में डॉ मृदुल जोशी का लेख 'हिन्दी काव्य में गंगा का पौराणिक व आध्यात्मिक स्वरूप ' एक विस्तृत फलक समेटता हुआ सुन्दर आलेख है। इसी तरह डॉ. सतीश कुमार त्रिगुणायत का 'इतिहास लेखन की भारतीय अवधारणा' भी पठनीय निबंध बन पड़ा है। 'ऋग्वेद, बाइबिल और कुरान में सृष्टि-प्रक्रिया एवं सृष्टि-पूर्व की स्थिति' में लेखक ने एक जगह तीन महत्वपूर्ण ज्ञान-स्रोतों में उपलब्ध सूचनाओं को एकत्र करके पाठकों को संबोधित शोध-कार्य करने के लिए प्रेरित किया है। रावेल पुष्प ने 'होला महल्ला' में गुरु गोविन्द सिंह के द्वारा होली को अनूठे स्वरूप होला महल्ला के रूप में मनाने के पीछे छिपी उनके सामाजिक-राजनीतिक मंशा को बहुत ही सरस और शोधपूर्ण तरीके से पाठकों के सामने रखा है। अन्य निबंध भी अत्यंत ज्ञानवर्धक हैं। 'वैचारिकी' इसी तरह भविष्य में भी निरंतर अपने सारस्वत कार्य को संपादित करती रहे। हमारी मंगलकामनाएँ हैं।

-डॉ. आशुतोष
4 एच, सोहम अपार्टमेंट
358/1 एन. एस. सी. बोस रोड, कोलकाता-47
angashutosh@gmail.com, मो. 9874535401

वैचारिकी साहित्यिक पत्रिका मार्च-अप्रेल/मई-जून 2020 की प्रति सादर प्राप्त हुई। पूर्व की भांति इस पत्रिका में साहित्य की सभी विधाओं को समायोजित किया गया है। इस अंक में अपनी रचनाधर्मिता से जिन सम्माननीय साहित्यकारों ने अपना योगदान दिया है उन्हें नमन करता हूँ। इस अंक में विशेषकर हिंदी कावय में गंगा का पौराणिक व आध्यात्मिक स्वरूप (डॉ. मृदुल जोशी) जी ने पवित्र गंगा की महिमा का यशोगान गंगा वंदना के उदहरण से प्रस्तुत किया है जो प्रेरणादायी है। विज्ञान जगत में महिलाएं (डॉ. विद्या केशव चिटकोजी) का आलेख आज की युवा पीढ़ी महिलाओं के दिशा निर्देश देता है। महान महिलाओं ने विज्ञान के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान देकर महिला की गरिमा को बढ़ाया है। आज महिलाएं विज्ञान अंनुसधान इसरो में बड़ी अहम भूमिका निभा रही है और देश विदेश में महिलाएं अपनी वैज्ञानिक क्षमता से भारत का परचम लहरा रही है। मार्के का लेख है। बधाई देता हूँ ।

इतिहास लेखन की भारतीय अवधारणा (डॉ. सतीश कुमार त्रिगुणायतजी) का बड़ा ही मार्मिक लेख है इतिहास की अवधारणा, रामायण, महाभारत पुराणों, शिलालेखों ताम्रपत्रों के माध्यम से आलेख में कई महत्वपूर्ण जानकारियां दी हैं। जो उपयोगी और संग्रहनीय हैं। होला महल्ला-रावेल पुष्पजी का आलेख में गुरू गोंविदजी के विचार जो उन्होंने होली मनाने के बारे में प्रस्तुत किए हैं वे अहम और आवश्यक जानकारी ली है। सिक्खों में निहंगों की अहम भूमिका है वे बड़े बहादुर होते हैं। उनके करतब बड़े ही अदभूत होते हैं। गुरू गांविदजी सिक्खों के दसवें गुरू थे उनकी वाणी और विचारों ने खालसा पंथ की नींव को बल दिया और खालसा पंथ को यश की प्राप्ति दी। उनके मुगलों से निपटने की वीरता को देश सदैव स्मरण करेगा। राम हमारी संसकृति का सारस्वत हस्ताक्षर डॉ. प्रेमशंकर त्रिपाठी जी का आलेख मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान के आदर्शशील, गुणवान चरित्र को मुखरित करता है राम भारतीय संस्कृति की पहचान है भारतीयता की तस्वीर है।

तमिलनाडु में रामनवमी डॉ. आर. एम. श्रीनिवासन जिसमें तमिलनाडु स्थित रामेश्वरम के मंदिर की महिमा का बखान किया है। राम द्वारा शिव लिंग स्थापित कर उनकी आराधना करना और रामनवमी के महत्व को बारीकी से अपने आलेख में उकेरा है जो बहुत ही सराहनीय है। लेखक ने कड़े

परिश्रम से इस आलेख को हम तक पहुंचाया है प्रशंसनीय कदम है। आज कल नारी विमर्श को लेकर साहित्य में बहुत चर्चाएं हो रही है। साहित्य समाज का आईना है। नारी निश्चित तौर पर साहित्य का अंग है। नारी के बिना सब अधूरा है। हिंदी साहित्य में नारी विमर्श 'अंजना देवीजी ने नारी के सभी रूपों को क्रमवार रूप से प्रस्तुत किया है वे बधाई के पात्र है। क्या आज नारी पूजनीय है नारी को हम समाज में सही उचित सम्मान दिला पाये, आज भी नारी पर अत्याचार, शोषण, उत्पीड़न हम देख रह रहे है सुन रहे है क्या इसपर लगाम लगेगी? यह प्रश्न खड़ा होता है। ग़जल साहित्य की विद्या ही है जैसे काव्य पाठ, कहानी, उपन्यास नाटक उसी प्रकार ग़ज़ल लेखन की अपनी विधा है हिंदी गुजराती ग़ज़ल 'एक तुलानात्मक दृष्टि- प्रो भगवानदास जैन जी कई महान ग़ज़लकारों से इस लेख में उनसे पाठको का परिचय कराया जो तारीफेकाबिल है। इस अंक में प्रत्येक लेख हिंदी साहित्य की गरिमा में चार चांद लगाते हैं। मेरा मानना है चाहे संचार क्रांति कितने ही अपने पंख फैलाए। साहित्य की जगह कोई नहीं ले सकता। साहित्य महान है और रहेगा। मैं प्रधान सम्पादक एवं संपादक को इस विलक्षण अंक के प्रकाशन के लिए कोटिश साधुवाद देता हूँ और यह विश्वास करता हूँ कि वैचारिकी पत्रिका समाज के हित के प्रति साहित्य से फलती फूलती रहेगी। शुभाकांक्षी ....

डॉ. वासुदेवन शेष
चेन्नई -600 005

जनवरी फरवरी 2020 का अंक अक्टूबर के अंत में मिला था। उसे पढ़ भी नहीं पाया कि नवम्बर के प्रारम्भ में ही मार्च जून संयुक्तांक मिल गया। इस संयुक्तांक के सम्पादकीय में आपने गत महामारियों का विवरण देते हुए कोरोना के कारण बरबस उपजी अध्यात्मिकता का जो संकेत दिया है वहअस्थायी भले ही हो परन्तु उसने जनमानस को गहराई के साथ प्रभावित किया है। एक विचित्र सी निःसंगता का अनुभव सभी ने किया है, परन्तु साहित्यकार ने भी हिम्मत नहीं हारी है।

सामग्री की दृष्टि से यह अंक पर्याप्त समृद्ध है इसमें मृदुल जोशी का गंगा के आध्यात्मिक स्वरूप पर अध्ययनपूर्ण लेख तो है ही उन्होंने जनवरी-फरवरी 20 के अंक की समीक्षा भी प्रतिस्वर में दी है। विद्याकेशव चिटको का लेख भी विस्तार के साथ महिला वैज्ञानिकों का जानकारी देता है। इतिहास लेखन की भारतीय परम्परा लेख में सतीशजी का प्रयास सुन्दर है। होला महल्ला और तमिलनाडु में रामनवमी ऐतिहासिकता का अच्छा अहसास कराते हैं। यह अंक एक ओर जहां सुनीता शर्मा, वीरेंद्र सिंह और अंजना देवी जैसे शोधार्थियों को प्रोत्साहित करता है वहीं डॉ. गोपाल शर्मा का लेख ऋग्वेद, बाइबिल और कुरान का विस्तृत अध्ययन कर श्रेष्ठ शोध का उदाहरण प्रस्तुत करता है। गोपालजी का अध्ययन और प्रस्तुती उनकी परिपक्वता का प्रमाण है। शंकरलाल सोमानी ने तो साक-सब्जियों की एक लंबी सूची और उनके औषधिये गुणों का विवेचन कर व्यवहारिक उपयोग के लिए प्रेरित किया है। कुल मिलाकर यह अंक 'वैचारिकी' द्वारा स्थापित स्तर का सम्मान प्रदान करने योग्य है। आगामी अंकों की प्रतीक्षा रहेगी और आशा है कि प्रकाशन में आया अंतराल समाप्त होगा।

डॉ. मधुरेशनन्दन कुलश्रेष्ठ
अखिल भारतीय साहित्य परिषद, जयपुर,
मो. 8764295011

एक लम्बे अंतराल के पश्चात् 'वैचारिकी' के दो अंक डॉ. बिट्ठलदास मूंधड़ा और रावेल पुष्प के सम्पादकत्व में प्रकाशित पढ़ने को मिले जिन्हें एक पाठक के रूप में देखते ही एक नवीन उत्साह का संचरण हुआ। वैचारिकी की इस दीर्घगामी यात्रा में मैं भी पिछले दस वर्षों से इसके साथ जुड़ी हुई हूं। पत्रिका के पूर्व सम्पादक डॉ. बाबूलाल शर्मा ने इसे पंख दिए और साहित्याकाश की उंचाइयों तक पहुंचाया और अब उसी उड़ान को तीव्रगामी बनाने

का दायित्व आदरणीय डॉ. बिट्ठलदास मूंधड़ा ने संभालते हुए ही अपने लक्ष्य को स्पष्ट कर दिया है कि अपने प्रयासों से भारतीय विद्यामंदिर से प्रकाशित वैचारिकी तथा भारतीय संस्कृति एवं शिक्षण, शोधकार्य कौशल विकास प्रशिक्षण तथा अन्य कई लक्ष्यों में अपनी योजनाओं से विकास के लक्ष्य को लेकर आगे बढ़ने के लिए कृत्संकल्प आप बधाई के पात्र हैं। संपादक महोदय ने विश्व में हिन्दी की स्थिति पर बात करते हुए भारतीय पर्वोत्सवों में बसंत का महत्व बताया है तो दूसरी ओर कोविड-19 करोना महामारी के प्रति चिंता व्यक्त करते हुए 102 वर्ष पहले फैलने वाले 'स्पेनिश फ्लू' के भयंकर परिणामों की ओर संकेत भी किया है और इसके कारण आए सामाजिक परिवर्तनों की ओर भी पाठकों का ध्यानाकर्षित किया है। वैचारिकी पत्रिका के अंक जनवरी-फरवरी 2020 तथा मार्च-अप्रैल/मई-जून 2020 संयुक्तांक का साहित्य जगत में बहुत-बहुत स्वागत है। इस कठिन समय में जहां करोना ने विश्व की बढ़ती गति पर नकेल डाल दी है सारी व्यवस्थाएं जब अव्यवस्थित हो चुकी है वहीं इस संवेदनशील व्यवस्था में भी सम्पादकों ने वैचारिकी का ई-अंक निकालकर अपनी कर्मठता एवं प्रेम का परिचय दिया है। संस्कृति संरक्षण तथा हिन्दी भाषा विकास इस पत्रिका के दो महत्तम उद्देश्य हैं और आरंभ से हर अंक इसी लक्ष्य को लेकर निकाला गया है। आज भी हम कई प्रकार की अनुपलब्ध सांस्कृतिक सामग्री की उपलब्धता के लिए इस पत्रिका की सहायता लेते हैं।

पत्रिका का जनवरी-फरवरी अंक बसंत ऋतु की नई-नवेली दुल्हन बनी प्रकृति से सजा संवरा है तो संयुक्तांक होली से होला-महल्ला के रंग-बिरंगे रंगों के साथ साथ इनके इतिहास और महत्व का परिचय देता है। राम हमारी संस्कृति के आधारपुंज है। उनके आदर्श एवं मर्यादाओं से भारतीय समाज का निर्माण हुआ है। रामजन्म तथा कृष्म जन्म को आज भी हम अपने क्षेत्र एवं समाज के आधार पर बढ़-चढ़ कर मनाते हैं। तमिलनाडु की रामनवमी आलेख में लेखक डॉ. श्रीनिवासन ने रामेश्वरम के इतिहास के साथ-साथ पूरे क्षेत्र में मनाए जाने वाली रामनवमी तथा इस उपलक्ष्य में मनाए जाने वाले समारोहों का मुख्य चित्रण किया है। 'राम हमारी संस्कृति के सारस्वत हस्ताक्षर तथा लाहौर दरबार के अल्पज्ञात कवि माधोदास और उनकी पांडुलिपिः रामचरित्र' आलेख भी मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के औदात्य एवं चरित्र की महिमा का गुणगान करते हैं। संयुक्तांक में ही हिन्दी काव्य में गंगा का पौराणिक व आध्यात्मिक स्वरूप में डॉ. मृदुल जोशी ने मानव यात्रा में गंगा का महत्वांकन बताकर गंगा की महिमा का गुणगान किया है। लेखिका साधुवाद की पात्र हैं। प्रो. ललित पांडेय का आलेख आहड़ संस्कृति उत्पत्ति, प्रसार, विशेषताएं एवं पतन बड़ा शोधपूर्ण है। दूसरी ओर डॉ. भवानी सिंह का शोधालेख हिमाचल प्रदेश की सांस्कृतिक धरोहर प्रसिद्ध लोकनाट्य करियाला एवं ठोडा की उत्तरी भारत की जीवन शैली का परिचय देता है। काल गणना में खगोलीय तत्व आलेख में लेखिका ने परंपरागत ज्योर्तिविज्ञान और हमारी संस्कृति के विशेषज्ञों के अनुभवों की लोकधारणाओं का महत्व और समाज में उनका वैशिष्ट सिद्ध किया है।

अतः वैचारिकी पत्रिका में शोधपरक और अनुसंधानपरक आलेखों को प्रकाशित कर अध्यक्ष एवं साहित्य संपादक श्री रावेल पुष्प ने अपने परिश्रम एवं कर्मठता का जो परिचय दिया है उसी में उनकी दूरदृष्टि का सूक्ष्म आभास भी हो रहा है। यह आपका परिश्रम ही है जिसने इस पत्रिका को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा मान्यता प्राप्त सूची में क्रमबद्ध कर दिया है। वास्तव में धर्म, दर्शन, भाषा विज्ञान, लोक, इतिहास कला एवं पुरातत्व आदि विभिन्न पक्षों को समेटते हुए प्रगतिपथ पर अग्रसर इस पत्रिका को मेरा नमन है।

- डॉ. सुनीता शर्मा
अमृतसर, मो. 9915065150
ईमेल - sunitasharma.gndu@gmail.com

●

भारतीय विद्या मंदिर के प्रकाशन

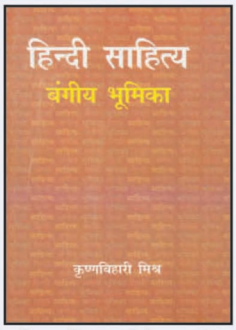

हिन्दी साहित्य बंगीय भूमिका
कृष्णबिहारी मिश्र
मूल्य 750/- पृ.सं. 551
ISBN : 978-81-89302-48-1

श्रीरामकथा की कथा (प्रथम खण्ड)
आचार्य सोहनलाल रामरंग
मूल्य 600/- पृ. सं. 379
ISBN : 978-81-89302-46-7

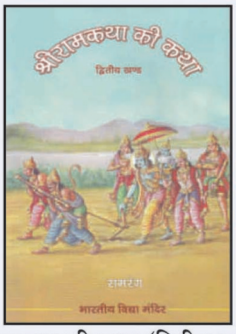

श्रीरामकथा की कथा (द्वितीय खण्ड)
आचार्य सोहनलाल रामरंग
मूल्य 600/- पृ. सं. 381
ISBN : 978-81-89302-50-4

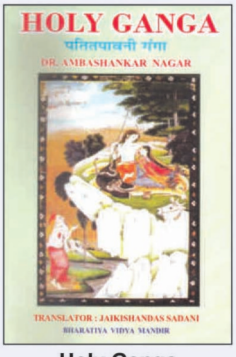

Holy Ganga
Tr. Jaikishandas Sadani
Price : Rs. 750/- Pages : 331
ISBN : 978-81-89302-62-7

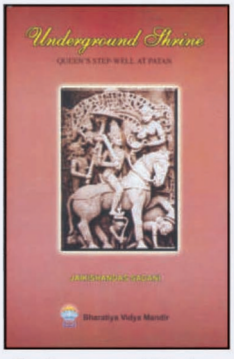

Underground Shrine
Jaikishandas Sadani
Rs. 200/- Pgs. 112
ISBN : 978-81-89302-39-9

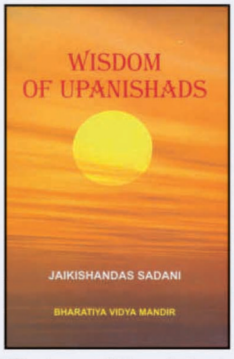

Wisdom of Upanishads
Tr. Jaikishandas Sadani
Rs. 130/- Pgs. 124
ISBN : 81-89302-04-3

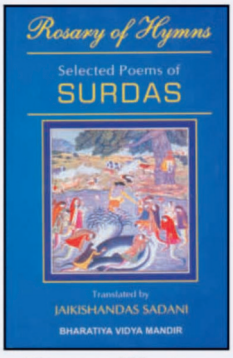

Rosary of Hymns
Tr. Jaikishandas Sadani
Rs. 150/- Pgs. 154
ISBN : 81-89302-01-9

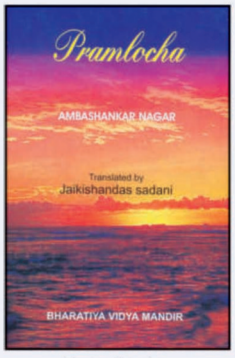

Pramlocha
Tr. Jaikishandas Sadani
Rs. 130/- Pgs. 126
ISBN : 978-81-89302-02-7

नित्य कीर्तन : रस रत्नाकर
मूल्य 900/-
ISBN : 978-81-89302-35-1

पुस्तकादेश हेतु संपर्क करें

शंकरलाल सोमानी, सिम्पलेक्स हाउस, 27, शेक्सपीयर सरणी, कोलकाता-700 017 मोबाइल : 09830559364 ई-मेल : shankar.somani@simplexinfra.com

From

BHARATIYA VIDYA MANDIR
12/1, Nellie Sengupta Sarani
Kolkata - 700087*(W.B.)*

TO

Bharatiya Vidya Mandir

Supported by

Simplex Infrastructures Ltd

PMKVY के तहत

कामगारों के लिए रोजगारोन्मुखी निर्माण कौशल प्रशिक्षण

प्रशिक्षण कार्यक्रम की मुख्य बातें:

1. 80% अभ्यास और 20% सिद्धांत
2. कार्यस्थल अभ्यास प्रशिक्षण में निम्नलिखित अभ्यास शामिल हैं:
   - स्टील रेंफोर्समेंट पर 10 दिन का प्रशिक्षण
   - शटरिंग फॉर्मवर्क एवं करपेंट्री पर 10 दिन का प्रशिक्षण
   - मेसनरी एवं कंक्रीट टेक्नोलॉजी पर 10 दिन का प्रशिक्षण
   - सहायक इलेक्ट्रीशियन पर 10 दिन का प्रशिक्षण
   - श्रम प्रबंधन और साइट संगठन का ज्ञान
3. किसी भी प्रकार का शुल्क नहीं देना हैं
4. PMKVY के पाठ्यक्रम पूरा होने पर उत्तीर्ण कामगारों को CSDCI द्वारा प्रमाण पत्र दिया जाता हैं

सरकार की PMKVY योजना को आगे ले जाने के लिये **बी.वी.ऍम - सिम्प्लेक्स इंफ्रास्ट्रकचर्स लिमिटेड,** परियोजना स्थलों पर कामगारों के लिये **कार्यस्थल अभ्यास प्रशिक्षण** की व्यवस्था कर रही हैं। इस प्रशिक्षण के द्वारा कामगार अपनी कमियों को दूर कर सकेंगे तथा सरकार से मान्यता प्राप्त सर्टिफिकेट भी प्राप्त कर सकेंगे।

इससे कामगारों के रोजगार में वृद्धि होगी

प्रशिक्षण अवधि एवं समय	• फ्लेक्सी प्रशिक्षण मॉड्यूल 10 दिन के लिये • समय: सुबह 9:00 बजे से शाम 5:30 बजे तक
बैच साइज	• न्यूनतम 20 कैंडिडेट तथा उच्चतम 50 कैंडिडेट प्रति बैच
प्रशिक्षण स्थान	• किसी भी कंस्ट्रक्शन साईट पर
कार्यक्रम शुल्क	• शुल्क मुक्त • CSDCI द्वारा कुशलता प्रमाण पत्र

सम्पर्क सूत्र

Kolkata (Regd. Office)
Mr. S. L. Somani
Bharatiya Vidya Mandir
12/1, Nellie Sengupta, Sarani
Kolkata – 700087, Mob. No. 9830559364
Email : shankar.somanibvm@gmail.com

New Delhi (Branch Office)
Col. N. B. Saxena
B.V.M – SIMPLEX
Vaikunth House, 82-83, Nehru Place
Delhi – 110019, Ph. No. – 011-49444200, Ext. 236
Web: www.bharatiyavidyamandir.org